शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर
महाराष्ट्र

दूर शिक्षा केंद्र

हिंदी : अनिवार्य बीजपत्र 3 और 7

भाषाविज्ञान

सत्र 1 और 2

(शैक्षिक वर्ष 2018-19 से)

एम. ए. भाग–1

© **कुलसचिव,** शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर (महाराष्ट्र)
प्रथम संस्करण : 2018
एम. ए. भाग 1 (हिंदी : अनिवार्य बीजपत्र-3 और 7)
सभी अधिकार विश्वविद्यालय के अधीन। शिवाजी विश्वविद्यालय की अनुमति के बिना किसी भी सामग्री की नकल न करें।

प्रतियाँ : 600

■

प्रकाशक :
डॉ. व्ही. डी. नांदवडेकर
कुलसचिव,
शिवाजी विश्वविद्यालय,
कोल्हापुर - 416 004.

■

मुद्रक :
श्री. बी. पी. पाटील
अधीक्षक,
शिवाजी विश्वविद्यालय मुद्रणालय,
कोल्हापुर - 416 004.

■

ISBN- 978-81-938801-6-6

★ दूर शिक्षा केंद्र और शिवाजी विश्वविद्यालय की जानकारी निम्नांकित पते पर मिलेगी-
शिवाजी विश्वविद्यालय, विद्यानगर, कोल्हापुर-416 004. (भारत)

★ दूर शिक्षा विभाग-विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, नई दिल्ली के विकसन अनुदान से इस साहित्य की निर्मिति की है।

दूर शिक्षा केंद्र, शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

■ सलाहकार समिति ■

प्रा. (डॉ.) देवानंद शिंदे
मा. कुलगुरू,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

प्रा. (डॉ.) डी. टी. शिर्के
प्र-कुलगुरू,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

प्रा. (डॉ.) एम. एम. साळुंखे
माजी कुलगुरू,
यशवंतराव चव्हाण महराष्ट्र मुक्त विश्वविद्यालय, नाशिक

प्रा. (डॉ.) के. एस. रंगाप्पा
मा. कुलगुरू,
म्हैसुर विश्वविद्यालय, म्हैसुर

प्रा. पी. प्रकाश
अतिरिक्त सचिव-II
विद्यापीठ अनुदान आयोग, नवी दिल्ली

प्रा. (डॉ.) सीमा येवले
गीत-गोविंद, फ्लॅट नं. २, ११३९ साईक्स एक्स्टेंशन,
कोल्हापुर-४१६००१

प्रा. (डॉ.) पी. एस. पाटील
I/c अधिष्ठाता, विज्ञान और तंत्रज्ञान विद्याशाखा,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

प्रा. (डॉ.) ए. एम. गुरव
I/c अधिष्ठाता, वाणिज्य और व्यवस्थापन विद्याशाखा,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

प्रा. (डॉ.) भारती पाटील
I/c अधिष्ठाता, मानवविज्ञान विद्याशाखा,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

प्रा. (डॉ.) पी. डी. राऊत
I/c अधिष्ठाता, आंतर-विद्याशाखीय अभ्यास विद्याशाखा
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

डॉ. व्ही. डी. नांदवडेकर
कुलसचिव,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

श्री. एम. ए. काकडे
संचालक, परीक्षा व मूल्यमापन मंडळ,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

श्री. व्ही. टी. पाटील
वित्त व लेखा अधिकारी,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

प्रा. (डॉ.) एम. ए. अनुसे
(सदस्य सचिव)
संचालक, दूर शिक्षा केंद्र,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

■ समन्वय समिति : हिंदी ■

डॉ. श्रीमती पद्मा पाटील,
अध्यक्षा, हिंदी अधिविभाग, शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर.

- **डॉ. पी. बी. मोकाशी**
  अवकाशप्राप्त प्राचार्य,
  आदर्श कॉलेज, विटा, जि. सांगली

- **डॉ. एन. व्ही. केसरकर**
  अवकाशप्राप्त प्राध्यापक
  प्रा. डॉ. एन. डी. पाटील महाविद्यालय, मलकापुर
  ता. शाहुवाडी, जि. कोल्हापुर

दूर शिक्षा केंद्र शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर	**भाषाविज्ञान** **एम. ए. भाग–1** **हिंदी : अनिवार्य बीजपत्र–3 और 7**

इकाई लेखक

★ **प्रा. डॉ. दिलीपकुमार कसबे** सद्गुरू गाडगे महाराज कॉलेज, कराड
★ **प्रा. डॉ. महिपती जगन्नाथ शिवदास** सद्गुरू गाडगे महाराज कॉलेज, कराड
★ **प्रा. ए. एम. शेख** भोगावती महाविद्यालय, कुरुकली
★ **डॉ. भारत उपाध्य** वारणा महाविद्यालय ऐतवडे खुर्द, ता. वाळवा, जि. सांगली

■ **सम्पादक** ■

प्रा. डॉ. दिलीपकुमार कसबे
सद्गुरू गाडगे महाराज कॉलेज, कराड

प्रा. डॉ. महिपती जगन्नाथ शिवदास
सद्गुरू गाडगे महाराज कॉलेज, कराड

भूमिका

शिवाजी विश्वविद्‍यालय कोल्हापुर की दूर शिक्षा योजना के अंतर्गत एम. ए. हिंदी भाग-I के छात्रों के लिए बनायी गयी अध्ययन सामग्री नियमित रूप से प्रवेश न ले सकने वाले छात्रों की असुविधा को दूर करने की योजना का अच्छा फल है। इसमें विश्वविद्‍यालय की सामाजिक संवेदनशीलता तथा शिक्षा से वंचित छात्रों को सुविधा प्रदान करने की प्रतिबद्‍धता दिखायी देती है।

प्रस्तुत पुस्तक में सत्र I प्रश्नपत्र III तथा सत्र II प्रश्नपत्र VII 'भाषाविज्ञान' का लेखन संपन्न किया है। प्रस्तुत पुस्तक की इकाइयों के लेखक हैं- प्रा. डॉ. दिलीपकुमार कसबे, प्रा. डॉ. महिपती जगन्नाथ शिवदास, प्रा. ए. एम. शेख और डॉ. भारत उपाध्य । प्रत्येक इकाई लेखक ने अपना अध्यापन अनुभव, शैली के आधार पर लेखन किया है। दूर शिक्षा के छात्रों की क्षमता ध्यान में रखकर सामग्री तैय्यार की है। प्रत्येक इकाई लेखक उनके लेखन के प्रति जिम्मेदार है।

दूर शिक्षा केंद्र के छात्रों का प्रत्यक्ष रूप में अध्यापकों से कोई संबंध संपर्क नहीं आता। पुस्तक लेखन कार्य के दरमियान निर्धारित पाठ्यक्रम, प्रश्नपत्र का स्वरूप, अंक विभाजन जैसे महत्त्वपूर्ण मद्‍दों को ध्यान में रखकर लेखन कार्य संपन्न किया है।

प्रश्न पत्र III के अंतर्गत भाषा तथा भाषा के विभिन्न रूप, भाषाविज्ञान का इतिहास, भाषाविज्ञान और सहयोगी शाखाएँ, हिंदी भाषा विविध आयाम तथा प्रश्नपत्र VII के अंतर्गत ध्वनि विज्ञान, पद विज्ञान, वाक्य विज्ञान और अर्थ विज्ञान का अध्ययन करना है।

प्रस्तुत अध्ययन सामग्री की सफलता सामुहिक प्रयास का फल है। प्रस्तुत लेखन कार्य के लिए समय-समय पर विषय समन्वयक प्रो. डॉ. पद्‍मा पाटील जी का मार्गदर्शन रहा है। उसी तरह इकाई लेखकों ने अपनी-अपनी इकाइयों का लेखन समय पर पूरा कर इसकी पूर्णता में महत्त्वपूर्ण भुमिका निभायी है।

शिवाजी विश्वविद्‍यालय कोल्हापुर के मा. कुलगुरू प्रो. देवानंद शिंदे, कुलसचिव डॉ. विलास नांदवडेकर, हिंदी विषय समन्वयक प्रो. (डॉ.) पद्‍मा पाटील (अध्यक्ष, हिंदी विभाग), दूर शिक्षा विभाग के संचालक डॉ. एम. ए. अनुसे एवं उनके सभी सहकारियों, संबंधित कर्मचारियों का हम अंतस्तल से आभार प्रकट करते हैं।

– संपादक

भाषाविज्ञान

एम. ए. भाग–1

हिंदी : अनिवार्य बीजपत्र–3 और 7

अनुक्रम

इकाई		पृष्ठ
	सत्र–1 अनिवार्य बीजपत्र–3 : भाषाविज्ञान	
1.	भाषा तथा भाषा के विभिन्न रूप	1
2.	भाषाविज्ञान का इतिहास	49
3.	भाषाविज्ञान और सहयोगी शाखाएँ	81
4.	हिंदी भाषा : विविध आयाम	117
	सत्र–2 अनिवार्य बीजपत्र–7: भाषाविज्ञान	
1.	ध्वनि विज्ञान	209
2.	पद विज्ञान	250
3.	वाक्य विज्ञान	287
4.	अर्थ विज्ञान	319

अध्ययन मंडल : हिंदी

डॉ. राजेंद्र पिलोबा भोसले
अध्यक्ष, आर्टस ॲण्ड कॉमर्स कॉलेज, पुसेगांव, जिल्हा सातारा

- **प्रो. डॉ. श्रीमती पद्‌मा पाटील**
  हिंदी विभाग,
  शिवाजी विश्वविद्‌यालय, कोल्हापुर
- **डॉ. बी. एस. खिलारे**
  छत्रपती शिवाजी कॉलेज, सातारा
- **डॉ. एस. एम. कांबळे**
  तुकाराम कृष्णाजी कोळेकर आर्टस ॲण्ड कॉमर्स कॉलेज,
  नेसरी, ता. गडहिंग्लज, जि. कोल्हापूर
- **डॉ. बबन एस. सातपुते**
  मिरज महाविद्‌यालय, मिरज, जि. सांगली
- **डॉ. के. वाय. धुमाळ**
  आर्टस ॲण्ड कॉमर्स कॉलेज, वडुज, जि. सातारा
- **डॉ. चिंधगे संजय पिराजी**
  देशभक्त आनंदराव बळवंतराव नाईक आर्टस ॲण्ड
  सायन्स कॉलेज, चिखली, ता. शिराळा, जि. सांगली
- **डॉ. सुनिल बापू बनसोडे**
  जयसिंगपुर कॉलेज, जयसिंगपुर, जि. कोल्हापुर
- **डॉ. एकनाथ श्रीपती पाटील**
  राधानगरी महाविद्‌यालय, राधानगरी,
  जि. कोल्हापुर
- **प्रो. डॉ. विष्णु रानबा सरोदे**
  हिंदी विभाग, मुंबई विश्वविद्‌यालय, मुंबई
- **डॉ. मोहन मंगेशराव सावंत**
  आण्णासाहेब डांगे आर्टस, कॉमर्स ॲण्ड सायन्स कॉलेज,
  हातकणंगले, जि. कोल्हापुर
- **डॉ. प्रकाश शंकरराव चिकुर्डेकर**
  यशवंतराव चव्हाण महाविद्‌यालय, वारणानगर,
  जि. कोल्हापुर
- **डॉ. मधुकर शंकरराव खराटे**
  आर्टस, कॉमर्स ॲण्ड सायन्स कॉलेज, बोधवाड,
  जि. जळगाव
- **डॉ. श्रीमती सरोज संग्राम पाटील**
  श्री. शहाजी छत्रपती महाविद्‌यालय, कोल्हापुर

इकाई : 1

भाषा तथा भाषा के विभिन्न रूप

अनुक्रम-रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 विषय विवरण

भाषा तथा भाषा के विभिन्न रूप

1.2.1 भाषा : स्वरूप

1.2.2 भाषा के अभिलक्षण

1.2.3 भाषा के विभिन्न रूप :
मानक भाषा, उपभाषा, बोली, उपबोली, अपभाषा, कूटभाषा, कृत्रिम भाषा, अभिजात भाषा, मिश्रित भाषा

1.2.4 भाषाओं का वर्गीकरण : आकृतिमूलक वर्गीकरण, पारिवारिक वर्गीकरण

1.3 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न

1.4 शब्दार्थ, संदर्भ, टिप्पणियाँ

1.5 सारांश

1.6 स्वयं अध्ययन प्रश्नों के उत्तर

1.7 स्वाध्याय

1.8 क्षेत्रिय कार्य

1.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

1.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए

1.0 उद्देश्य :

इस इकाई के अध्ययनोपरान्त आप,

- भाषा के स्वरूप से परिचित हो जाएँगे।
- भाषा के अभिलक्षण बता पाएँगे।
- मानवीय और मानवेत्तर भाषा के बीच के अंतर को समझ पाएँगे।
- भाषा के विभिन्न रूपों से परिचित हो जाएँगे।
- भाषाओं का वर्गीकरण बता पाएँगे।

1.1 प्रस्तावना :

भाषा विज्ञान के अध्ययन में भाषा का अध्ययन अहम विषय है इसलिए इस इकाई में भाषा के स्वरूप, भाषा के अभिलक्षण भाषा के विविध रूप जिनमें उपबोली से लेकर मिश्रित भाषा तक अर्थात अधिक से अधिक रूपों पर प्रकाश डाला जाएगा। साथही भाषा विज्ञान का अध्ययन करनेवाले छात्रों को इसका गहरा ज्ञान होना जरूरी है। मनुष्य का जीवन भाषा के बिना अधूरा है। भाषा के अभाव में वह गूंगा है। इस विशाल धरती पर किसी भी भूभाग पर बसे मनुष्य को भाषा की जरूरत है। भिन्न-भिन्न भूप्रदेश में बसे इन लोगों की भाषा में नदी, पहाड, रेगिस्तान, जंगल, आबोहवा आदि के कारण भिन्नता है। भिन्नता के कारण भाषाओं का वर्गीकरण करके उनका अध्ययन करना जरूरी होता है। उन भाषाओं का आकृतिमूलक और पारिवारिक वर्गीकरण करके उसका स्पष्टिकरण करने का प्रयास भी किया गया है। इससे भाषा का स्वरूप, अभिलक्षण, रूप और वर्गीकरण पर प्रकाश डालना संभव होगा।

1.2 विषय विवरण :

भाषा तथा भाषा के विभिन्न रूप :

हम अपने भावों को व्यक्त करने के लिए एक सार्थक मौलिक साधन को अपनाना चाहते हैं और वह साधन भाषा है। स्थूल रूप से अन्य प्राणियों को जीवनयापन करने भाषा की जरूरत नहीं पडत सकती फिर भी वे सभी प्राणी किसी न किसी प्रकार के संकेतों के सहारे अपने भाव व्यक्त करते हैं । मगर मनुष्य प्राणी अन्य प्राणियों की तुलना में बुद्धि की वजह से श्रेष्ठ माना जाता है। दिन-ब-दिन विकसित होते मनुष्य प्राणी को अपने भावों को सूक्ष्म और स्पष्ट रूप में व्यक्त करने का साधन भाषा ही है। भाषा ही मनुष्य-मनुष्य के बीच का फासला कम करती है अर्थात मनुष्य को जोडने का काम भाषा करती है। उस भाषा के कई रूप भी हैं।

1.2.1 भाषा : स्वरूप

मनुष्य, समाज में रहते हुए वह एक दूसरे से परस्पर व्यवहार करता है। परस्पर व्यवहार के जितने साधन है उनमें विचारों की अभिव्यक्ति, प्रधान साधन है। विचारों की अभिव्यक्ति के लिए वह कई माध्यमों का सहारा लेता है। अपने विचारों को कभी वह संकेतों से व्यक्त करता है, कभी रंगों से, कभी झंडियों से तो कभी विशिष्ट प्रकार की ध्वनियों से। अर्थात अपने भाव या विचार व्यक्त करने के कई साधन है। मनुष्य भावाभिव्यक्ति के लिए इनमें से किसी

भी साधन का प्रयोग करके अपना काम चला लेता है। हम किसी वस्तु के विषय में परस्पर विचार विनिमय कर सकते है। फिर स्फुट शब्द स्पर्श, करतल ध्वनि, सीटी बजाना, विशिष्ट ध्वनि निकालना, हाथ हिलाना, आँख मारना, चुटकी बजाना, पास बुलाना, दाएँ-बाएँ हटना, जिव्हा दिखाना, खाँसना, उँगली दिखाना आदि न जाने कितने ऐसे साधन है उनके द्वारा हमारे विचार विनिमय का कार्य संपन्न हो जाता है। यानी यह सभी भाषा है केवल साधन अलग है।

'भाषा' शब्द में व्यापकता है। विचार विनिमय के विभिन्न साधनों को देखते हुए भाषा के व्यापक तथा संकुचित (सीमित) अर्थ को ज्ञात करना हमारा फर्ज बनता है। वास्तव में हम पाँचों ज्ञान इंद्रियों द्वारा भी अपनी बात रख सकते है, व्यक्त करते हैं समझ सकते हैं।

1) गंध इंद्रिय (गंध ज्ञान) गंधग्राह्य
2) स्वाद इंद्रिय (स्वाद ज्ञान) स्वादग्राह्य
3) स्पर्श इंद्रिय (स्पर्श ज्ञान) स्पर्शग्राह्य
4) दृग इंद्रिय (नेत्र ज्ञान) नेत्रग्राह्य
5) कर्णइंद्रिय (श्रवण ज्ञान) श्रवणग्राह्य

इन्हें हम व्यापक अर्थ में रख सकते है किंतु इनमें से प्रमुख तीन ऐसे है जिनसे विचार व्यक्त किए जा सकते हैं।

1) स्पर्शज्ञान : इसमें मनुष्य अपने विचारों, भावों को संघर्ष के माध्यम से व्यक्त करता है। उदा. हाथ या पैर को स्पर्श करना। चोर सामने पुलिस को देखकर अपने साथी-मित्र को स्पर्श करता है। उसका हाथ दबाता है और खतरे का संदेश देता है। इसे स्पर्शग्राह्य भी कहते है।

2) नेत्रज्ञान : इसमें संकेतो के द्वारा एक मनुष्य दूसरे तक अपनी बात पहुँचा देता है। नेत्र, आँखें इन संकेतों को ग्रहण करती है। बातें नेत्रो से ज्ञात होती है इसीकारण इसे नेत्रज्ञान या नेत्रग्राह्य भी कहते है। चौराहे पर ही हरी, लाल बत्ती जलना और हरी बत्ती का संकेत जाना या गमन करना है। या लालबत्ती के जलने का संकेत है, ठहरना।

3) श्रवणज्ञान / श्रवणग्राहा : इसमें मुख से, हाथ से, या किसी वस्तु से विविध ध्वनियाँ निकालकर विचारों या भावों को प्रकट किया जा सकता है। श्रवणग्राह्य के अंदर वे समस्त ध्वनियाँ आ जाती है जिनके द्वारा मनुष्य अपने विचारों को व्यक्त करता है। ध्वनि संदेश द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान तक बात पहुँचायी जाती है।

संकुचित या सीमित अर्थ में ध्वनिचिन्हों की भाषा अर्थात विचार विनिमय के लिए उच्चारण अवयवों से (मुख से उच्चारित) सार्थक ध्वनिचिन्हों की भाषा को प्राथमिकता दी है। सार्थक शब्दों को इसके अंतर्गत रखा जाता है जो भाषावैज्ञानिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण होती है, इसमें अतिव्याप्ति नहीं होती।

अभिप्राय व्यक्त करने आँख, सिर, हाट आदि का संचालन एक प्रकार की भाषा है किंतु इससे अर्थपूर्ण नहीं होता। अर्थात केवल इंगित या ध्वनियों की सहायता से भाषा पूर्ण नहीं होती। ध्वनिचिह्नों की सहायता के लिए इंगित की जरूरत है। ध्वनि चिह्नों के अलावा विचार विनिमय के अन्य चिह्न भी है। मनुष्य अपने विचारों को दो रूपों में प्रकट कर सकता है - मौखिक और लिखित। इनमें से मौखिक रूप अधिक चलता है। लेकिन मौखिक की तुलना में

ध्वनि संकेत की भाषा अर्थपूर्ण होती है। फिर भी इतना सच है कि भाव प्रकट करने के सभी साधनों का प्रयोग मनुष्य आज भी कर रहा है।

'भाषा' शब्द संस्कृत के 'भाष्' धातु से बना हुआ है। जिसका अर्थ है 'व्यक्तवाणी'। अत: एक प्रकार से इस धातु के अर्थ में ही भाषा का लक्षण विद्यमान है। अर्थात जिससे कुछ बोला या कहा जाय वह भाषा है। जिसमें पशु-पक्षियों से लेकर मनुष्य तक कुछ न कुछ वाणी प्रकट करने की बात है। विचारों को व्यक्त करने के साधनों को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है।

1) भाषेतर

2) भाषा

जितने प्रकार के संकेत है उन्हें हम भाषेतर अभिव्यक्ति के अंतर्गत रख सकते हैं। इन्हें भाषा के अन्तर्गत नहीं रखा जा सकता। परस्पर व्यवहार के लिए इन संकेता का अधिक उपयोग नहीं होता । बहुत सीमित मात्रा में इनका उपयोग होता है।

व्यापक स्तर पर परस्पर व्यवहार के लिए जिस साधन का उपयोग समाज करता है उसे भाषा कहते हैं।

भाषा से तात्पर्य मानव मस्तिष्क की उस प्रक्रिया से है, जिसके अन्तर्गत वक्ता अपने कतिपय ध्वनि यंत्रोद्वारा नाना प्रकार की ध्वनियों का उच्चारण कर अपने भावों तथा विचारों का प्रकाशन करता है। अर्थात, भाषा में प्रयुक्त ध्वनि मनुष्य की वागेन्द्रियों से ही नि:सृत होती है। वागेन्द्रियों द्वारा उत्पन्न ध्वनि सार्थक होती है, यादृच्छिक होती है।

भाषा एक सीमित समुदाय की होती है इसीकारण दूसरे समुदाय में दूसरी भाषा का प्रयोग होता है। हर भाषा में एक निश्चित प्रकार की व्यवस्था होती है। यह व्यवस्था ध्वनि, शब्द और वाक्य तीन स्तरों पर होती है। इससे स्पष्ट होता है, भाषा के लिए उसके ध्वनि समूहों की एक निश्चित व्यवस्था हो।

संस्कृत की 'भाष्' धातु से बने 'भाषा' शब्द के जो अर्थ प्राप्त होते हैं, उसके आधारपर ही भाषा वैज्ञानिकों ने भाषा को परिभाषित करने का प्रयास किया है। भाषा विज्ञान में उसी भाषा का स्वीकार किया जा सकता है जो वक्ता के वक्तव्य को पूर्णता और स्पष्टता से संप्रेषित कर सके। भाषा के स्वरूप को देखकर देश-विदेश के अनेक विद्वानों ने श्रवणग्राह्य प्रतीक को महत्त्व दिया है और भाषा को परिभाषाबद्ध किया है। कुछ मत निम्न शब्दों में दिए जा सकते हैं -

भाषा की परिभाषाएँ :

गरिमा श्रीवास्तव की 'भाषा और भाषा विज्ञान' पुस्तक में प्राप्त संस्कृत आचार्यो द्वारा दी गई भाषा की परिभाषाएँ इस प्रकार है - न्यायशास्त्र के अनुसार -

तदेव हि लक्षणं यदव्याप्ति-अतिव्याप्ति
असंभव-दोषत्रय शून्यम।

इस परिभाषा में सलाह दी है कि परिभाषा बनाते समय अव्याप्ति, अतिव्याप्ति और असंभव जैसे दोषों से बचना जरूरी है।

आचार्य **कपिल** ने कहा है -

स्फुटवाक्करणोपातो, भावाभिव्यक्तिसाधक:
संकेतितो ध्वनिव्रात: सा भाषेत्युच्यतेबुधै:॥

भृतहरि के अनुसार -

''शब्द कारणमर्थस्य स हि तेनोपजायते''

अमरकोष में कहा गया है -

''ब्राह्म तु भारती भाषा गीर् वाक् वाणी सरस्वती।''

सुकुमार सेन के अनुसार -

''अर्थवाण कंडोद्गीर्ण - ध्वनि-समष्टि ही भाषा है।''

आधुनिक भाषावैज्ञानिकों ने भाषा की परिभाषाएँ अपनी-अपनी पद्धति से इस प्रकार दी है। भारत भूषण चौधरी की पुस्तक 'संरचनात्मक **भाषा-विज्ञान** में प्राप्त परिभाषाएँ' इस प्रकार -

क्षीर स्वामी - ''जो भाषित की जाती है अर्थात व्यक्त वर्णों के रूप में बोली जाती है उसे भाषा कहते है।''

कामताप्रसाद गुरू - ''भाषा वह साधन है जिसके द्वारा मनुष्य अपने विचार दूसरों पर भलीभाँति प्रकट कर सकता है और दूसरों के विचार आप स्पष्टतया समझ सकता है।''

पतंजलि - ''जो वाणी में वर्णों के माध्यम से व्यक्त होते है, वे ही व्यक्त वाक् (भाषा) हैं।''

डॉ. पांडुरंग दामोदर गुणे - ''अपने व्यापक अर्थ में भाषा के अन्तर्गत विचारों और भावों को सूचित करनेवाले वे सारे संकेत आते हैं, जो देखे या सुने जा सके और इच्छानुसार उत्पन्न किए एवं दोहराए जा सकें।''

श्यामसुन्दर दास - ''विचारों की अभिव्यक्ति के लिए व्यक्त ध्वनि संकेतों के व्यवहार को भाषा कहते है।''

डॉ. बाबूराम सक्सेना - ''जिन ध्वनिचिन्हों द्वारा मनुष्य परस्पर विचार-विनिमय करता है उनको समष्टि रूप से भाषा कहते है।''

आचार्य डॉ. देवेन्द्रनाथ शर्मा - ''जिनकी सहायता से मनुष्य परस्पर विचार-विनिमय या सहयोग करते हैं उस यादृच्छिक, रूढ़, ध्वनि-संकेत की प्रणाली को भाषा कहते है।''

सरयूप्रसाद अग्रवाल - ''भाषा वाणी द्वारा व्यक्त स्वच्छन्द प्रतीकों की वह रीतिबद्ध पद्धति है जिससे मानव-समाज अपने भावों का परस्पर आदान-प्रदान करते हुए एक दूसरे को सहयोग देता है।''

डॉ. देवीशंकर द्विवेदी - ''भाषा यादृच्छिक वाक्प्रतीकों की वह व्यवस्था है, जिसके माध्यम से मानव-समुदाय परस्पर व्यवहार करता है।''

गरिमा श्रीवास्तव की पुस्तक में भाषा की परिभाषाएँ इस प्रकार मिलती है -

आचार्य किशोरीप्रसाद वाजपेयी - ''विभिन्न अर्थो में सांकेतिक शब्द समूह ही भाषा है। जिसके द्‌वारा हम अपने विचार या मनोभाव दूसरों के प्रति बहुत सरलता से प्रकट करते हैं।''

डॉ. भोलानाथ तिवारी - ''भाषा उच्चारण अवयवों से उच्चरित मूलत: प्राय: यादृच्छिक ध्वनि प्रतिकों की वह व्यवस्था है, जिसके द्‌वारा किसी भाषा समाज के लोग आपस में विचारों का आदान-प्रदान करते हैं।''

डॉ. रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव - ''भाषा वागेन्द्रिय द्‌वारा विस्तृत उन ध्वनि प्रतीकों की संरचनात्मक व्यवस्था है जो अपनी मूलप्रकृति में यादृच्छिक एवं रूढ़िपरक होते हैं और जिसके द्‌वारा किसी भाषा समुदाय के व्यक्ति अपने अनुभवों को व्यक्त करते हैं, अपने विचारों को सम्प्रेषित करते हैं और अपनी सामाजिक अस्मिता पद तथा अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्धों को सूचित करते हैं।''

जिस तरह भारतीय भाषावैज्ञानिकों ने भाषा को परिभाषित किया है वैसे पाश्चात्य भाषावैज्ञानिकों का प्रयास भी अत्यन्त सराहनीय रहा है। उन्होंने दी हुई परिभाषाओं पर भी हम विचार करेंगे।

गरिमा श्रीवास्तव की पुस्तक 'भाषा और भाषाविज्ञान' में प्राप्त परिभाषाएँ -

प्लेटो ने सोफिस्ट में लिखा है - ''विचार आत्मा की मूक या ध्वन्यात्मक बातचीत है, पर वह जब ध्वन्यात्मक होकर होठों पर प्रकट होती है तो उसे भाषा की संज्ञा देते हैं।''

स्वीट के अनुसार - ''ध्वन्यात्मक शब्दोंद्‌वारा विचारों को प्रकट करना ही भाषा है।''

जेस्परसन के अनुसार - ''मनुष्य ध्वन्यात्मक शब्दों द्‌वारा अपने विचार प्रकट करता है। मानव मस्तिष्क वस्तुत: विचार प्रकट करने के लिए ऐसे शब्दों का निरन्तर उपयोग करता है। इस प्रकार कार्य-कलाप को भाषा की संज्ञा दी जाती है।''

वेन्द्रिय - ''भाषा एक तरह का संकेत है, संकेत से आशय उन प्रतीकों से है, जिनके द्‌वारा मानव अपने विचारों को दूसरों पर प्रकट करता है। ये प्रतीक कई प्रकार के होते हैं जैसे नेत्रग्राह्य, कर्णग्राह्य और स्पर्शग्राह्य, वस्तुत: भाषा की दृष्टि से कर्णग्राह्य प्रतीक ही सर्वश्रेष्ठ है।''

ए. एच. गार्डीनर के अनुसार - "The common defination of speech is the use of articulate sound symbols for the expression of thought." अर्थात ''विचारों की अभिव्यक्ति के लिए जिन व्यक्त एवं स्पष्ट संकेतों का व्यवहार किया जाता है, उनके समूह को भाषा कहते हैं।''

मैक्समूलर के अनुसार - ''भाषा और कुछ नहीं है केवल मानव की चतुर बुद्‌धिद्‌वारा आविष्कृत ऐसा उपाय है जिसकी मदद से हम अपने विचार सरलता और तत्परता से दूसरों पर प्रकट कर सकते हैं और चाहते है कि इसकी व्याख्या प्रकृति की उपज के रूप में नहीं बल्कि मनुष्य कृत पदार्थ के रूप में करना उचित है।''

भारत भूषण चौधरी की पुस्तक 'सरचनात्मक भाषाविज्ञान' में प्राप्त आधुनिक पाश्चात्य भाषा शास्त्रियों की भाषा की परिभाषाएँ -

ब्लॉक और ट्रेगर - "A Language is a system of arbitrary vocal symbols by means of which a society group co-operate." (भाषा यादृच्छिक ध्वनि-संकेतों की वह व्यवस्था है, जिसके सहारे कोई समाज परस्पर व्यवहार करता है।)

मेरिओ ए. पेइ और फ्रैंक गेनर - "The language is system of communication by sound, i.e. through the organs of speech and hearing, among human-beings of certain group of community, using vocal symbols possessing arbitrary conventional meanings." (मनुष्यों के वर्ग विशेष में आपसी व्यवहार के लिए प्रयुक्त वे ध्वनि-संकेत जिनका अर्थ पूर्व निर्धारित एवं परम्परागत है तथा जिनका आदान-प्रदान जीभ और कान के माध्यम से होता है भाषा कहलाते हैं।

एन साइक्लोपीडिया ब्रिटानिका - "Language may be defined as an arbitrary system of Vocal symbols by means of which human beings as members of a social group & Participants in culture interact and communicate." (भाषा व्यक्त ध्वनिचिन्हों की उस पद्धत्ति को कहते है जिसके माध्यम से प्रत्येक समाज का मानव-सदस्य और सांस्कृतिक सहभागी पारस्परिक व्यवहार एवं विचारों का आदान प्रदान करते हैं।)

भोलानाथ तिवारी की पुस्तक भाषाविज्ञान में प्राप्त पाश्चात्य परिभाषाएँ -

स्त्रुत्वा - "A language is system of arbitrary vocal symbols by menas of which members of social group co-operate and interact." (भाषा यादृच्छिक ध्वनि प्रतिकों की वह व्यवस्था है जिसके सहारे कोई व्यक्ति या सामाजिक समुदाय परस्पर सहयोग और आंतरक्रिया कर सकते हैं।)

क्रोचे - "Language is articulated limited sound organised for the purpose of expression." (अभिव्यंजना के लिए प्रयुक्त सीमित तथा सुसंगठित ध्वनि को भाषा कहते हैं।)

सपीर - "Language is a purely human and non-instivctive method of communicating ideas, emotions and desires by means of voluntarily produced symbols." (भाषा एक ऐसी विशुद्ध मानवीय एवं प्रयत्न साध्य ध्वनि व्यवस्था है जिसके माध्यम से व्यक्ति जब चाहे तब अपने विचारों, भावों एवं इच्छाओं को दूसरों पर व्यक्त करता है।

इस तरह भाषावैज्ञानिकों ने भाषा को परिभाषा बद्ध करने का प्रयास किया है विवेचित सभी परिभाषाओं पर गौर करने पर कुछ बातें सामने आती है कि चंद शब्दों में भाषा को बाँधकर उसकी पूरी तस्वीर स्पष्ट करना भी मुश्किल होता है, आलोचना करने पर वे सर्वथा निर्दोष नहीं सिद्ध हो पाती। किसी में कोई त्रुटि दिखती है तो किसी में कोई। अव्याप्ति, अतिव्याप्ति जैसे अनेक दोष हैं जिन पर परिभाषा बनाते समय ध्यान रखना होता है। अर्थात सभी परिभाषाएँ सटीक नहीं है ऐसा नहीं है। कभी-कभी अनावश्यक शब्द प्रयोग से लाभ नहीं होता। भाषा का स्वरूप देखते समय भाषा के दोनों (स्थूल तथा सूक्ष्म) रूप देखें जाते हैं। अर्थात भाषा अपने व्यापकतम रूप में (नेत्रग्राह्य, स्पर्शग्राह्य, श्रोत्रग्राह्य) वो साधन है जिसके माध्यम से हम सोचते हैं तथा विचारों और भावों को व्यक्त करते हैं। मगर भाषाविज्ञान

में हम जिस भाषा का अध्ययन करते है वह इतनी व्यापक नहीं है। भाषाविज्ञान में प्रधानत: वाचिक भाषा का ही अध्ययन होता है। उस भाषा के बारे में संक्षेप में कहा जा सका है -

1) भाषा मनुष्यों के विचार-विनिमय का माध्यम है।

2) भाषा उच्चारण अवयवों से नि:सृत ध्वनियों का समूह है।

3) उच्चरित ध्वनियाँ विश्लेषणीय होती है।

4) भाषा में प्रयुक्त ध्वनि-समूह सार्थक होते हैं।

5) ध्वनि समूह के अर्थ यादृच्छिक होते हैं।

6) भाषा में प्रयुक्त ध्वनि-प्रतीकों के समूह में एक व्यवस्था होती है।

7) भाषा का प्रयोग उसे समझनेवाले समाज में होता है।

1.3 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न :

(अ) उचित विकल्प चुनकर वाक्य फिर से लिखिए।

1. 'भाषा' शब्द किस भाषा के 'भाष्' धातु से बना है?
   अ) संस्कृत ब) उर्दू क) बोडो ड) मराठी

2. भावों को व्यक्त करने का सार्थक प्रयास है -
   अ) स्पर्श ब) भाषा क) संकेत ड) आँख

3. मनुष्य अपने विचारों को मुख्यत: कितने रूपों में प्रकट करता है?
   अ) चार ब) तीन क) दो ड) एक

4. भाषा का कौनसा रूप प्रभावी होता है?
   अ) संकेत ब) लिखित क) रंग ड) मौखिक

5. 'सोफिस्ट' में किसने ने अपने विचार प्रस्तुत किए हैं?
   अ) क्रोचे ब) स्वीट क) स्त्रुत्वा ड) प्लेटो

6. 'ध्वन्यात्मक शब्दों द्वारा विचारों को प्रकट करना ही भाषा है।' उक्त भाषा की परिभाषा के विद्वान है -
   अ) ब्लॉक और ट्रेगर ब) सपीर क) स्वीट ड) प्लेटो

7. पाश्चात्य भाषा वैज्ञानिकों में 'विचारों को मूक या ध्वन्यात्मक बातचीत किसने माना है?
   अ) स्वीट ब) क्रोचे क) प्लेटो ड) स्त्रुत्वा

8. ''जिन ध्वनि चिन्हों द्वारा मनुष्य परस्पर विचार-विनिमय करता है उनको समष्टि रूप से भाषा कहते हैं।'' उक्त भाषा की परिभाषा के भाषा वैज्ञानिक हैं -
   अ) पी. डी. गुणे ब) बाबुराम सक्सेना क) भोलानाथ तिवारी ड) सुकुमार सेन

9. संकेतों के द्वारा अपनी बात पहुँचाने मनुष्य किस साधन का प्रयोग करता है।

अ) नेत्र ब) कर्ण क) गंध ड) स्पर्श

10. भाषा को संकेत किसने माना है?

अ) प्लेटो ब) स्वीट क) वेन्द्रिय ड) स्त्रुत्वा

1.2.2 भाषा के अभिलक्षण (Property) :

'अभिलक्षण' शब्द संस्कृत भाषा का है। अर्थ है भेदक, लक्षण, विशिष्टता, मूलभूत लक्षण (Property)। भाषा विज्ञान में भाषा का संदर्भ मानवीय भाषा से है। अर्थात यह जानना आवश्यक हो जाता है कि मानव द्वारा विचार-विनिमय के लिए प्रयुक्त भाषा के अभिलक्षण या उसकी मूलभूत विशेषताएँ कौन-कौन सी है? अन्य भाषिक संदर्भों से मानवीय भाषा को पृथक् कैसे करते है? ये अभिलक्षण मानवीय भाषा की दृष्टि से विशेष महत्त्वपूर्ण होते है। हॉकिट (Hoket) ने भाषा के सात अभिलक्षणें का वर्णन किया है। अपनी पुस्तक 'A course in Modern Linguistics', में मानवीय भाषा की प्रमुख विशेषताओं को रेखांकित करते हुए मानवेतर भाषाओं से उसकी पृथकता दिखाई है। अन्य भाषा वैज्ञानिकों ने भी भाषा के अभिलक्षणों का उल्लेख किया है जिसके आधार पर अभिलक्षणों की संख्या बढ सकती है। जिस पर चर्चा की जाती है -

1) यादृच्छिकता (Arbitrariness) :

यादृच्छिकता का अर्थ है, माना हुआ। यादृच्छिकता से तात्पर्य है कि ध्वनि प्रतीक (या यों कहें कि शब्द एवं उससे सम्बन्धी।) आशय में कोई तात्विक अथवा तार्किक सम्बन्ध नहीं है। अर्थात् ध्वनि प्रतीक ऐच्छिक है। एक विशेष समुदाय किसी भाव या वस्तु के लिए जो शब्द बना लेता है उसका उस भाव से कोई संबंध नहीं होता। वह समाज की इच्छानुसार माना हुआ संबंध है। जैसे वनस्पति विशेष के लिए प्रयुक्त 'वृक्ष' शब्द ध्वनि प्रतीक से अभिव्यक्त किया जाता है। उस वास्तविक वनस्पति एवं 'वृक्ष' शब्द में कोई सह जात अथवा तार्किक संबंध नहीं है। अर्थात यह आवश्यक नहीं है कि वनस्पति विशेष के लिए 'वृक्ष' शब्द विशेष का ही प्रयोग है। किसी वस्तु या भाव का किसी शब्द से सहज स्वाभाविक संबंध नहीं होता। यदि यह संबंध सहज स्वाभाविक होता तो अलग-अलग भाषाओं में एक वस्तु के लिए एक ही शब्द होता। 'वृक्ष' के लिए 'झाड', 'गाछ', ट्री जैसे अनेक शब्द विभिन्न भाषाओं में नहीं होते। विभिन्न भाषाओं के सभी शब्दों में यादृच्छिकता की स्थिति पायी जाती है, विभिन्न भाषाओं के वाक्यों में पदक्रम की व्यवस्था भी यादृच्छिकता होती है।

2) सृजनात्मकता (Creativity) :

मानवीय भाषा की मूलभूत विशेषता उसकी सृजनात्मकता है। सृजनात्मकता के लिए अंग्रेजी शब्द है 'Creative' मनुष्य शब्दों और वाक्यविन्यास की सीमित प्रक्रिया से हमेशा नए-नए प्रयोग करता है। अन्य प्राणियों में बोलने की प्रक्रिया में परिवर्तन नहीं होता। अर्थात मानवेतर प्राणी और मानव की भाषा में सृजनात्मकता के कारण भेद स्पष्ट होने लगता है। मानव, सीमित शब्दों को ही अलग-अलग ढंग से प्रयुक्त है और अप्रचलित शब्दों का प्रयोग भी करता, कभी नए शब्दों का निर्माण करता है। साहित्य में कवि नए शब्द गढ़ देता है। पाठक उसका स्वीकार कर विषय संदर्भ

के आधारपर अर्थ का अन्वेषण करते है। इस तरह मनुष्य भावाभिव्यक्ति या अपने लंबे-चौडे भाषण के समय भिन्न भिन्न शब्दों या वाक्यों का प्रयोग करता है। नए-नए प्रयोग अर्थात उत्पादकता, सृजनात्मकता है।

3) अनुकरणग्राह्यता :

अनुकरण ग्राह्यता मानवीय भाषा का प्रमुख अभिलक्षण माना जाता है। मनुष्य की भाषा जन्मजात नहीं होती। मनुष्य, भाषा को समाज में अनुकरण से धीरे-धीरे सीखता है। मानवेत्तर प्राणियों की भाषा जन्मजात होती है तथा वे उसमें अभिवृद्धि या परिवर्तन नहीं कर सकते। अर्थात उनकी भाषा सभी कालों में एक जैसी ही रही है किंतु मानवीय भाषा अनुकरण ग्राह्य होने कारण मनुष्य केवल एक भाषा का जानकर नहीं रहता बल्कि एक से अधिक भाषाओं को भी सीखता है।

4) परिवर्तनशीलता (Interchangebility) :

मानव भाषा परिवर्तनशील होती है। मानवेतर जीवों की भाषा परिवर्तनशील नहीं होती जैसे बकरी, बिल्ली पीढी-दर पीढी एक प्रकार की ही अपरिवर्तित भाषा का प्रयोग करती आ रही है। मगर मानवीय भाषा परिवर्तित होती रहती है। तत्सम शब्दों के रूप बिगड़कर तद्भव बनते हैं। फिर संकर इस तरह परिवर्तित होते रहते हैं। एक युग में प्रयुक्त शब्द दूसरे युग तक आते-आते नया रूप ले लेते हैं। पुरानी भाषा में इतने परिवर्तन हो जाते हैं कि नयी भाषा का उदय हो जाता है। संस्कृत से हिंदी तक की विकास यात्रा भाषा की परिवर्तनशीलता का उदाहरण है। भाषा का विकास परिवर्तनशीलता के अभिलक्षण को अधिक स्पष्ट करता है।

5) विविक्तता (Discreetness) :

मानव भाषा की संरचना कई घटकों से होती है। ध्वनि से शब्द और शब्द से वाक्य विच्छेद घटक होते है। अर्थात मानव भाषा में अनेक इकाइयों का योग रहता है। इसीकारण मानव भाषा को विविक्तता कहा जाता है। भाषा में जिन ध्वनियों का प्रयोग किया जाता है, उनमें सामान्य रूप से अविच्छिन्न प्रवाह रहता है। बोलते समय हम अपने विचार को सम्पूर्ण रूप में व्यक्त करना चाहते हैं और उसके लिए ध्वनियों की अविच्छिन्न कडी का प्रयोग करते हैं यानी हम कोई विराम या मौन की स्थिति नहीं पाते। केवल शब्दों और शब्दों को ध्वनि इकाइयों में खंडित पाते हैं। इस प्रकार मानव की भाषा में विभिन्न इकाइयों की विच्छिन्न (विविक्त) स्थिति का अभिलक्षण दिखाई देता है।

6) द्वैत / द्वित्त्व अभिरचना (Duality) :

यह अभिलक्षण भाषा के दोहरे स्तर की ओर ध्यान आकृष्ट करता है। किसी बात को कहते या सुनते समय हम उसके दो निश्चित स्तर देख सकते है। पहले स्तर का संबंध कथ्य (अर्थ) से है, जिसका संबंध अविच्छिन्न विचार को अर्थ की दृष्टि से न्यूनतम इकाईयों की कडी में बांधने से है। दूसरे स्तर का संबंध अभिव्यक्ति माध्यम (ध्वनि) की इकाईयों से रहता है जैसे - विचार की न्यूनतम इकाई 'रबड' है, तो उसकी अभिव्यक्ति की न्यूनतम इकाईयाँ 'र्+अ+ब+अ+ड्+अ' है। ध्वनि की इन इकाईयों का अपना कोई अर्थ नहीं होता। केवल इनका अपना रूप और प्रकार्य होता है। 'रबड' रूपिम है किंतु 'रबड' में अर्थभेदक इकाई रूपिम नहीं। इस प्रकार रूपिम अर्थद्योतक इकाई है तो स्वनिम अर्थभेदक है। इससे स्पष्ट होता है कि मानवीय भाषा एक साथ दो अभिरचनाओं के प्रतिफल का परिणाम है इसी कारण भाषा को द्वित्त कहा गया है।

7) वाक्छल (Prevarication) :

भाषा का प्रयोग करते समय मनुष्य उन्हीं व्याकरणिक नियमों के प्रयोग की सावधानी बरतता है। व्याकरण के नियम उसके मन में चेतन, अचेतन रूप में उपस्थित रहते हैं। उसकी भाषा पदक्रम की दृष्टि से सही होती है किंतु यह होना भाषिक यथार्थ है। बाह्य यथार्थ से उसका कोई तार्किक संबंध नहीं होता, फिर भी कोई वाक्य बाह्य यथार्थ के संबंध में शुद्ध नहीं हो सकता। भाषा व्याकरणिक स्तर पर पूर्ण शुद्ध होते हुए भी तर्क की कसौटि पर खरी नहीं उतर सकती है। वाक्छल दो रूपों में हो सकता है। साधारण और चमत्कारिक। जैसे ''जयशंकर प्रसाद राष्ट्रकवि है।'' (सामान्य या साधारण वाक्छल), ''मैं मानव को इंसान बना सकता हूँ।'' (चमत्कारिक वाक्छल) इसीतरह भाषा कभी-कभी अशुद्ध संरचना को अज्ञानवश भी श्रोता तक पहुँचा सकती है।

8) विस्थापन / अंतरणता (Displacement) :

मानव, भाषा की खासियत है कि वह भूत, वर्तमान और भविष्यत तीनों कालों के विचारों का संप्रेषण करती है। समय और स्थान की दृष्टि से मानव भाषा विस्थापित हो सकती है। भाषा ही मनुष्य को अतीत की घटनाओं पर विचार करने की सामर्थ्य प्रदान करती है। जिसमें अतित एवं भविष्य की योजनाओं के संकेत होते हैं, एक स्थानपर बैठकर विश्व के किसी भी स्थान के सम्बन्ध में प्रतिक्रिया देने की क्षमता केवल मानव भाषा में हैं।

9) असहजवृत्तिकता (Non Instinctivity) :

अन्य प्राणियों की भाषा और मानवीय भाषा दोनों के बीच की पृथकता को अंकित करनेवाला यह अभिलक्षण है। मानवेतर भाषा प्राणी की सहजप्रवृत्ति आहार, निद्रा, भय, मैथुन से सम्बद्ध रहती है। इसके लिए वे कुछ ध्वनियों का उच्चारण करते हैं किंतु मानवीय भाषा सहजवृत्तिक नहीं होती।

10) मौखिक श्रव्य-सरणि (Vocal Auditory Channel) :

मनुष्य अपने भावों को दूसरों तक पहुँचाने के लिए ध्वनियों का प्रयोग करता है। अर्थात संदेश ध्वनि रूप में श्रोता तक पहुँचता है। मनुष्य की प्रकृति मूलत: मौखिक श्रव्य ही है। वक्ता अभिव्यक्ति के लिए भाषिक प्रतीक को मुख से उच्चरित करते हैं और ग्रहण करनोला उसे कान से सुनता है। उसका लिखित रूप मौखिक रूप पर ही आधारित होता है। मानवेतर प्राणी संप्रेषण की कुछ अन्य सरणियों का प्रयोग करते हैं। उदाहरण के लिए भौरा गुंजन कर तथा मधुमक्खिया नृत्य के माध्यम से भाषाभिव्यक्ति करती है। इस प्रकार केवल मानव भाषा ही मौखिक श्रव्य माध्यम पर आधारित है।

11) सांस्कृतिक-संचरण (Cultural Transmission) :

मानव भाषा सांस्कृतिक संचरण का परिणाम है। मानव जिस संस्कृति या परिवेश में पलता तथा बड़ा होता है उस संस्कृति या परिवेश का प्रभाव उसकी भाषा पर पडता है। विदेशी संस्कृति में पला-बड़ा बच्चा विदेशी संस्कृति से प्रभावित रहेगा। अंग्रेजी संस्कृति से प्रभावित उसकी भाषा में अंग्रेजी संस्कारों के अनुसार शब्द, वाक्य प्रयोग होंगे। भारत में अनेक सम्प्रदायों से प्रभावित प्रांत है। खान-पान, रीतिरिवाज, पोशाक आदि। प्रांतो-प्रांतो की अपनी-अपनी पृथक संस्कृति है परिणामत: भाषा भी सांस्कृतिक संचरण से प्रभावित रहती है।

12) भाषा की प्रतीकात्मकता :

भाषा का प्रमुख अभिलक्षण उसकी प्रतीकात्मकता है। प्रतीक भाषा की एक ऐसी व्यवस्था है जिसके अन्तर्गत किसी शब्द विशेष का एक निश्चित अर्थ होता है। वास्तव में शब्द के गुण से अर्थ का कोई संबंध नहीं होता। बल्कि विशिष्ट वस्तु को प्रतीकित करने के लिए प्रचलित शब्द होता है। उदा. 'पंकज' और 'जलज' शब्द दोनों कमल के पर्याय है जबकि दोनों का अर्थ क्रमश: कीचड़ जल में पैदा होनवाला है। प्रतीक शब्द के अनिवार्य गुण या धर्म से कुछ अलग ही अपनी सत्ता रखता है। प्रतीक मूल नहीं होता वह किसी अन्य पदार्थ के लिए व्यवहृत होता है। उसमें मूल पदार्थ को अनुभव करने की शक्ति होती है। प्रसिद्ध विद्वान पीयर्स ने प्रतीक के बारे में कहा है कि, "A sign is something that stands to some body for something else in some respect or capacity." प्रतीक की अवधारणा त्रिस्तरीय है, क्रमश: 'संकेतित वस्तु,' संकेतार्थ और संकेत प्रतीक कहा जाता है। इसमें सांकेतिक वस्तु का सम्बन्ध बाह्य जगत में स्थित इकाई से है जैसे बैल, किताब आदि। संकेतार्थ प्रयोगकर्ता के मन में स्थित उस इकाई की संकल्पना है। प्रतीक, संकेतार्थ को अभिव्यक्ति देनेवाली इकाई है। जो संकेतित वस्तु के स्थान पर कुछ विशेष संदर्भ में व्यक्त होती है।

13) अधिगमता (Learnability) :

मानव की भाषा अर्जन और अभ्यास प्रक्रिया पर आधारित होती है। वह हमें प्राप्त नहीं होती, वरना उसे सीखना पडता है। साथ ही एक भाषा जाननेवाला व्यक्ति अन्य भाषाएँ सीख सकता है, बोल सकता है। दूसरी भाषा सीखते समय उस भाषा की रूप, रचना व्यवधान तो उत्पन्न करते हैं किंतु अभ्यास करने से ये व्यवधान दूर हो जाते हैं अर्थात मनुष्य के मश्तिष्क की ऐसी रचना है वह कई भाषाएँ सीख सकता है।

14) भूमिकाओं का पारस्परिक परिवर्तन :

भाषा में प्रमुख दो पक्ष होते है - वक्ता और श्रोता। जब कोई वक्ता या श्रोता हो तभी भाषा का अस्तित्व संभव होता है। वार्ता के समय वक्ता और श्रोता की भूमिकाएँ परिवर्तित होती रहती है। यानी एक समय पर जो वक्ता होता है वह श्रोता बनता है और श्रोता वक्ता की भूमिका ग्रहण करता है। इसी प्रकार भाषा में भूमिकाओं का पारस्परिक परिवर्तन होता रहता है।

15) विशेषता / दक्षता (Specialization) :

इस अभिलक्षण से एक बात स्पष्ट होती है कि प्रयोग में स्पष्टता और सहजता होती है। अन्य कार्य करते समय भी मनुष्य संप्रेषण क्रिया में संलग्न रह सकता है। भोजन, लेखन, या मोटरगाडी चलाते समय भी भाषिक संप्रेषण कर सकता है। संप्रेषण में सभी शब्द शक्तियों (अभिधा लक्षणा, व्यंजना) का उपयोग करता है जो बात मानवेतर भाषाओं में संभव नहीं है। अत: विशेषता या दक्षता मानवीय भाषा का एक प्रभावी लक्षण है।

संक्षेप में कहा जाए तो उपर्युक्त मानवीय भाषा के अभिलक्षणों को गौर से देखा तो ये अभिलक्षण केवल मानव-भाषा में ही परिलक्षित होते हैं। मानवेतर भाषाओं में इनका अभाव दिखाई देगा, अत: ये अभिलक्षण मानवीय भाषा की पृथकता को स्पष्ट करने में समर्थ है ऐसा ही मानना पडेगा। साथ ही भाषा की सामान्य विशेषताओं से परिचित होना भी आवश्यक लगता है।

भाषा की प्रवृत्तियाँ / प्रकृति / विशेषताएँ :

भाषा का गहन सम्बन्ध समाज से है। व्यक्ति समाज का एक घटक है और समाज से सन्निहित भाषा समाज जीवन के प्रयोग को सबल बनाती है। यही भाषा उत्तरोत्तर सहज स्वभाव एवं अपने स्वाभाविक गुणों से प्रस्तुत होकर विकासोन्मुखी होती रहती है। ऊपर हम मानवीय भाषा के अभिलक्षण अर्थात उसकी प्रॉपर्टी देख चुके हैं। प्रॉपर्टी के बिना मानवीय भाषा का कोई अस्तित्व नहीं है। लेकिन संसार में जितनी भाषाएँ हैं उनमें भाषा सम्बन्धी कुछ ऐसी प्रवृत्तियाँ और विशेषताएँ हैं जो सभी भाषाओं में समान रूप से पायी जाती है। मानवेतर भाषा और मानवीय भाषा दोनों का अध्ययन करनेवाला प्राणी मनुष्य ही है। भाषाविज्ञान में जो भाषा रहती है वह उतनी व्यापक नहीं रहती। भाषावैज्ञानिक दृष्टि से ''जिसकी सहायता से मनुष्य परस्पर-विचार-विनिमय का सह्योग करते हैं उस यादृच्छिक रूढ़ ध्वनि संकेत की प्रणाली को भाषा कहते है।'' (शर्मा डॉ. देवेन्द्रनाथ : 1972) यह भाषा व्याकरण सम्मत होती है। अर्थात व्याकरण के नियम किसी भाषा विशेष में लागू होते हैं। किन्तु अब जिन प्रवृत्तियों, प्रकृति या विशेषताओं की चर्चा होगी उसका संबंध केवल भाषा से है, ये भाषा की विशेषताएँ है। जिसमें दो बातें प्रमुख है भाषा अर्जित सम्पत्ति है और वह संश्लिष्टावस्था से विश्लिष्टावस्था की ओर उन्मुख होती है। इसके साथही भाषा की जो विशेषताएँ है उन्हें देखना भी आवश्यक है।

1) भाषा परम्परागत होती है।
2) भाषा अर्जित होती है।
3) भाषा सामाजिक सम्पत्ति है।
4) भाषा परिवर्तनशील होती है।
5) भाषा अनुकरण से सीखी जाती है।
6) भाषा पैतृक सम्पत्ति नहीं है।
7) भाषा का कोई अंतिम रूप नहीं होता।
8) भाषा कठिनता से सरलता की ओर जाती है।
9) भाषा की एक भौगोलिक सीमा होती है।
10) भाषा का एक स्थिर और मानक रूप होता है।
11) भाषा संयोगअवस्था से वियोग अवस्था की ओर जाती है।

इस तरह भाषा में प्राप्त समान और सामान्य तत्त्व ही भाषा की विशेषताएँ हैं । अब क्रमश: इनपर विचार किया जाएगा -

1) भाषा परम्परागत होती है :

हर भाषा का अपना एक इतिहास अर्थात परम्परा रहती है। आज जिस भाषा को हम देखते है, बोलते है, विचार-विनिमय करते है उसका इतिहास बहुत पुराना है। उसके रूप में जरूर परिवर्तन हुआ होगा किंतु वह सदियों से चली आ रही है। भाषा पीढी-दर-पीढी आगे चलती रहती है, अपनी पुरानी व्यवस्था के साथ नई-नई बातों को अपनाती हुई अनावश्यक बातों का त्याग करके आगे बढती है। भाषा की परम्परा कब से शुरू हुई यह देखना अपने

आप से छलावा होगा। एक बात सच है कि हम भाषा को सब से पहले अपने माता-पिता से ग्रहण करते हैं। इस तरह इस भाषा की एक परम्परा शुरू हो जाती है इसी परम्परा से समाज में मनुष्य ने उसे ग्रहण किया है।

2) भाषा अर्जित सम्पत्ति है :

भाषा का प्रचार-प्रसार समाज से होता है। भाषा एक सम्पत्ति है और वह समाज में होती है। भाषा का अर्जन समाज में रहकर किया जाता है, भले ही हम कहे भाषा को हम माता-पिता से ग्रहण करते हैं किंतु माता-पिता भी किसी न किसी समुदाय या समाज के अंग होते हैं वे भी भाषा को समाज में रहकर ही अर्जित करते हैं। मनुष्य में अन्य प्राणियों की अपेक्षा इतनी विलक्षणता होती है कि वह भाषा सीख सकता है। वह जिस वातावरण या समाज में रहता है उसी की भाषा सीख सकता है। हमारे बच्चे जिस भाषा के वातावरण में रहेंगे वहाँ की भाषा अर्जित करेंगे, अंग्रेजी प्रदेश के बच्चे भारत के जिस प्रांत में रहेंगे उस प्रांत की भाषा सीखेंगे और बोलेंगे। अर्थात जिस भाषा के क्षेत्र में जो व्यक्ति उत्पन्न होता है उसे वह अनायास ही सीख लेता है। भाषा के अर्जन का यही अर्थ है कि उसे अपने आसपास के वातावरण से सीखना पडता है।

3) भाषा सामाजिक सम्पत्ति है :

भाषा पर किसी एक व्यक्ति का अधिकार नहीं हो सकता। भाषा समाज द्वारा निर्मित समाज की वस्तु या सम्पत्ति है। समाज में रहकर विचारों के आदान-प्रदान के लिए माध्यम रूप में समाज की भाषा को ग्रहण किया जाता है। कभी उसे परम्परा से ग्रहण किया जाता है या कभी मनुष्य उसका अर्जन करता है। इस भाषा का सम्बन्ध समाज से बहुत घनिष्ठ रहता है। मनुष्य द्वारा परम्परा से प्राप्त और अर्जित यह भाषा समाज की सम्पत्ति (वस्तु) बनकर रह जाती है । उसका विकास भी समाज में ही होता है। भाषा जैसी सामाजिक वस्तु को शिशु तक पहुँचाने का काम पहले-पहले माता करती है इसलिए उसे मातृभाषा कहते हैं किंतु जिस भाषा को वह सिखाती है वह समाज की ही सम्पत्ति होती है।

4) भाषा परिवर्तनशील होती है :

परिवर्तन यह प्रकृति की एक विशेषता है, सृष्टि की प्रत्येक वस्तु में धीरे धीरे परिवर्तन होने लगता है। एक तो वह वस्तु पुरानी बन जाती है नहीं तो उसमें नयापन लाया जाता है। जिस प्रकार बार-बार वस्तु का उपयोग करने से वह घिस जाती है उसी प्रकार भाषा के कुछ शब्द नए अर्थ ग्रहण करते हैं अर्थात भाषा भी विकसित होती रहती है। उसका विकास ही परिवर्तन है। एक भाषा का जो रूप आज देखने को मिलता है वह सौ वर्षों पहले नहीं था और जो सौ वर्ष पहले था वह उससे पहले नहीं था। उदाहरण के लिए वेद ग्रंथों में जिस भाषा का प्रयोग हुआ है। उसका वही रूप वाल्मीकी, कालिदास जैसे संस्कृत के प्रसिद्ध ग्रंथों में प्रयोग नहीं हुआ है। अनेक भाषाओं का जो विकास हुआ है वह परिवर्तन के अन्तर्गत ही आता है। यह परिवर्तन ध्वनि-शब्द, व्याकरण, इनमें कोई भी अपरिवर्तित नहीं रहता। सत्याग्रह या आन्दोलन जैसे शब्द सन 1921 ई. के बाद प्रयोग में आने लगे। वैदिक भाषा में 'असुर' शब्द का अर्थ 'देव' होता था जो बाद में राक्षस का वाचक बन गया।

5) भाषा अनुकरण से सीखी जाती है :

भाषा अनुकरण के द्वारा सीखी जाती है। इसके साथ ही बौद्धिक प्रयत्न द्वारा भी सीखी जाती है। अत:

अनुकरण और बौद्धिक प्रयत्न दोनों पद्धतियों से भाषा सीखी जा सकती है। हम अपनी मातृभाषा अनुकरण द्वारा सीखते हैं और अन्य भाषाएँ (भिन्न प्रदेश, विदेश की भाषाएँ) हिंदी, फ्रान्सिसी अंग्रेजी आदि भाषाएँ बौद्धिक प्रयत्न द्वारा बच्चा सबसे पहले अपने माता-पिता, भाई, बहनों आदि पारिवारिक सदस्यों के विभिन्न शब्दों के उच्चारण को सुनता है और उन्हें ग्रहण करके वैसा ही बोलने का प्रयत्न करता है अत: यहाँ वह बडों का अनुकरण करता है। इसीलिए बच्चों से बात करते समय जानबूझकर हकलाकर या तुतली बोली में बोलना गलत है। बच्चा बडों का अनुकरण करता है। इसीकारण उससे शब्दों का स्पष्ट और सही उच्चारण नहीं हो पाएगा । इसलिए बच्चों से बात करते समय शब्दों को बीच-बीच में तोड-मरोडने के बजाय स्पष्ट, साफ और शुद्ध उच्चारण करना अनिवार्य है, इसतरह हम माता-पिता और समाज का अनुकरण करके और बौद्धिक प्रयत्न से भाषा सीखते है।

6) भाषा पैतृक सम्पत्ति नहीं है :

भाषा पैतृक सम्पत्ति के रूप में नहीं मिलती। माता-पिता की सम्पत्ति जमीन, जायदाद, धन, रुपया-पैसा उनके निधन के बाद विरासत में उनकी संतान को सबकुछ मिल सकता है किंतु भाषा की स्थिति ऐसी नहीं है। माता-पिताओं से बच्चे भाषा सीखते है मगर माता-पिता यदि किसी एक दो भाषाओं के जानकार या विद्वान हो तो उन्होंने पाया हुआ भाषा रूपी धन या सम्पत्ति विरासत में बच्चों को सौ प्रतिशत रूप में नहीं मिलता। अर्थात माता-पिता की अन्य सम्पत्ति की तरह उनकी संतान को विरासत के रूप में भाषा नहीं मिलती।

7) भाषा का कोई अंतिम रूप नहीं होता :

भाषा का परिवर्तनशील होना ही स्पष्ट करता है कि भाषा का कोई अंतिम स्वरूप नहीं होता। भाषा हमेशा बदलती रहती है अर्थात जीवित भाषा का कोई अंतिम रूप नहीं होता। जो भाषा, व्यवहार में चल रही है जिसका विचार विनिमय के लिए प्रयोग हो रहा है उसका विकास होता रहता है। वह उसके जीवित होने का लक्षण है। मगर जो भाषा प्रयोग की दृष्टि से समाज से उठ गई है अर्थात प्रचलित नहीं है वह मृत सी हो जाती है। किन्तु दोनों का भी कोई अंतिम रूप नहीं होता। भाषा के ध्वनि-संकेत सीमित है उनकी संख्या निश्चित है। मगर भाषा अथ से इथ तक नहीं है।

8) भाषा कठिनता से सरलता की ओर जाती है :

मनुष्य की प्रवृत्ति है कि वह जीवन में जो सहज-सरल होगा उसे पहिले प्राप्त करता है। सहज-सरल रास्ते पर से चलना सब पसंद करते हैं मगर चढ़ाई या दुर्गम घाटी से चलना कठिन-सा लगता है। मनुष्य अपने विचारों को प्रकट करने के लिए जिस माध्यम भाषा का प्रयोग करता है उसमें भी वह सरलता चाहता है। बच्चों को भाषा सीखाते समय सहज-सरल आसान रूपों को पहले सिखाया जाता है। पहली कक्षा में व्याकरण नहीं पढ़ाया जाता। पढ़ाते समय स्वर, व्यंजन ऱ्हस्व, दीर्घ मात्रा आदि उच्चारण सिखाते समय भी प्रथम सरल उच्चारण बाद में कठिन उच्चारण, भाषा के कठिण रूप सरल होने लगते हैं जैसे कर्म-कम्म-काम, अक्षि-अक्खि-आँख आदि शब्दों का विकास क्रम इसका प्रमाण है। भाषा के कठिन रूपों का सरलीकरण किया जाना ही उसका कठिनता से सरलता की ओर जाना है। उदा. ब्रह्म-ब्रह्म, चिन्ह-चिह्न, चट्टोपाध्याय - का चटर्जी लिखा जाना कठिनता से सरलता की ओर जाने की प्रवृत्ति का परिणाम है।

9) भाषा की एक भौगोलिक सीमा होती है :

प्रत्येक भाषा की एक भौगोलिक सीमा होती है। कोस-कोस पर बदले पानी आठ कोस पर बानी। इस उक्ति के अनुसार आठ कोस फासला चले जानेपर भाषा में परिवर्तन आने लगता है। अर्थात उच्चारण, शैली में थोडा-थोडा अन्तर दिखाई देने लगता है। हर भाषा की स्थान और काल की दृष्टि से सुनिश्चित सीमाएँ होती है। महाराष्ट्र की भौगोलिक सीमाओं के अंदर मराठी भाषा की सीमाएँ है। हमारे देश में भाषावार प्रांत रचना हुई है अत: भाषाओं की सीमाओं को लेकर कोई संभ्रम की स्थिति नहीं है। हर द्वीप में जितने देश हैं । उन देशों की भौगोलिक सीमाएँ ही उन देशों की भाषाओं की भौगोलिक सीमाएँ हैं। सीमाओं का मतलब भाषा अपनी सीमा तक प्रभावी रहती है सीमा के बाद वह प्रभावहीन बन जाती है, सीमा के बाहर उसका स्वरूप थोड़ा या अधिक परिवर्तित हो जाता है।

10) भाषा का एक स्थिर और मानक रूप होता है :

परिवर्तन भाषा का अनिवार्य क्रम है। उसके परिणाम स्वरूप भाषा में विविधता आ जाती है। इसी कारण एक युग की भाषा दूसरे युग की भाषा से भिन्न होती है। भाषा नैसर्गिक नियम से परिवर्तित होना चाहती है और मनुष्य उस परिवर्तन को रोकना चाहता है उस पर नियंत्रण करने का प्रयास करता रहता है। उसे स्थिर बनाने का प्रयास ही मानक रूप को जन्म देता है। मानक रूप में व्याकरण की भूमिका भी अहम रहती है। मानक रूप का प्रयोग प्रदेश के शासन के सभी प्रकार के कामकाज के लिए किया जाता है।

11) भाषा संयोगअवस्था से वियोग अवस्था की ओर जाती है :

भाषा प्राय: संयोग से वियोग की ओर जाती है। संयोग का अर्थ है मिली होने की स्थिति जैसे- 'लक्ष्मण: गच्छति' तथा वियोग का अर्थ है अलग हुई स्थिति, जैसे 'लक्ष्मण जाता है। संस्कृत में केवल 'गच्छति' संयुक्त रूप से काम चल जाता था। पर हिन्दी में 'जाता है' (वियुक्त रूप) का प्रयोग करना पडता है। अर्थात संस्कृत भाषा संयोगावस्था की है और इससे विकसित हिंदी तथा अंग्रेजी भाषा वियोगावस्था की है। संस्कृत, हिंदी और अंग्रेजी की अपेक्षा प्राचीन है। अत: स्पष्ट होता है कि भाषा की विशेषता है - संयोगावस्था से वियोगावस्था की ओर जाना।

इस प्रकार भाषा के अभिलक्षण के साथ भाषा की प्रवृत्तियों पर भी इसलिए प्रकाश डाला गया है कि मानवीय भाषा की पृथकता के साथ भाषा की प्रवृत्तियों को समझना सहज होगा। उसका सहज स्वभाव ही उसकी विशेषताएँ है जो सभी भाषाओं में प्राप्त होती है।

1.3 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न :

(ब) उचित विकल्प चुनकर वाक्य फिर से लिखिए।

1. 'अभिलक्षण' शब्द कौनसी भाषा का है?
   अ) संस्कृत ब) कन्नड क) कोकणी ड) पाली
2. भाषा के सात अभिलक्षण है, ऐसा किसने कहा है?

अ) ए. ए. कार्डिनोर ब) हॉकिट क) सस्यूर ड) मार्तिन

3. किस शब्द का अर्थ है 'माना हुआ'?
   अ) अनुकरण ग्राह्यता ब) वाक्छल क) यादृच्छिकता ड) विस्थापन

4. भाषा के नए-नए शब्द और वाक्य प्रयोग याने भाषा का कौनसा अभिलक्षण है?
   अ) विस्थापन ब) अधिगमता क) यादृच्छिकता ड) सृजनात्मकता

5. विरासत में कौनसी चीज नहीं मिलती?
   अ) जमीन ब) भाषा क) पिताजी का धन ड) जायदाद

6. भाषा सीखने का सहज-सरल रूप है ....
   अ) व्याकरण ब) स्कूल क) पुस्तक ड) अनुकरण

7. भाषा की सबसे बडी विशेषता है ....
   अ) परिवर्तन ब) कठिनता क) संयोगावस्था ड) अंतिम रूप

8. भाषा में प्रमुख कितने पक्ष होते है?
   अ) एक ब) दो क) तीन ड) चार

9. भाषा किस प्रकार की सम्पत्ति है?
   अ) व्यक्तिगत ब) पैतृक क) सामाजिक ड) व्यावसायिक

10. महाराष्ट्र की भौगोलिक सीमाओं के अन्दर किस भाषा की सीमाएँ हैं?
   अ) हिंदी ब) मराठी क) कन्नड ड) तेलगु

1.2.3 भाषा के विभिन्न रूप :

भाषा के अन्तर्गत भाषा के बहुत से रूप आते हैं। किन्हीं दो व्यक्तियों की भाषा कदापि एक सी नहीं होती है। दोनों की भाषा में भेद नजर आता है। उच्चारण, वाक्यविन्यास, शब्द भंडार आदि में यह अन्तर साफ दिखाई देने लगता है। एक वर्ग के दो व्यक्तियों की भाषा में भी पर्याप्त अंतर होता है भलेही वे साहित्यिक हो, डॉक्टर हो या प्रोफेसर। इस तरह हम देखे तो जितने व्यक्ति होंगे उतनी ही भाषाएँ भी। भाषा का अविर्भाव व्यक्ति में होता है किंतु उसकी प्रेरक शक्ति निश्चित रूप से ही समाज है। अर्थात व्यक्ति-व्यक्ति की भाषा में अन्तर होते हुए भी एक समुदाय की भाषा में समानता होती है। भाषा के विभिन्न रूपों का विभाजन कई आधारों पर किया जा सकता है - इतिहास, भूगोल, प्रयोग, निर्माण, मानकता, मिश्रण, संस्कृति, व्यवसाय, शिक्षा आदि। इन आधारों पर भाषा में अलगाव आ जाता है, भाषा के ये भिन्न स्तर या पृथक रूप ही भाषा के विभिन्न रूप कहे जाते हैं। इस तरह कई आधारों पर भाषा के भेद बनते हैं किन्तु हर समय सभी भेद लाभकारी होते हैं ऐसा नहीं है। हम पाठ्यक्रम के अनुसार भाषा के विभिन्न रूपों का अध्ययन करेंगे।

1) मानक भाषा :

'मानक' शब्द अंग्रेजी 'स्टैंडर्ड' के प्रतिशब्द के रूप में बनाया गया है। 'स्टैंडर्ड लैंग्विज' के अनुवाद के रूप में 'मानक भाषा' शब्द चल पड़ा है। मानक भाषा के अर्थ में 'साधुभाषा', 'टकसाली भाषा', 'शुद्‌ध भाषा', 'आदर्श भाषा' तथा 'परिनिष्ठित भाषा' आदि भी प्रयोग किए जाते हैं।'2 (तिवारी भोलानाथ : 2011)

भाषा का मानक रूप वह है जिसमें वह एक बृहतर समुदाय के विचार-विनिमय का माध्यम बनती है, अर्थात यह भाषा शिक्षित वर्ग की वाणी की प्रतिष्ठा प्राप्त कर लेती है, तब वह मानक या आदर्श भाषा कहलाती है। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि इस भाषा का प्रयोग शिक्षा, दीक्षा, राजकीय कार्यों अर्थात शासन और साहित्यिक रचनाओं में किया जाता है।

मानक भाषा मूलत: प्राय: एक बोली होती हैं किन्तु वह मानक बनते-बनते अन्य क्षेत्रों के ऐसे तत्त्व जो मूलत: उस बोली में नहीं होते उन्हें ग्रहण कर वह भाषा, वह मूल बोली नहीं रह जाती, तथा उसकी संरचना, उसका शब्द भांडार तथा व्याकरण सभी कुछ उससे न्यूनाधिक रूप से अलग हो जाते हैं। उसके लिखित और मौखिक दो रूप होते है। मौखिक रूप सहज सुंदर होता है।

मानक भाषा विभिन्न स्त्रोतों से अनेकानेक प्रकार के तत्त्व ग्रहण करती है और उनमें समन्वय कर अपनी संरचना में एकरूपता लाती है। यानी अपने में बहुरूपता लाने को बाध्य होती है। 'खडी बोली' हिंदी भाषा का उदाहरण यहाँ लिया जा सकता है। आदिकाल, मध्यकाल, आधुनिक काल तथा सांस्कृतिक जागरण से लिए गए तत्त्वों को जोडते जोडते एकरूपी अथवा समरूपी मानक भाषा बनी है।

आचार्य श्यामसुंदर दास मानक भाषा को टकसाली भाषा कहते हैं। उन्होंने इसे परिभाषाबद्‌ध किया है - ''कई विभाषाओं में व्यवहृत होनेवाली एक शिष्ठ-परिगृहीत विभाषा ही भाषा (टकसाली भाषा) कहलाती है।

मानक भाषा, विशाल भूभाग पर विचारविनिमय के लिए प्रयुक्त होती है। वह व्याकरण से नियुक्त और उच्चारण से एकरूप होती है। उसमें अभिव्यक्ति की क्षमता बडी व्यापक होती है किंतु लंबे अर्से के बाद उसका रूप स्थिर होता है और वह धीर-धीरे व्यवहार से उठकर प्राचीन भाषा का रूप धारण करती है। मानक भाषा कई रूपों में काम करती है - एक सूत्र में बाँधना, विचार-विनिमय के क्षेत्र को विस्तृत बनाना, भाषिक मानदंड प्रदान करना तथा मानक भाषाओं के प्रयोक्ताओं को अलगाना आदि।

2) उपभाषा (Sub-Language) :

उपभाषा, किसी भाषा के अन्तर्गत ज्यादा मिलती-जुलती बोलियों का समूह है। जो एक सीमित क्षेत्र में बोली जाती है और वह उस क्षेत्र की मानक भाषा से भिन्न होती है। उपभाषा कोई भाषा या बोली नहीं होती बल्कि कई बोलियों का समूह होती है। उपभाषा का क्षेत्र बोली से विस्तृत और भाषा से छोटा होता है। एक भाषा क्षेत्र में यदि दस बोलियाँ है और उनमें आपस में मिलती-जुलती कुछ भाषाओं के तीन समूह बनते हैं, तो उस भाषा क्षेत्र में तीन उपभाषाएँ हुई। इसमें एक उपभाषा दूसरी उपभाषा के लिए बोधगम्य होती है। हिंदी भाषा क्षेत्र में पाँच उपभाषाएँ है - पश्चिमी हिंदी, राजस्थानी हिंदी, पहाडी हिंदी, पूर्वी हिंदी और बिहारी हिंदी।

i) पश्चिमी हिंदी (उपभाषा) के अन्तर्गत की बोलियाँ -

ब्रज, खडी बोली, बांगरू बुंदेली और कन्नौजी।

ii) राजस्थानी हिंदी (उपभाषा) के अन्तर्गत की बोलियाँ -

मारवाडी, जयपुरी, मेवाती और मालवी।

iii) पहाडी हिदी (उपभाषा) के अन्तर्गत की बोलियाँ -

गढवाली, कुमाऊँनी और नेपाली।

iv) पूर्वी हिंदी (उपभाषा) के अन्तर्गत की बोलियाँ -

अवधी, बघेली और छत्तीसगढी।

v) बिहारी हिंदी (उपभाषा) के अन्तर्गत की बोलियाँ -

भोजपुरी, मगही और मैथिली।'[3] (मौर्य डॉ. राजनारायण : 1984)

उपर्युक्त उपभाषाओं के अन्तर्गत आनेवाली बोलियाँ और बोलियों के समूह से बनी उपभाषाएँ कम-अधिक मात्रा में समान ही होती है। उच्चारण, के साथ शब्दावलीगत और प्रयोगगत अन्तरों के होते हुए भी उपभाषाएँ समझ में आती है। उपभाषा अपने प्रान्त अथवा उपप्रान्त में साहित्यिक रचना की भी भाषा होती है।

3) बोली (Dialect) :

'बोली' शब्द अंग्रेजी डायलेक्ट (Dialect) का प्रतिशब्द है। हिंदी के कुछ भाषावैज्ञानिकों ने इसे विभाषा, प्रातींय भाषा, उपभाषा आदि भी नाम दिए है। वस्तुत: बोली, विभाषा की तुलना में बहुत छोटी होती है। अर्थात बोली, विभाषा के अन्तर्गत अपेक्षाकृत छोटा स्थानीय रूप है। और उपभाषा के बारे में ऊपर विवेचन में कहा गया है कि 'एक भाषा के अंतर्गत मिलती-जुलती बोलियों के समूह से उपभाषा बनती है।' उपभाषा कोई स्वतंत्र भाषा न होकर सीमित क्षेत्र में बोली जाती है।

भाषा और बोली में अन्तर निर्दिष्ट करना बहुत सरल नहीं है। प्राय: लोग भाषा के लिए 'बोली' और बोली के लिए 'भाषा' शब्द का भी प्रयोग करते हैं। जैसे - 1) तुम्हारी भाषा मेरी समझ में नहीं आती। 2) उसकी बोली मेरी समझ में नहीं आयी। हम कभी ब्रज भाषा, अवधी भाषा और कभी ब्रज बोली, अवधी बोली ऐसा भी प्रयोग करते हैं। फिर भी वैज्ञानिक अध्ययन के लिए बोली का पृथक रूप स्पष्ट करना ही पडता है। बोली का अपना पृथक स्थान है। 'बोली' किसी भाषा का एक रूप है जो एक निश्चित भौगोलिक क्षेत्र में बोली जाती है और जिसमें उक्त भाषा के मानक या साहित्यिक रूप से पर्याप्त अन्तर होता है। बोली का अस्तित्त्व, उच्चारण का ढंग व्याकरणिक गठन पर निर्भर करता है।

बोली का प्रयोग दैनिक कामकाज के लिए किया जाता है। बोली का क्षेत्र सीमित होता है। भौगोलिक उपक्षेत्र, पूरी नदी, पहाड़ आदि के कारण एक भाषा क्षेत्र में संबंध और सम्पर्क टूट जाने से बोली का जन्म होता है। कभी-कभी राजनीतिक और आर्थिक कारणों से कुछ लोग दूर जाकर बसते हैं, तो कभी आसपास की भाषाओं के प्रभाव से

बोली का उदय होता है। एक भाषा क्षेत्र में अनेक बोलियाँ प्रयुक्त होती है उदा. हिंदी भाषा क्षेत्र में बुंदेली, खडी बोली, अवधी ये हिंदी की बोलियाँ है। साहित्य की श्रेष्ठता, धार्मिक केंद्र, बोलनेवालों की संख्या, पहाड, नदी, राजनीति आदि कारणों से बोलियों का महत्त्व और भाषा बनती है, जैसे अंग्रेजों की बोली से अंग्रेजी का महत्व बढा, दिल्ली के समीप की खडीबोली आज भाषा में परिवर्तित होने लगी है। यानी बोली, कली है। कब कली फूल बन जाती है। इसके बारे में बताया नहीं जा सकता।

बोली का क्षेत्र, बोली का स्वरूप और बोली का अर्थ, बोली और भाषा की पृथकता इनके आधार पर ही भोलनाथा तिवारी ने बोली की व्याख्या कुछ इस प्रकार दी है, ''बोली किसी भाषा के एक ऐसे सीमित क्षेत्रिय रूप को कहते हैं जो ध्वनि, रूप, वाक्य गठन, अर्थ, शब्द-समूह तथा मुहावरे आदि दृष्टि से उस भाषा के परिनिष्ठित तथा अन्य क्षेत्रिय रूपों से भिन्न होता है, किंतु इतना भिन्न नहीं कि अन्य रूपों के बोलनेवाले उसे समझ न सकें, साथ ही जिसके अपने क्षेत्र में कहीं भी बोलनेवालों के उच्चारण, रूप-रचना, वाक्य-गठन, अर्थ, शब्द-समूह, तथा मुहावरों आदि में कोई बहुत स्पष्ट और महत्त्वपूर्ण भिन्नता नहीं होती।'' इस व्याख्या में तिवारीजीने बोली की एक-एक परत खोलकर बोली को अधिक स्पष्ट किया है।

4) उपभाषा (Sub-Dialect) :

उपबोली को स्थानिक बोली के नाम से भी अभिहीत किया जाता है। अंग्रेजी में इसे 'लोकल डाइलेक्ट' (Local-Dialect) कहते हैं। भाषा का यह रूप भूगोल पर आधारित है। इसका प्रयोग एक छोटे से क्षेत्र में किया जाता है।

'उपबोली' बहुतसी व्यक्ति बोलियों का सामूहिक रूप है। उपबोली के बारे में हम कह सकते हैं कि किसी छोटे क्षेत्र की ऐसी व्यक्ति बोलियों का सामूहिक रूप, जिनमें आपस में कोई स्पष्ट अन्तर न हो, स्थानीय बोली या उपबोली कहलाता है। अर्थात उपबोली अनेक व्यक्ति बोलियों का सामूहिक रूप है। एक बोली में अनेक व्यक्ति बोलियाँ होती है। उदा. बुंदेली बोली में 'राठौरी' नामक एक उपबोली है। किसी बोली के वर्णन में जब हम उसके पूर्वी, पश्चिमी, दक्षिणी, मध्यवर्ती आदि उपरूपों की बात करते हैं तो हमारा आशय उपबोली या स्थानीय बोली से होता है। भोजपुरी, अवधी, ब्रज आदि बोलियों में इस प्रकार की कई छोटी-छोटी उपबोलियाँ है।

भाषा का क्षेत्र विस्तृत होता है। वह समाज में मान्यता प्राप्त होती है। एकाधिक उपभाषाएँ मिलकर एक भाषा बनती है, जैसे हिंदी के अंतर्गत पाँच उपभाषाएँ है। वैसे ही एकाधिक उपबोलियाँ मिलकर एक उपभाषा बनती है। या बोली वर्ग बनता है जैसे पूर्वी हिंदी (अवधी), बधेली और छत्तीसगढी आदि। उपबोली (sub-dialect) एकाधिक व्यक्तिबोलियाँ या स्थानिय बोलियाँ मिलकर एक उपबोली बनती है। उपबोली का क्षेत्र बहुत छोटा होता है। सीमित लोगों के मुँह से वह निकलती है, अर्थात उसपर लोकल रंग अधिक रहता है। व्यक्तिबोली बोलनेवाला अन्य भाषा क्षेत्र में जाकर भिन्न, अपरिचित लोगों से भाषिक व्यवहार करते समय भाषा का प्रयोग करता है न कि उपबोली का। उपबोली का प्रयोग करने के लिए केवल अपने गाँव, स्थान के व्यक्ति के साथ ही बातचित के समय प्रयोग होता है। उपबोली घरेलू है स्थानिक है। उसमें साहित्य रचना, पत्र लेखन न के बराबर होता है।

5) अपभाषा (Slang) :

'अपभाषा' भाषा का वह रूप है, जिसे परिनिष्ठित एवं शिष्ट भाषा की तुलना में विकृत या अपभ्रष्ट भाषा समझा जाता है। यह भाषा का एक ऐसा प्रयोग है, जो सामाजिक दृष्टि से उपयुक्त हो सकता है किंतु व्याकरण एवं आदर्श रूचि से गृहणीय नहीं होता। अत: अपभाषा में सामान्य भाषा द्वारा स्वीकृत आदर्शों की अवहेलना होती है। शब्दों का प्रयोग प्राय: अर्थापकर्षक मूलक होता है। शब्दों के निर्माण में किसी विधि का ध्यान नहीं रखा जाता। कुछ उदाहरण देखे जा सकते हैं - उसने मुझे धसा दिया, उसकी खूब मरम्मत की गई, कहो भाई खूब धूल चाटी आदि। वाक्य निर्माण में सिद्धांतो को नहीं अपनाया जाता। अत: अपभाषा शिष्ट वर्ग द्वारा स्वीकृत न होकर उसका प्रसार सीमित वर्ग समवयस्कों और श्रेणियों में ही सीमित रहता है।

वास्तव में देखा जाए तो अपभाषा में लोकमर्यादा की उपेक्षा के साथ शिष्टता का भी लोप रहता है। प्रयोक्ता का शैक्षिक तथा मानसिक स्तर का ज्ञान सहजता से समझा जा सकता है। इसके निर्माण के पीछे नवीनता, उच्छृंखलता और संस्कारहीनता हुआ करते है।

6) कूटभाषा / गुप्त भाषा (Code Language) :

भाषा द्वारा मानव अपना विचार दूसरों पर प्रदर्शित करता है। भाषा, अभिव्यक्ति का माध्यम रही है। सामान्य भाषा में बोधगम्यता होती है तो कूटभाषा में बाध्यता और गोपनीयता-दोनों ही होती है। अर्थात कुछ तो बताना अभिष्ट होता है और कुछ छिपाना। कूट-भाषा के मुख्य दो उद्देश्य है - 1) मनोरंजन 2) गोपन।

कविता (काव्य) में कूट भाषा का प्रयोग मनोरंजन के उद्देश्य से होता है। सूरदास के पदों में कूट-भाषा के कई उदाहरण मिलते हैं अनेक बार बालक या सयाने भी शब्दों को उलटकर बोलते है । जैसे बालक रोटी माँगते समय 'टीरो' कहकर या भात को 'तभा' या पानी को 'नीपा' कहकर अपना बौद्धिक उत्कर्ष दिखाना चाहते है।

कूटभाषा का दूसरा उद्देश्य है किसी वस्तु का गोपान, जरायम पेशा लोग, सेना, क्रांतिकारी, तश्कर व्यापारी, अपराधी, प्रेमी युवक-युवतियाँ आदि केवल अपने वर्ग के लोगों के साथ गुप्त संभाषण हेतु कूटभाषा का प्रयोग करते हैं। वह केवल अपनी बात छिपाने के उद्देश्य से ही कूट भाषा को समझनेवाले, या उन संकेतों से जो परिचित होते है वह तो उसका अर्थ समझ पाता है किंतु जो अपरिचित होते है उनके लिए वह संकेत (कूटभाषा) निरर्थक प्रमाणित होते है। कूटभाषा का प्रयोग करनेवाले लोग शब्दों का प्रयोग सामान्यत: स्वीकृत शब्दार्थों से अन्य अर्थों में करते हैं। यह नया अर्थारोप प्राय: अर्थादेश के रूप में होता है। शब्दों को तोड-मरोड कर ऐसा बना देते हैं जिनको दूसरे न समझ सके। उदा. परसाद दो (जहर दो), अमर करो (मार डालो), नारायण (नाले में चलो या नाले में हैं।) पैसा, पास हाने के लिए (अष्टी गरम होना), चोरी करने जाना (बारात जाना), जेल (ससुराल), दस खोका (दस लाख) आदि। स्पष्ट है कोष्टक में दिए गए वाक्य, शब्द कूट या गुप्त भाषा के है। जो प्रचलित अर्थ है उससे भिन्न अर्थ में इन शब्दों, वाक्यों का प्रयोग अभिप्रेत है। प्रेमी-युवक-युवतियाँ अक्षरों के बदले अंको का प्रयोग (कूट भाषा प्रयोग) करते हैं 'I Love you' के बदले (9,12,15,22,5, 25,15,21) अंग्रेजी A, B, C, D के क्रमांक के आधार पर गुप्त भाषा का प्रयोग करते हैं इसका एक मात्र उद्देश्य है अपने अभिप्राय को केवल उसी व्यक्ति को बताना जो आत्मीय हो।

अंकात्मक भाषा में अक्षरों की संख्या निश्चित कर ली जाती है। या लिपियों के मेल से नई लिपी तैयार करके भी काम चलाया जाता है।

कूटभाषा के प्रयोक्ता अपने काम के समय इस भाषा को प्रयुक्त करते है। इसके प्रयोग से अनेक प्रकार की कठिनाइयाँ सामने आती है। यह काम चलाऊँ भाषा है। सब के लिए उपयोगी सिद्‌ध नहीं हो सकती।

7) कृत्रिम भाषा :

कृत्रिम भाषा और गुप्त भाषा (कूटभाषा) दोनों में भेद करना कठिन है। वस्तुत: गुप्तभाषा एक प्रकार से कृत्रिम भाषा का ही अंग है। कृत्रिम भाषा, भाषा के अन्य स्वाभाविक रूपों के विरूद्‌ध बनायी जाती है। कृत्रिम भाषा का अर्थ है गढ़ कर बनाया जाना। जो सामान्य भाषा से बिल्कुल पृथक होती है। संसार में भाषा की अधिकता के कारण अर्थात प्रत्येक देश और देश के हर प्रांत में अलग-अलग भाषाएँ प्रयोग में लायी जाती है। परिणामत: बोधगम्यता में बड़ी बाधा आती है। जब तक एक दूसरे की भाषा ज्ञात न हो तब तक परस्पर बात करना संभव नहीं है। इसको लेकर वाणिज्य, व्यवसाय, पर्यटन आदि में बहुत असुविधाएँ होती है। इन असुविधाओं को दूर कर अन्तर्राष्ट्रीय व्यवहार के लिए एक सामान्य भाषा प्रस्तुत करना ही कृत्रिम भाषा के अविष्कार का उद्देश्य है। अत: कृत्रिम भाषा को अन्तर्राष्ट्रीय भाषा भी कह सकते हैं।

कृत्रिम भाषा के दो रूप किए जा सकते है - चोर, डाकू, क्रांतिकारी, प्रेमी युवक-युवतियाँ गुप्त भाषा के रूप में इसका प्रयोग करते हैं और सैनिक और बालचरों में इस प्रकार की भाषा आवश्यकता नुसार गढ़ी जाती है।

ऊपर कहा जा चुका है कि कृत्रिम भाषा, भाषा-भेद से उत्पन्न समस्याओं एवं बाधाओं को दूर करके अन्तर्राष्ट्रीय व्यवहार के लिए एक समान्य भाषा के रूप में बनायी गई है। कृत्रिम भाषा का उद्देश्य पवित्र होता है। व्यक्ति, समाज, देश या विश्व की आवश्यकताएँ इसमें प्रमुख होती है। गुप्त भाषा, कूटभाषा और कृत्रिमभाषा इनका उपयोग, प्रयोग करनेवाले अलग-अलग लोग हैं। कृत्रिम भाषा अन्तर्राष्ट्रीय स्तरपर स्वीकृत रहती है किन्तु गुप्त (कूट) भाषा नहीं। कृत्रिम भाषा का प्रयोग पूरे संसार में किया जा सकता है गुप्त भाषा का नहीं। कृत्रिम भाषा के शब्द, वाक्य सरलार्थी होते हैं। गुप्त / कूट भाषा के गोपनीय शब्द का, वाक्य का वास्तविक अर्थ अलग होता है और प्रयोगकर्ता अलग अर्थ में प्रयुक्त करता है। कृत्रिम भाषा में कुछ शब्द, कुछ संकेत, कुछ नियम बनाकर विचार-विनिमय का कार्य चलाया जाता है।

कृत्रिम भाषा, काम चलाऊ भाषा के रूप में कार्यरत होती है। यह विकास के गुणों से वंचित होती है इसीकारण इसमें साहित्यरचना संभव नहीं होती। गम्भीर विषयों का प्रतिपादन इसके द्‌वारा असंभव होता है। साथ ही यह भावात्मक प्रक्रिया को जन्म देने में असमर्थ होती है। कृत्रिम भाषा के रूप में एस्परेन्तो और हिंदुस्थानी दोनों के नाम सामने आए है।

एस्पिरेन्तों - समस्त विश्व में एकता स्थापित करने के उद्‌देश्य से बनायी गयी थी। विश्वभाषा के निर्माण का प्रश्न जब उठा था तब डॉ. जेमेन हॉल्फ (L. L. Zomenholf) के प्रयत्नों के फलस्वरूप 'एस्पिरेन्तो' का निर्माण किया

गया था। इसकी लिपि रोमन थी। पढ़ने-लिखने में सरल थी थोडे ही प्रयत्नों से भाषा का मर्मज्ञ बन सकता है। इसमें सोलह नियम ही व्याकरण था। इसमें साहित्य लेखन पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशन शुरू है मगर यह स्वाभाविक भाषा न होने से जीवित भाषा नहीं रही परिणामत: इसे भाषा का पद प्राप्त नहीं हो सका।

'हिन्दुस्थानी' के निर्माण का प्रयास स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत में होता रहा। साहित्यिक हिंदी और साहित्यिक उर्दू के मिश्रण से हिन्दुस्तानी भाषा के नाम से बनायी थी। प्रयाग में 'हिन्दुस्तानी एकेडेमी' की स्थापना हुई थी। 'हिन्दुस्थानी' नामक त्रैमासिक पत्रिका भी निकाली गयी थी। सरकार के संरक्षण में इस कृत्रिम भाषा के चलाने के उपाय किए गए किंतु पाकिस्तान के निर्माण से सामयिक जरूरत समाप्त हो गई और यह कृत्रिम भाषा चल नहीं सकी।

कृत्रिम भाषा खुद जन्म नहीं लेती। उसे जन्म दिया जाता है वह स्वाभाविक नहीं होती। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर ही उपयोग में आने से काम चलाऊ होती है।

8) अभिजात भाषा :

अभिजात भाषा, अभिजात वर्ग में प्रचलित होती है। ई. पूर्व 5 वी सदी में संस्कृत भाषा अभिजात वर्ग की भाषा थी। अर्थात अभिजात भाषा का प्रयोग केवल उच्च वर्ग के लोग करते थे। भारत में संस्कृत का प्रयोग उच्चवर्ग में रहने से जनसाधारण से यह काफी दूर रही। यदि इसी तरह अभिजात भाषा जन-सामान्य से दूर रही, उनके प्रयोग में नहीं आयी तो विकास से वंचित रह जाती है। यह भाषा सीमित, मर्यादित जन में ही उपयोग में लायी जाती है। इसे अंग्रेजी में 'क्लासिकल लैंग्वेज' कहते हैं। संस्कृत, लैटिन, और ग्रीक भाषाओं की गणना विश्व में अभिजात भाषाओं में की जाती है। स्त्री और पुरुष दोनों में स्त्री को निम्न वर्ग में माना जाने से अभिजात भाषा (संस्कृत) बोलने का अधिकार उच्च वर्गों की स्त्रियों को भी नहीं था। प्रथम शताब्दी के नाटककार भास के संस्कृत नाटकों में निम्न वर्ग के पुरुष और स्त्री पात्र प्राकृत बोलते हैं।

भाषा विचार विनिमय का साधन है। वह सामाजिक वस्तु है। ऐसी स्थिति में कोई भाषा विशिष्ट जाति वर्ग तक सीमित रही तो जनसाधारण से उसका रिश्ता ही नहीं रहता। अभिजात भाषा ऐसे ही दौर से गुजरती है और विशिष्ट वर्ग तक सीमित रहती है। वह वर्ग उसे अपने अधिकार में रखने का प्रयास करता है और उसे अपनी ही सम्पत्ति मान बैठता है। संस्कृत के अभिजात्य वर्ग ने इसे भी भारी क्षति पहुँचायी। ग्रीक और लैटिन भाषाएँ भी केवल मातृभाषाएँ, अपने प्रदेश की भाषाएँ बनकर रह गई।

9) मिश्रित भाषा :

मिश्रित भाषा अनेक भाषाओं के मेल से विकसित होती है। जहाँ अनेक भाषी व्यापारिक अथवा किसी प्रयोजन से लोग एकत्र होते हैं, एक दूसरे के सम्पर्क में आते हैं तो एक नई मिली जुली भाषा का जन्म होता है। इसे मिश्रित भाषा कहते हैं। बन्दर गाहों, राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्व रखनेवाली मंडियो तथा मार्केट (बाजार) में इस प्रकार की भाषाएँ देखी जा सकती है। चीन के कुछ महानगरों में बोली जानेवाली 'पिन्ज इंगलिश' (Pidgin English) इस प्रकार की भाषाओं का महत्त्वपूर्ण उदाहरण है। इस भाषा में अंग्रेजी के शब्दों का प्रयोग अधिक किया जाता है। किन्तु इनका उच्चारण चीनी ढंग पर होता है। कोलकत्ता में बंगालियों द्वारा बोली जानेवाली हिंदी भाषा इसी प्रकार की है।

भूमध्य सागर के बन्दरगाहों में बोली जानेवाली सबीर भाषा में स्पेनी, इतालवी ग्रीक, अरबी और फ्रांसीसी भाषाओं का मिश्रण मिलता है।

मिश्रित भाषा ऐसे स्थल पर जन्म लेती है, जहाँ भिन्न भाषिक लोग व्यापार या व्यवसाय के बहाने एकत्र आकर काम करते हैं। तब सबकी भाषाओं के मेल से मिश्रित भाषा पनपने लगती है। इसमें किसी एक भाषा का व्याकरण नहीं होता। बहुत प्रकार के व्याकरणों की विशेषताएँ एकत्र दिखाई देती है। मिश्रित भाषा कामचलाऊं होती है, मगर इसका प्रयोग करनेवाला ही प्रयुक्त शब्दों का ज्ञाता होता है। प्राय: इसमें साहित्य नहीं लिखा जाता। यह केवल दैनिक व्यवहार में उपयोगी और उपयुक्त भाषा है।

उपर्युक्त भाषा के विविध रूपों के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि भाषा का उद्देश्य केवल अभिव्यंजन या विचार विनिमय ही नहीं गोपन भी है। विभिन्न दृष्टियों से उसके अनेक रूप हो जाते हैं। भाषा के उपर्युक्त रूपों के अलावा भी भेद हो सकते हैं। प्रादेशिक भाषा (राज्यभाषा), राज भाषा, राष्ट्र भाषा, अन्तर्राष्ट्रीय भाषा, व्यावसायिक भाषा, साहित्यिक भाषा माध्यम भाषा आदि। इसमें एक मौलिक तथ्य है कि सभी भाषाएँ मनुष्य के लिए उपयोगी सिद्‌ध होती है।

प्रादेशिक या राज्यभाषा का निर्माण भौगोलिक, ऐतिहासिक कारणों से होता है। भारत देश में अनेक प्रदेश या प्रांत है। उन प्रांतों की जो भाषाएँ हैं वे प्रादेशिक या राज्यभाषाएँ हैं। उदा. पंजाब की पंजाबी भाषा, असम की असमिया, महाराष्ट्र की मराठी आदि ये उन राज्यों की राज्यभाषाएँ भी है। भारत देश की शासन व्यवस्था दो भागों में विभाजित हैं केंद्रीय और प्रांतीय। प्रांतीय कामकाज के लिए प्रादेशिक या राज्यभाषा का प्रयोग होता है।

राजभाषा को राजाश्रय प्राप्त होता है। राजभाषा का निरूपण प्रांतीय एवं केंद्रीय सरकारों के साथ जुड़ा रहता है। भारत अनेक भाषा-भाषी देश है फिर भी सभी राज्यों तथा प्रदेशों से सम्पर्क स्थापित करने के लिए हिंदी राजभाषा के रूप में स्वीकृत है। राजभाषा सदैव देश में शासनात्मक संगठन की भाषा है।

राष्ट्रभाषा - जब कोई भी राजभाषा राष्ट्र के भिन्न-भिन्न भाषा-भाषियों के पारस्परिक विचार विनिमय का साधन बन जाती है तब वह राजभाषा न रहकर राष्ट्रभाषा बन जाती है। समूचे राष्ट्र में राजनीतिक अधिवेशनों, साहित्यिक गोष्टियों एवं सामाजिक समारोहों में राष्ट्रभाषा ही माध्यम बनती है।

अन्तर्राष्ट्रीय भाषा - अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न राष्ट्रों के बीच व्यवहार करने के लिए प्रयुक्त भाषा अन्तर्राष्ट्रीय भाषा कहलाती है। राष्ट्रों के पारस्परिक विचार-विनिमय के लिए अधिकतर राष्ट्रों में प्रचलित भाषा ही अन्तर्राष्ट्रीय भाषा बन सकती है। अंग्रेजी भाषा के साथ हिंदी भाषा अन्तर्राष्ट्रीय रूप धारण करने लगी है।

व्यावसायिक भाषा - जितने प्रकार के व्यवसाय है उतने प्रकार की व्यावसायिक भाषाएँ हैं। इस भाषा के अन्तर्गत व्यवसाय के अनुरूप विशिष्ट शब्द या विशिष्ट भाषा प्रयोग दिखाई देते हैं। व्यवसाय या कार्य अनुसार भिन्न-भिन्न वर्गों की अलग अलग भाषाएँ बन जाती है। उदा. डॉक्टर की भाषा, ड्रायवर की भाषा आदि।

साहित्यिक भाषा - साहित्य के लिए प्रयोग में आनेवाली परिष्कृत भाषा को साहित्यिक भाषा कहते हैं। यह भाषा अलंकृत और कठिन होती है। साहित्यिक भाषा समाज के सामान्य व्यवहार में प्रयुक्त नहीं होती। इसमें पारिभाषिक शब्दों की अधिकता होती है।

इस तरह हर भाषा की अपनी-अपनी प्रकृति होती है। इनमें न कोई सरल होती है और न कोई कठिन। भाषा का हर रूप समाज में प्राप्त होता है। किसी भाषा में दोष ढूँढ़ना आपके अभ्यास और संस्कार से सम्बद्ध है। जिस भाषा से हमारा करीबी संबंध है वह भाषा हमें आसान लगती है, सहज लगती है और परायी भाषा में हम दोष देखते हैं यहाँ भारतेन्दु का कथन सराहनीय है -

निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल।
बिनु निज भाषा के मिटै न हिय को शूल॥

1.3 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न :

(क) उचित विकल्प चुनकर वाक्य फिर से लिखिए।

1. कौनसी वाणी शिक्षित वर्ग की वाणी की प्रतिष्ठा प्राप्त करती है?
   अ) बोली ब) अपभाषा क) कूटभाषा ड) मानकभाषा
2. मानकभाषा के लिए 'टकसाली' शब्द प्रयोग किसने किया है?
   अ) भोलानाथ तिवारी ब) मंगलदेव शास्त्री क) श्यामसुंदर दास ड) पी. डी. गुणे
3. हिंदी भाषा क्षेत्र में कितनी उपभाषाएँ हैं?
   अ) चार ब) पाँच क) तीन ड) छह
4. 'खडीबोली' किस उपभाषा के अन्तर्गत आती है?
   अ) पश्चिमी हिंदी ब) राजस्थानी हिंदी क) पूर्वी हिंदी ड) बिहारी हिंदी
5. 'लोकल डायलेक्ट' (Local dialect) किसे कहते हैं?
   अ) अपभाषा ब) उपबोली क) बोली ड) उपभाषा
6. शिष्टभाषा की तुलना में भाषा का अपभ्रष्ट या विकृत रूप कौनसा है?
   अ) मिश्रितभाषा ब) कूटभाषा क)अपभाषा ड) अभिजातभाषा
7. 'एस्पिरेन्तो' विश्वभाषा के निर्माता है -
   अ) हॉकिट ब) याकोब्सन क) स्त्रुवा ड) जेमेन हाल्फ
8. व्यवसाय / व्यापार के बहाने इकट्ठे हुए लोगों में किस भाषा का जन्म होता है?
   अ) अपभाषा ब) कृत्रिमभाषा क) कूटभाषा ड) मिश्रितभाषा
9. जरायम पेशा लोग किस भाषा का प्रयोग करते है?
   अ) कृत्रिम ब) मिश्रित क) कूटभाषा ड) अपभाषा
10. निम्नलिखित कौनसी भाषा 'अभिजात' नहीं है?
   अ) संस्कृत ब) अंग्रेजी क) ग्रीक ड) लैटिन

11. 'क्लासिकल लैंग्वेज' किस भाषा का नाम है?

अ) व्यावसायिक ब) साहित्यिक क) अभिजात ड) राष्ट्रभाषा

12. एकाधिक व्यक्तिबोलियों से किस का निर्माण होता है?

अ) उपबोली ब) उपभाषा क) भाषा ड) अपभाषा

13. 'पिन्ज इंगलिश' किस देश की मिश्रित भाषा है?

अ) फ्रांस ब) स्पेन क) रूस ड) चीन

14. 'कूट भाषा' के मुख्य उद्देश्य कितने है?

अ) तीन ब) दो क) पाँच ड) चार

15. 'एस्पिरेन्तो' कृत्रिम भाषा में व्याकरण के कितने नियम थे?

अ) बारह ब) तेरह क) सोलह ड) पन्द्रह

1.2.4 भाषाओं का वर्गीकरण : आकृतिमूलक वर्गीकरण, पारिवारिक वर्गीकरण :

किसी भी विषय अथवा वस्तु के वर्गीकरण के अध्ययन के समय उसे समझने समझाने में सहायता मिलती है। ज्ञान अखंड है मगर उसका अध्ययन करते समय उसका विभाजन या खंड-खंड करके अध्ययन किया तो सौकर्य आता है। इसी वास्तविकता एवं व्यावहारिक उपयोगिता को ध्यान में रखकर संसार की भाषाओं के अध्ययन के लिए भाषाओं का वर्गीकरण किया जाता है। संसार में बोली जानेवाली भाषाओं की निश्चित संख्या ज्ञात नहीं है किन्तु अनुमान किया जाता है कि लगभग 3000 भाषाएँ हैं। इतनी भाषाओं को जाननेवाले व्यक्ति की कल्पना करना भी व्यर्थ है। पाँच-दस तक भाषाएँ जाननेवाले लोग अपवाद के रूप में मिलते हैं। संसार में जो इतनी भाषाएँ हैं उनके वर्गीकरण के कई आधार हो सकते हैं जो इस प्रकार -

1) महाद्विप के आधार पर - इसके अन्तर्गत एक महाद्विप के अन्तर्गत बोली जानेवाली भाषाएँ आती है, जैसे योरोपीय भाषाएँ, एशियायी भाषाएँ आदि।

2) देश के आधार पर - इस वर्गीकरण के अन्तर्गत एक ही देश के अन्दर बोली जानेवाली भाषाएँ आती हैं; जैसे भारतीय भाषाएँ, चीनी भाषाएँ।

3) काल के आधार पर - यह वर्गीकरण काल का खण्ड बनाकर किया जाता है; जैसे प्रागैतिहासिक भाषाएँ, मध्यकालीन भाषाएँ, आधुनिक भाषाएँ आदि।

4) धर्म के आधार पर - धर्म के आधार पर भी भाषाओं का वर्गीकरण किया जाता है। जैसे हिंदू भाषाएँ, ईसाई भाषाएँ।

5) आकृती या रूप के आधार पर - आकृति या रूप के वर्गीकरण के आधारपर जैसे अयोगात्मक भाषाएँ, योगात्मक भाषाएँ।

6) परिवार के आधार पर - इस में एक परिवार के भाषाओं के आधार पर वर्गीकरण किया जाता है। इसका आधार एकही परिवार रहता है, जैसे द्रविड परिवार और भारोपिय परिवार की भाषाएँ आदि।

7) प्रभाव के आधार पर - प्रभाव के आधार पर किए गए वर्गीकरण के आधार पर जैसे संस्कृत प्रभावित, फारसी प्रभावित भाषाएँ आदि।

इस तरह भाषाओं के वर्गीकरण के सात आधार किए जा सकते हैं। किंतु इनमें से आकृति या रचना के आधार पर या आकृतिमूलक और परिवार के आधार पर किया गया वर्गीकरण विशेष महत्त्वपूर्ण माना जा सकता है। इन दोनों पर अब विस्तृत विवेचन किया जाएगा।

◆ आकृतिमूलक वर्गीकरण :

जो वर्गीकरण पद, रूप और रचना पर आधारित हो उसे आकृतिमूलक वर्गीकरण कहते हैं। इसी के आधार पर इसे अन्य नाम दिए हैं - पदात्मक, रूपात्मक और संरचात्मक आदि। इस वर्गीकरण का आधार संबध तत्त्व से है। किसी भी भाषा में प्रमुख दो तत्त्व होते हैं - अर्थतत्त्व और संबंधतत्त्व। इनमें से अर्थतत्त्व - वस्तुओं, कार्यो या विचारों का अर्थ सूचित करता है। और संबंधतत्त्व - अर्थतत्त्व में परस्पर संबंध जोडता है। जैसे लड़के सुबह को मोटर साइकिल से जाएँगे। इस वाक्य में लड़के सुबह, मोटर, साइकिल और जाना आदि अर्थतत्त्व है। तथा को, से और येंगे संबंधतत्त्व है। और अर्थतत्त्व में संबंधतत्त्व जोड़ने की प्रक्रिया को पद-रचना कहते हैं। विवेचित वाक्य में 'लड़के' और 'मोटर साइकल' अर्थतत्त्व को किस प्रकार से एक दूसरे को साथ बाँधा गया है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि शब्दों को स्पष्ट करने और उनका अर्थ जानने उसमें विभक्ति जोड़ी जाती है। इस क्रिया में वाक्य-रचना हमारे सामने स्पष्ट होती है लड़के, मोटर साइकल और जाना इनका रूप धातु में किन प्रत्ययों के योग से बना है। पदरचना किस प्रकार हुई है इस प्रकार हम देखते हैं कि वाक्य-रचना, आकृतिमूलक वर्गीकरण के आधार है। इस तरह आकृतिमूलक वर्गीकरण में शब्द से रूप बनाने की पद्धति के आधारपर जो भाषाएँ समानता रखती है वे एक वर्ग की होती है।

जिन भाषाओं में पदों या वाक्यों की रचना का ढ़ंग एक जैसा होता है उनमें आकृतिमूलक साम्य होता है उन्हें ही एक वर्ग में रखा जा सकता है। इसी के आधार पर कहा जा सकताहै कि पद-रचना और वाक्य-रचना को आधार बनाकर जो वर्गीकरण होता है उसे आकृतिमूलक वर्गीकरण कहते हैं।

संसार की भाषाओं को इस वर्गीकरण के आधार पर कई वर्गों में रखा गया है किंतु वे विशेष लाभकारी नहीं होंगे। संक्षेप में बताना आवश्यक है इसलिए आकृतिमूलक वर्गीकरण के दो भेद करना सुविधाजनक होगा।

i) अयोगात्मक (Isolating)

ii) योगात्मक (Agglutinating)

i) अयोगात्मक भाषाएँ :

जिन भाषाओं में प्रत्यय, विभक्ति, उपसर्ग या परसर्ग जैसी कोई चीज या संबंध तत्त्व नहीं होता उन्हें अयोगात्मक

भाषाएँ कहते हैं। इन भाषाओं के प्रत्येक शब्द की स्वतंत्र सत्ता होती है और वाक्य में शब्दों के प्रयुक्त होने पर भी वह सत्ता ज्यों-कि-त्यों रहती है। अर्थात शब्दों का व्याकरणिक विभाजन नहीं होता। संज्ञा सर्वनाम, विशेषण, क्रिया-विशेषण आदि को कोटियाँ नहीं होती। एक शब्द, संज्ञा, सर्वनाम, क्रिया, विशेषण आदि सभी का कार्य करता है। ऐसी भाषाओं को स्थान प्रधान भाषाओं की संज्ञा दी जाती है। इसे एकाक्षर भी कहा जाता है। विश्व में चीनी भाषा इसका सर्वोत्तम उदाहरण है।

उदा. न्गो = मैं
ता = मारना
नि = तुम

इन शब्दों से 'न्गो ता नि = मैं मारता हूँ तुमको। इस वाक्य का अर्थ पदक्रम पर आधारित है। नि ता न्गो = तुम मारते हो मुझ को। हिंदी का एक उदाहरण देखते हैं - 'साँप मेंढ़क खाता है' इस वाक्य में कर्ता 'साँप' है और कर्म 'मेंढक'। अब 'मेंढ़क साँप खाता है।' यहाँ 'मेंढ़क' कर्ता बन गया और 'साँप' कर्म। यह सब स्थान भेद के कर्तत्त्व और कर्मत्व का कोई भेदक चिह्न शब्दों के साथ लगा नहीं है।

इन दोनों उदाहरणों से बात स्पष्ट हो गई है कि हिंदी योगात्मक भाषा है। हिंदी भाषा में ऐसे वाक्य अपवाद ही है। हिंदी का उदाहरण केवल समझाने के लिए दिया था। योगात्मक भाषाओं में वाक्य विन्यास की स्वाधीनता रहती है किंतु अयोगात्मक भाषाओं में नहीं होती। अयोगात्मक वर्ग की प्रतिनिधि भाषा है चीनी भाषा। चीनी के अतिरिक्त तिब्बती, बर्मी, स्यामी, अनामी तथा सुदानी (आफ्रिका के सुदान देश की भाषा) आदि भाषाएँ इसी वर्ग में आती हैं। अयोगात्मक वर्ग की भाषाओं की कुछ विशेषताएँ है जो इस प्रकार है -

1) अयोगात्मक भाषाओं में पदक्रम (शब्दक्रम) का सर्वोपरि महत्त्व होता है 'न्गो ता नि' और 'नि ता न्गो' दोनों के अर्थ अलग-अलग निकलेंगे। अर्थभेद पदक्रम पर आधारित है।

2) अयोगात्मक भाषाओं में शब्दों के व्याकरणिक भेद नहीं होते। अत: एक ही शब्द प्रयोग के अनुसार संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया आदि कुछ भी हो सकता है जैसे 'ता' = महान् (विशेषण), महत्ता (भाववाचक संज्ञा), महान होना (क्रिया), महत्ता के साथ (क्रिया विशेषण)। अर्थात इन भाषाओं का व्याकरण ही नहीं होता।

3) इन भाषाओं के शब्दों में प्रत्यक्ष या विभक्ति नहीं जोड़ी जाती है अर्थात शब्दों की निश्पत्ति कुछ जोड़कर नहीं की जाती है।

4) स्वरभेद में एक शब्द के अनेक भेद हो जाते हैं, जिसके अलग अलग अर्थ भेद हैं।

5) आयोगात्मक भाषाओं में निपातों (अव्ययों) का भी प्रयोग होता है जैसे चीनी में 'चु' भाववाचक निपात है इसे विशेषण के साथ लगाएँ तो वह भाववाचक संज्ञा बन जाती है जैसे -

हाउ = अच्छा	हाउ चु = अच्छाई
चाङ् = लम्बा	चाङ्चु = लम्बाई

और एक उदाहरण देखा जा सकता है, यानी निपात से पद या वाक्यरचना की पद्धति समझ में आना सहज होगा।

जिन = मनुष्य, तो = कई; कई मनुष्यों के लिए 'तोजिन' कहा जाता है। (चीनी भाषा का उदाहरण है।)

6) अयोगात्मक भाषाओं के शब्द एक अक्षर के होते है।

ii) योगात्मक भाषाएँ :

'योगात्मक' शब्द सेही स्पष्ट होता है कि इस वर्ग की भाषाओं में प्रत्यय, विभक्ति के योग से शब्दों की निष्पत्ति होती है। यानी 'सम्बन्ध-तत्त्व' आदि जोडकर शब्द और वाक्य की निश्पत्ति की जाती है। इनमें अर्थतत्त्व और सम्बन्ध तत्त्व एक दूसरे से मिले रहते है। योगात्मक के प्रमुख तीन भेद है -

(क) अश्लिष्ट योगात्मक
(ख) श्लिष्ट योगात्मक
(ग) प्रश्लिष्ट योगात्मक

अश्लिष्ट योगात्मक में अर्थतत्त्व के साथ प्रत्यय या विभक्ति का योग होता है।

प्रश्लिष्ट में रचनातत्त्व और अर्थतत्त्व का ऐसा संयोग रहता है कि उनका अंतर करना सुकर नहीं होता।

(क) अश्लिष्ट योगात्मक :

अश्लिष्ट योगात्मक भाषाओं में प्रकृति एवं प्रत्यय (सम्बन्ध तत्त्व और अर्थतत्त्व) इस प्रकार एक दूसरे से जुड़े रहते है कि दोनों का पार्थक्य दिखाई पडता है। दोनों की स्थिति स्पष्ट दिखाई देती है। इस वर्ग की भाषाओं को बिल्कुल सहजता के साथ समझना या सीखना संभव होता है। इस प्रकार की भाषा तुर्की है। वहाँ पर शब्दों में अवयवों का योग अत्यंत सुंदर होता है। मालूम पड़ता है कि किसी ने सुड़ौल ढ़ाँचे में शब्दों को काँट-छाँटकर बैठा दिया है जैसे-

एव = घर (एकवचन)।
एव-देन = घर से ।
एव-इम = मेरा घर।
एव-इम-देन = मेरे घर से।
एव-लेर = घर (बहुवचन)।
एव-लेर-देन = घरों से।
एव-लेर-इम = मेरे घरों से।[4]

(शर्मा देवेन्द्रनाथ : 1972)

अश्लिष्ट योगात्मक में रचनातत्त्व, अर्थतत्त्व के कहीं पूर्व में जुटता है। इनका योग मध्य, पूर्व या कभी अंत में भी आ सकता है। इसी के आधार पर इसके चार भेद किए गए हैं -

i) पूर्व योगात्मक

ii) मध्य योगात्मक

iii) अन्त योगात्मक

iv) पूर्वान्त योगात्मक

i) पूर्व योगात्मक : इन भाषाओं में प्रत्यय के स्थानपर उपसर्ग का प्रयोग होता है। वाक्य के अन्तर्गत शब्द बिल्कुल अलग-अलग रहते हैं। शब्दों की रूप रचना में सम्बन्धतत्त्व केवल आरम्भ में लगता है। इसीकारण ये 'पूर्व योगात्मक' कही जाती है। अफ्रीका की बांटू भाषा में यह प्रवृत्ति पाई जाती है उसकी काफिर और जुलू भाषाओं से उदाहरण देखे जा सकते है।

जुलू भाषा में -

उमु = एकवचन का चिह्न।

अब = बहुवचन का चिह्न।

न्तु = आदमी।

न्ग = से।

इनके योग से शब्द बनते हैं -

उमुन्तु = एक आदमी।

अबन्तु = कई आदमी।

न्गाउमुन्तु = आदमी से।

न्गअबन्तु = आदमियों से।

काफिर भाषा :

प्रकृति और प्रत्यय -

कु = के लिए।

ति = हम।

नि = उन।

पूर्व योग से निष्पन्न रचनाएँ -

कुति = हमको या हमारे लिए।

कुनि = उनको या उनके लिए।

इन सभी उदाहरणों में योग (उमु या अब आदि सम्बन्धतत्त्व) आरंभ में है।

ii) मध्य योगात्मक : इन भाषाओं में योग मध्य में होता है। इन भाषाओं में शब्द प्राय: दो अक्षरों के होते हैं। इस प्रकार के उदाहरणों में भारत की भाषाएँ और हिंद महासागर से अफ्रीका तक फैले द्वीपों की भाषाओं में मिलते है। संथाली भाषा का एक उदाहरण -

प्रकृति और प्रत्यय -

मंझि = मुखिया।

प = बहुवचन का चिह्न।

मपंझि = मुखिये।

इसी तरह योग से निष्पन्न रचनाएँ -

दल = मारना।

दपल = एक दूसरे को मारना।

इन दोनों उदाहरणों में बहुत्व का बोधक 'पं' और परस्परता का बोधक 'प' शब्द दोनों मध्ययोग के माने जाएँगे।

iii) अन्त योगात्मक : इस वर्ग की भाषाओं में योग की क्रिया शब्द के अन्त में सम्पन्न होती है अत: सम्बन्ध तत्त्व केवल अन्त में जोड़ा जाता है। युराल अल्टाइक तथा भारत की द्रविड़ परिवार की भाषाएँ ऐसी हैं। कुछ उदाहरण लिए जा सकते है -

तुर्की -

प्रकृति और प्रत्यय

एव = घर।

एवलेर = कई घर।

एवलेर इम = मेरे घर।

कन्नड -

एकवचन	बहुवचन
कर्ता - सेवकनु	सेवक-रू
कर्म - सेवक नन्नु	सेवक-रन्नु
करण - सेवक-निंद	सेवक-रिंद
सम्प्रदान - सेवक-निगे	सेवक-रिगे
सम्बन्ध - सेवक-न	सेवक -र
अधिकरण - सेवक-नल्लि	सेवक - रल्लि'[5]

(शर्मा देवेन्द्रनाथ : 1972)

इस प्रकार शब्द के अन्त में रचना-तत्त्व जोडकर अर्थ बदल दिया गया है।

iv) पूर्वान्त योगात्मक : पूर्वान्त का अर्थ है पहले और अन्त में। इस वर्ग की भाषाएँ योगात्मक और अयोगात्मक के बीच पडती है। सम्बन्ध तत्त्व अर्थतत्त्व के पूर्व और अन्त में लगाया जाता है। पूर्वान्तयोग के उदाहरण न्यूगिनी की मफोर भाषा में मिलते हैं। जैसे -

प्रकृति और प्रत्यय -

ज = मैं

म्नफ़ - सुनता

उ - तू

ज-म्नफ़-उ - मैं सुनता हूँ तुझे।

यहाँ 'म्नफ़' के पूर्व और अन्त दोनों ओर रचनातत्त्व का योग हुआ है।

इस प्रकार अब तक हमने अश्लिश्ट योगात्मक भाषाओं के चार भेदों का अध्ययन किया है। अब देखेंगे श्लिष्ट योगात्मक वर्ग।

(ख) श्लिष्ट योगात्मक :

जिन भाषाओं में सम्बन्ध तत्त्व (प्रत्यय) को जोड़ने के कारण अर्थतत्त्ववाले भाग में कुछ परिवर्तन के दर्शन होते हैं किन्तु सम्बन्धतत्त्व की झलक अलग ही मालूम पड़ती है तो वह भाषा श्लिष्ट योगात्मक होती है। संस्कृत के वेद, देह, भूत, भूगोल आदि शब्दों से वैदिक, दैहिक, भौतिक, भौगोलिक आदि शब्द बनते हैं। अरबी भाषा का एक उदाहरण देख सकते हैं - 'क् - त् - ल्' (मारना) धातु को लिया जा सकता है जिसमें विभिन्न रचना तत्त्वों का योग करके -

क़तल = खून।

क़ातिल भ= मारनेवाला।

क़ित्ल = शत्रू।

यानी क़तल से कितने शब्द बनाएँ जा सकते है। मूल शब्द (क-त्त-ल) से निष्पन्न सभी शब्द बने, संस्कृत के उदाहरण में वेद, देह, भूत, भूगोल आदि से शब्द बने इनमें परिवर्तन होने पर अन्तवर्ती स्वरों का योग स्पष्ट प्रतीत होता है। इन शब्दों में (अर्थात वेद-वैदिक, देह-दैहिक, भूत-भौतिक, भूगोल-भौगोलिक) 'इक' जोड़ा गया है किंतु आरंभिक 'वे', 'इ' और 'भू' में कुछ परिवर्तन हो गया है।

हम देख चुके हैं कि विकार आ जाने पर रचनातत्त्व और अर्थतत्त्व को सहजता से पहचाना जा सकता है। संसार में इस वर्ग की भाषाएँ अधिक है। भारोपिय, सामी और हामी परिवार की भाषाएँ श्लिष्ट योगात्मक है।

भाषावैज्ञानिकों ने श्लिष्ट योगात्मक के भी दो वर्ग किए है। i) अन्तर्मुखी श्लिष्ट, ii) बहिर्मुखी-श्लिष्ट। फिर उन दोनों के दो-दो उपभेद किए जा सकते है संयोगात्मक और वियोगात्मक। बहुत सी भाषाएँ संयोगावस्था से वियोगात्मक बन गई है। अंग्रेजी, हिंदी, बँगला आदि वियोगात्मक भाषाएँ हैं।

(ग) प्रश्लिष्ट योगात्मक :

जिन भाषाओं में अर्थतत्त्व और रचनातत्त्व एक-दूसरे में इतने घूल मिल जाते हैं कि उनको पृथक करना संभव नहीं होता, पहचानना भी कठिन होता है। उनका योग ही ऐसा होता है कि उनको अलग नही किया जा सकता। वास्तविकता तो यह है कि कई शब्दांशों के योग से नया शब्द बनता है। वह शब्द पूरे वाक्य का अर्थ बदल देता है। संस्कृत के एक शब्द के आधार पर इसको स्पष्ट किया जा सकता है।

जिगमिषति = वह जाना चाहता है।

इस एक शब्द में ही वह जाना, चाहना, वर्तमानकाल, अन्य पुरुष, एकवचन आदि आशयों का ज्ञान हो जाता है। एक शब्द होते हुए भी पूरे वाक्य का काम करता है इसी तरह 'पिपठिषामि' का अर्थ होता है - मैं पढ़ना चाहता हूँ। यह भी एक शब्द होकर पूरे वाक्य का अर्थ देता है। इस कोटि में एक्सिमो या बास्क भाषाएँ आती है।

बास्क भाषा का एक उदाहरण देख सकते है -

दकर्किओत = मैं इसे उस तक ले जाता हूँ।
नकार्स = तू मुझे ले जाता है।
हकात = मैं तुझे ले जाता हूँ।

इस तरह एक-एक अवयव से जितना अर्थ हो सकता है संक्षिप्त होकर एक अर्थ का वाचक हो जाता है।

आकृतिमूलक वर्गीकरण के उपर्युक्त प्रमुख भेद है लेकिन जब तक संसार की सभी भाषाओं का सूक्ष्म अध्ययन नहीं होगा तब तक अयोआत्मक, योगात्मक वर्गीकरण पूर्णत: वैज्ञानिक नहीं कहा जा सकता। साथ ही भेदीकरण के उपर्युक्त सभी आधार न्यूनाधिक मात्रा में सभी भाषाओं में पाए जाते हैं। शिष्ट और प्रश्लिष्ट में निश्चित विभाजक रेखा खींचना बड़ा कठिन है।

◆ पारिवारिक वर्गीकरण :

आकृतिमूलक वर्गीकरण के आधारपर स्पष्ट हो चुका है कि इसमें केवल भाषा की आकृति, रचना या रूप को केंद्रित किया जाता है। आकृतिमूलक में रचना-तत्त्व या सम्बन्ध-तत्त्व अध्ययन का आधार था। किंतु पारिवारिक वर्गीकरण में इस रचना के साथ अर्थतत्तव पर भी ध्यान दिया जाता है। इस वर्गीकरण में एक वंश या परिवार में केवल वे भाषाएँ आ जाती है जिनमें आकृति के अतिरिक्त शब्दों में भी ध्वनि और अर्थ की दृष्टि से साम्य होता है। कालांतर में वे भाषाएँ विकसित होती है उनमें इतना अन्तर आ जाता है कि वे बिल्कुल ही भिन्न प्रतीत होती है।

एक वंश में जिस प्रकार पीढ़ी-दर-पीढ़ी अनेक लोग उत्पन्न हो जाते हैं वे एक परिवार या एक वंश के कहे जाते हैं उसी प्रकार मूलभाषा से पीढ़ी-दर-पीढ़ी में अनेक भाषाएँ एवं बोलियाँ विकसित हो जाती है। वे सब एक ही परिवार की होती है। इन भाषाओं में आकृति, रचना-तत्त्व और अर्थतत्त्व में साम्य पाया जाना स्वाभाविक है। भिन्न-भिन्न भाषाओं के एकही अर्थ के सूचक शब्दों को लेकर स्पष्ट किया जा सकता है कि उनमें साम्य या सादृश्य की स्थिति किस तरह है जैसे -

संस्कृत - मातृ, लातिन - मातेर, फारसी - मादर, अंग्रेज - मदर और जर्मन - मुत्तेर। माँ के लिए जिन शब्दों का उच्चारण किया जाता है उन शब्दों को हमने देखा। इन भाषायी क्षेत्रों में हजारों कोसों का फासला होने पर भी इतना सादृश्य देखकर आश्चर्य होना स्वाभाविक है। लेकिन साम्य का कारण क्या हो सकता है? इनका मूलरूप कौन सा था? मातृ, मातेर, मादर, मदर, मुत्तेर आदि शब्दों में साम्य के साथ भिन्नता भी कम नहीं है। उनके कारण क्या है? इतना होते हुए पहले साम्य के कारण कहीं न कहीं इनका पारिवारिक सम्बन्ध होगा ऐसा लगता है।

भाषाओं के पारिवारिक वर्गीकरण की दृष्टि से कुछ बातों पर विचार करना जरूरी है उसके आधारपर ही भाषाओं के परिवार-निर्धारण करना संभव होगा।

1) ध्वनि-साम्य 2) पद-रचना 3) वाक्य-रचना 4) शब्द-भांडार 5) भौगोलिक समीपता इन आधारों पर वर्गीकरण करके परीक्षण किया तो कुछ मात्रा में बताया जा सकताहै कि वे एक परिवार की है या नहीं। किंतु बात यह है कि इन आधारों पर भी भाषाविदों का एक मत नहीं होता। उपर्युक्त आधार तो हैं मगर भाषा में ध्वनि, शब्दभांडार और व्याकरण रचना इनका प्रमुख स्थान होता है।

ध्वनि-साम्य या ध्वनि को महत्त्वपूर्ण माना तो कालांतर में ध्वनि परिवर्तित होती है। कुछ ध्वनियाँ ऐसी है जो एक ही परिवार की सभी भाषाओं में नहीं मिलती। इसी कारण ध्वनि को पारिवारिक वर्गीकरण में प्रमुख आधार मानना कठिण है। संस्कृत में 'ज' ध्वनि नहीं है यद्यपि भारत यूरोपयि परिवार की फारसी, रूसी जर्मन आदि में वह विद्यमान है। ङ, ढ संस्कृत में नहीं थी पर हिन्दी आदि आधुनिक भारतीय भाषाओं में आ गयी।

शब्द-भांडार को यदि पारिवारिक वर्गीकरण में भाषाओं का प्रामाणिक आधार मानने का प्रयास किया तो वह भी ठोस नहीं रहता। क्योंकि अनेक कारणों से अन्य भाषाओं के शब्द आ जाया करते है। जैसे 'चाय' शब्द चीनी, रूसी, तुर्की हिंदी में समान रूप से प्रयुक्त होता है, किंतु ये चारों भाषाएँ एक परिवार की नहीं है, अरबी के हजारों शब्द फारसी में आ गए हैं। उनमें से बहुत से शब्द हिंदी में आ गए हैं इससे यही निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि उक्त चार भाषाएँ एक परिवार से संबंध रखने में समर्थ नहीं हैं।

अर्थ की स्थिति ध्वनि और शब्द-भण्डार की स्थिति से अलग नहीं हो सकती। ध्वनि-परिवर्तन की तरह अर्थ-परिवर्तन है । आरंभ में 'मृग' शब्द पशु-मात्र के अर्थ में प्रयुक्त होता था किंतु बाद में वह शब्द पशु विशेष के अर्थ में भी प्रयुक्त होने लगा। फारसी भाषा में तो उसके ध्वनि और अर्थ परिवर्तन दिखाई देते हैं जैसे 'मृग' से मुर्ग बना और जिसका अर्थ बना पक्षी।

पद-रचना और वाक्य रचना दोनों व्याकरण से अनुशासित रहने के कारण उनमें कम-से-कम परिवर्तन होता है। ध्वनि-परिवर्तन, अर्थ परिवर्तन और अन्य भाषाओं के शब्दों का इधर-उधर होना स्वाभाविक है मगर पद-रचना और वाक्य-रचना में सहजता से परिवर्तन संभव नहीं होता। इसी कारण भाषाओं के पारिवारिक वर्गीकरण में इन्हें महत्त्व देना पडता है।

भौगोलिक समीपता का भी पारिवारिक वर्गीकरण में योगदान है। बहुत सी भाषाएँ एक दूसरे के समीप होती है सीमाएँ एक होती है फिर भी वे एक परिवार की नहीं हो सकती। जैसे-तेलगू और उडिया। अरबी और फारसी में भौगोलिक दूरी नहीं है, पर वे दोनों एक परिवार की है। इसी प्रकार भौगोलिक समीपता भी वर्गीकरण की दृष्टि से लाभदायक नहीं है।

भाषाओं के पारिवारिक वर्गीकरण में भले ही विवेचित घटक सीधे-आधार के रूप में प्रभावशाली साबित नहीं हो सकते किन्तु इनके अभाव में वर्गीकरण करना भी संभव नहीं है तात्पर्य न्यूनाधिक मात्रा में इनका वर्गीकरण पर

प्रभाव पडता है। सूक्ष्मता से देखा है तो हो सकता है, मगर स्थूल रूप से देखा तो ध्वनि, शब्द भण्डार और व्याकरण विशेष प्रभावी आधार के रूप में स्वीकृत करने पडेंगे। भाषाओं की समकालिकता, सामग्री का अभाव काल, भेद और कुछ ऐसे कारण है जो पारिवारिक वर्गीकरण की दृष्टि में संदिग्धता पैदा करते हैं। फिर भी ध्वनि, शब्द, व्याकरण को केंद्र में रखकर भाषाओं को विभिन्न परिवारों में बाँटने का प्रयास किया गया है।

भोलानाथ तिवारी भूगोल के आधार पर संसार की भाषाओं का वर्गीकरण करना सुविधाजनक मानते हैं। उन्होंने विश्व में चार भाषाखंड माने है 1) अफ्रिका खंड, 2) यूरेशिया खंड 3) प्रशांत महासागरी खंड 4) अमरीक-खंड। इन खंडों के अंतर्गत भाषा परिवारों का विभाजन किया है।

देवेंद्रनाथ शर्मा ने संसार के भाषा परिवारों की संख्या अनिश्चित बतायी है। बारह से सौ तक भाषा परिवार मानकर अठारह परिवारों को स्वीकृत किया जो निर्विवाद लगते हैं वे इस प्रकार -

1) भारत-यूरोप परिवार	2) द्रविड परिवार
3) बुरूरास्की परिवार	4) उराल-अल्ताई परिवार
5) कोकेशी परिवार	6) चीनी परिवार
7) जापानी कोरियाई परिवार	8) अत्युत्तरी (हायपर बोरी) परिवार
9) सामी-दामी परिवार	10) सुदानी परिवार
11) बन्तू परिवार	12) होतेन्तोत-बुशमैनी परिवार
13) बास्क परिवार	14) मलय बहुद्वीपीय परिवार
15) पापुई परिवार	16) ऑस्ट्रेलियाई परिवार
17) दक्षिणपूर्व-एशियाई परिवार	18) अमरीकी परिवार

उपर्युक्त भाषा परिवार चार खंडो (भौगोलिक दृष्टि) में विभाजित किए गए हैं। (1) यूरेशिया खंड में 1 से 10 तक परिवार। (2) अफ्रिका खंड में 10 से 13 तक परिवार, (3) प्रशांत महासागरीय खंड में 14 से 17 तक परिवार, (4) अमरिक खंड में अठारहवाँ परिवार.

अब हम उपर्युक्त 18 भाषा परिवारों पर संक्षेप में प्रकाश डालेंगे।

1) भारत-यूरोप परिवार :

यह परिवार बहुत विशाल है। विश्व के हर भूभाग पर इन भाषाओं को बोलनेवाले रहते हैं। इस परिवार के अन्य नाम है - भारत-जर्मनिक, आर्य-परिवार, भारत-यूरोपिय और भारत-हित्ती आदि लगभग एक सौ पाँच करोड लोगों द्वारा इस परिवार की भाषाएँ बोली जाती है। मध्य एशिया, रूस (दक्षिण भाग), काकेशश, स्केण्डीने विया, उत्तरी ध्रुव, पोलैण्ड का कुछ भाग, तिब्बत, एशिया माइनर, हंगरी का कुछ भाग, लिथु आमिया, रूसी, तुर्किस्तान, केस्पियन सागर का उत्तरी भूभाग और भारत आदि इसको बोलने वाले परिवार है। इन परिवारों का अन्य परिवारों की अपेक्षा सांस्कृतिक, वैज्ञानिक साहित्यिक भाषावैज्ञानिक अध्ययन विश्लेषण अधिक हुआ है।

इस परिवार की जो विशेषताएँ हैं उनमें 1) यह भाषाएँ तुलनात्मक दृष्टि से देखा तो शिष्ट योगात्मक अधिक थी।

2) ये भाषाएँ योगात्मक से वियोगात्मक होती गई।

3) इन भाषाओं में प्रत्यय के योग के शब्द या पद बनाए जाते हैं।

4) इन भाषाओं में धातुएँ एकाक्षरी है जिनमें प्रत्यय आदि जोडकर पद या शब्द बनाएँ जातें हैं।

5) इन भाषाओं में पूर्व सर्ग का प्रयोग अर्थ आदि परिवर्तन के लिए किया जाता है, उदाहरणार्थ - तृप्ति से अतृप्ति बनाने में 'अ' का प्रयोग किया है।

6) इस परिवार की अधिकतर भाषाएँ व्याकरण से सम्मत, सुदृढ और परिनिष्ठित है।

7) इस परिवार की भाषाओं में प्रत्ययों की संख्या सबसे अधिक हैं।

भारोपिय परिवार की कुछ शाखाएँ है जो इस प्रकार है - आर्य परिवार, बाल्तोस्लाविक, आरमिनी, इलीरी या अलबानी, इटालियन, ग्रीक (हेलेनिक), जर्मन (ट्यूटानिक), कैल्टिक, तोखारी हित्ती आदि।

भारोपिय परिवार का क्षेत्र बहुत ही व्यापक है। अत: इसका विस्तृत विवेचन किया जा सकता है। केवल संक्षिप्त परिचय के रूप में देने का प्रयास किया है।

2) द्रविड परिवार :

द्रविड परिवार की प्रमुख चार भाषाएँ जो अधिकतर दक्षिण भारत में बोली जाती है। तमिल, तेलगू, कन्नड, मलयालम आदि। जिनके क्षेत्र क्रमश: मद्रास (तमिलनाडू), आंध्र प्रदेश, म्हैसूर (कर्नाटक), केरल आदि हैं। इनके अलावा इस भाषा परिवार में **गोंडी -** मध्यभारत, बुंदेल खंड तथा उत्तर भारत का कुछ क्षेत्र। **उरांव -** बिहार, उडिसा, मध्य प्रदेश। और **ब्राहुई -** जिसका क्षेत्र है बलुचिस्तान। आदि भाषाएँ भी आती है। विवेचित प्रमुख चार भाषाओं के अलावा इस वर्ग की अन्य भाषाएँ अविकसित है।

द्रविड परिवार की भाषाओं की कुछ विशेषताएँ इस प्रकार हैं -

1) इस परिवार की अधिकतर भाषाएँ अश्लिष्ट अन्तयोगात्मक हैं ये भाषाएँ तुर्की से साम्य रखती है। इनमें प्रकृति और प्रत्यय का भेद बिल्कुल स्पष्ट रहता है।

2) इस वर्ग की भाषाओं में मूर्धन्य ध्वनियों की अधिकता है।

3) इसमें उराल, अल्ताई परिवार के समान समस्वरता पायी जाती है।

4) इन भाषाओं में लिंग-बोध के आधार पुरूषत्व-स्त्रीत्व न होकर प्राणित्व, अप्राणित्व है। संज्ञाओं के साथ स्त्री-वाचक या पुरूष-वाचक शब्द जोड़कर बनाये जाते हैं।

5) संज्ञा के अनुरूप विशेषण के रूप में परिवर्तन नहीं होता।

6) इन भाषाओं में दो वचन पाए जाते है बहुवचन प्रत्यय जोडकर बनाए जाते हैं।

3) बुरूशस्की परिवार :

इस परिवार को खजुवा या कुंजूती परिवार भी कहते हैं इसका क्षेत्र भारत का उत्तरी-पश्चिमी छोर-हुंजा, नगर, गिजिर, घाटी, यासीन का एक भाग साथ ही तुर्की, तिब्बत और भारत-इरानी परिवार की भाषाओं से घिरा है।

4) उराल-अल्ताई परिवार :

इस परिवार की भाषाएँ तुर्की, मंगोलिया, मंचूरिया, सायबेरिया तथा हंगेरी आदि देशों में बोली जाती है। उराल परिवार में तीन महत्त्वपूर्ण भाषाएँ हैं - फिनिश, एस्तोनियन और हंगेरियन (मगियार)। इसकी फिनिश में - केरेलियन, लाप मोडवीनियन, चेरेमिश और वोटियक आदि भाषाएँ आती है।

अल्ताई वर्ग में तुर्की, मंगोली और तुंगुस। तुर्की के अन्तर्गत तुर्की, किरगिज, अज़रबैजान, उजबेक (उजबेकिस्तान) आदि आती है। तुंगुस शाखा में तुंगुस और मंचू बोलियाँ है। मंगोली शाखा में कल्मुख और बुरियत भाषाएँ आती है।

इस भाषा वर्ग की विशेषताओं में अश्लिष्ट योगात्मकता मुख्य विशेषता है। समस्वरता (मूल शब्द में जैसा स्वर, प्रत्ययों में भी वैसा ही स्वर) है। धातुएँ विकारहीन अर्थात शब्दों में धातु को पहचाना जा सकता है।

5) कॉकेशी परिवार :

यह भाषा परिवार कॉकेशस पर्वत के समीवर्ती काले सागर से कैस्पियन सागर तक फैला हुआ है। इस परिवार की भाषाओं को दो शाखाओं में विभक्त कर सकते हैं। i) उत्तरी कॉकेशी, ii) दक्षिणी कॉकेशी। उत्तराखंड में इस शाखा के अंतर्गत सरकशी, चेचेनलेगी आदि भाषाएँ आती है और 'दाक्षिणात्य वर्ग में जार्जी मिंग्रेली और स्थानी भाषाएँ सम्मिलित की जाती है।[16] (समाधिया डॉ. नारायणदास : 1985) कॉकेशी नाम भौगोलिक है। इस परिवार में पहाड़ी भूभाग की भाषाएँ हैं। अधिकतर भाषाएँ परस्पर-असम्बद्ध हैं इनमें बोलियों की संख्या अधिक है।

कॉकेशी वर्ग की भाषाओं की विशेषताएँ इस प्रकार हैं -

1) कॉकेशी वर्ग की भाषाएँ वियोगात्मक प्रकृति की भाषाएँ है।

2) इन भाषाओं की पद-रचना अश्लिष्ट होने से बडी जटिल और दुरुह बन जाती है।

3) धातु में प्रत्यय और उपसर्ग दोनों का प्रयोग किया जाता है।

4) कॉकेशी की उत्तरी शाखा में व्यंजनों की बहुलता है और स्वरों की अल्पता है।

6) चीनी परिवार :

इसे चीनी या एकाक्षर परिवार भी कहते हैं। इस परिवार का क्षेत्र चीन, तिब्बत, बर्मा स्याम है। यह भाषा दो रूपों में चर्चित है पहला रूप चीनी के उत्तराखंड का है जो चीन की राजभाषा के रूप में प्रतिष्ठित है और दूसरा रूप दाक्षिणात्य का है जिसे कैन्टन भाषा की संज्ञा दी जाती है।

चीनी परिवार की भाषाओं की विशेषताएँ इस प्रकार है -

1) यह भाषाएँ एकाक्षर है जिसके कारण इनमें उपसर्ग, प्रत्यय, विभक्ति आदि नहीं होते।

2) अर्थ की स्पष्टता के लिए कभी-कभी शब्द युग्म का प्रयोग होता है।

3) इस वर्ग की भाषाओं में व्याकरण का अभाव है।

4) इन भाषाओं में स्वर एवं लय से भी अर्थ परिवर्तन हो जाता है।

7) जापानी-कोरियाई परिवार :

इस परिवार की भाषाएँ जापान और कोरिया के अतिरिक्त फारमोसा कैरोलीन आदि द्वीपों में भी बोली जाती है। जापानी और कोरियाई भाषाओं में पर्याप्त साम्य है।

जापानी-कोरियाई परिवार की भाषाओं की विशेषताएँ इस प्रकार है -

1) यह भाषाएँ मुख्यत: अश्लिष्ट योगात्मक है।

2) इस परिवार की भाषाओं में अनेकाक्षरता है।

3) शब्द के सभी अक्षरों पर समान बल पडत है।

4) व्याकरणिक लिंग का इन भाषाओं में अभाव पाया जाता है।

8) अत्युत्तरी (हाइपर बोरी) परिवार :

इस परिवार को पैलियो-एशियाटिक भी कहते हैं। इसका क्षेत्र साइबेरिया के उत्तरी-पूर्वी प्रदेश और लेन नदी से सरवालिन तक है। इस परिवार में युकगिर, चुकची, कोरियन, कमचदल, गिलियक अहनू आदि भाषाएँ आती है। इस परिवार की विशेषताएँ इस प्रकार हैं -

1) इन भाषाओं का निर्धारण सहाय्यक क्रियाओं से होता हैं जैसे अइनू:कु किक-मैं मारता हूँ। कु किक निसा-मेंने मारा है।

2) कारक बनाने के लिए अन्त में प्रत्यय लगते हैं जैसे अइनू : कोत त्सि - मनुष्य का घर।

3) संख्याओं में दशमिक और विशतिक जोडा जाना पाया जाता है।

9) सामी-हामी परिवार :

सामी-हामी भाषा परिवार उत्तरी आफ्रिका और दक्षिण पश्चिम एशिया में पाया जाता है। इसे अफ्रीकी-एशियाई परिवार भी कहा जाता है। इसकी पाँच शाखाएँ है - सामी, मिश्री, बर्बर, कोशी और छद। फिलिस्तीन, ईराक, अरब, सीरिया, मिस्त्र, इथियोपिया, मोरक्को, अल्जीरिया उत्तर अफ्रीका आदि देशों में इसे बोलनेवालों की संख्या अधिक है। इस परिवार की भाषाओं में पायी जानेवाली विशेषताएँ -

1) इस परिवार की कालधारणा अनिश्चित है।

2) बहुवचन बोधक प्रत्यय समान स्त्रोत से उत्पन्न है।

3) दोनों परिवारों में 'त' स्त्री बोधक प्रत्यय हैं।

4) दोनों में व्याकरणिक लिंग वर्तमान है।

10) सुदानी परिवार :

इस परिवार की भाषाएँ भूमध्यरेखा के उत्तर में पश्चिमी छोर से लेकर पूर्वी छोर तक बोली जाती है। इस परिवार में चारसौ से ऊपर भाषाएँ हैं जिन्हें चार वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। जिनमें हउसा, वुले, मानफू, कनूरी आदि उल्लेखनीय है। इनमें से कुछ ही भाषाएँ लिपिबद्ध है।

सुदानी परिवार की भाषाओं की कुछ विशेषताएँ इस प्रकार हैं -

1) सुदानी परिवार की भाषाएँ मुख्यत: अयोआत्मक हैं।

2) इसकी धातुएँ चीनी भाषा परिवार जैसे एकाक्षरी है।

3) सुदानी परिवार में व्याकरणिक लिंग नहीं होता। स्त्री और पुरुष वाचक शब्दों की सहायता से लिंग बोध कराया जाता है।

4) बहुवचन की अभिव्यक्ति के लिए 'ये', 'वे' वाचक सर्वनाम अथवा लोग शब्द जोडकर प्रयोग किया जाता है।

5) उपसर्ग और निपात के अभाव में सरल और छोटे वाक्यों का ही प्रयोग करना पडता है। उदा. मैं शहर में जाता हूँ, के लिए मैं जाता हूँ।

6) इस परिवार की भाषाओं में कुछ विशेष प्रकार के शब्द होते है - 'ध्वनि-चित्र', 'शब्द-चित्र', 'ध्वन्यर्थव्यंजक' अथवा इन्हें वर्णनात्मक क्रियाविशेषण कहते हैं। इनमें परिवर्तन नहीं होता इनकी सहायता से रूप, स्थिति, रंग, स्वाद, ध्वनि, गति और गंध की भी व्यंजना होती है।

11) बन्तू या बांटू परिवार :

इस परिवार का क्षेत्र प्राय: सम्पूर्ण दक्षिण अफ्रीका है। केवल जहाँ होतेन्तोत-बुशमैनी परिवार की भाषाएँ बोली जाती है (दक्षिण-पश्चिमी और उत्तर में सुदानी परिवार) उस क्षेत्र को छोडकर सर्वत्र। बन्तू परिवार की प्रमुख भाषाएँ है - स्वाहिली, जुलु, काफिर, रूआन्दा, उम्बुन्दु, हेरेरो और कांगो। इसकी 150 भाषाओं को पूर्वी, मध्यवर्ती और पश्चिमी तीन भागों में बाँटा है। बन्तू परिवार की प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं -

1) इस परिवार की भाषाएँ अश्लिष्ट योगात्मक है।

2) पद या शब्द बनाते समय इन भाषाओं में उपसर्ग जोड़ दिया जाता है। इस परिवार का नाम इसका उदाहरण है। ब = बहुवचनवाचक उपसर्ग। न्तू = मनुष्य इस प्रकार बन्तू = बहुत मनुष्य।

3) इन भाषाओं में सर्वथा लिंग का अभाव है।

4) स्वर परिवर्तन से अर्थ परिवर्तन होता है जैसे - होफिनेल्ला (बाँधना) किंतु होफिनोल्ला (खोलना)।

5) इन भाषाओं में संयुक्ताक्षर की कमी होने से मधुरता, ग्येयता अधिक पायी जाती है।

इस परिवार की स्वाहिली भाषा सब से महत्त्वपूर्ण और व्यापक होने के साथ सम्पूर्ण अफ्रीकी तट की सम्पर्क भाषा है।

12) होतेंतोत-बुश्मैनी परिवार (खोइम परिवार) :

'बुश्मैनी' जाति के लोग 'होतेंतोत' भाषा का प्रयोग अधिक करते हैं। होतेंतोत-बुश्मैनी परिवार का क्षेत्र दक्षिण-पश्चिमी अफ्रीका में ऑरेंज नदी से लेकर नगामी झील तक है। प्रमुख भाषाएँ है - होतेंतोत, नामा, हमरा, सन्दवा, ऐकवे और औकवे।'7 (सरोज भारत भूषण : 1984)

होतेंतोत-बुश्मैनी परिवार की भाषाओं की विशेषताएँ इस प्रकार है-

1) इस परिवार की भाषाओं में 'क्लिक नामक कतिपय विलक्षण ध्वनियाँ पायी जाती है, जो अन्त: स्फोटात्मक अधिक होती है जो पाँच प्रकार की है - ओष्ठ्य, दंत्य, मूर्धन्य, तालव्य और पार्श्विक। इनके उच्चारण के समय श्वास अंदर की ओर खींचा जाता है।

2) इस परिवार की भाषाओं की लिंग-व्यवस्था प्राणित्व और अप्राणित्व (सजीव एवं निर्जीव) पर आधारित है।

3) इनके बहुवचन बनाने के पचास - साठ प्रकार पाए जाते हैं अर्थात उसमें अनिश्चितता है।

13) बास्क परिवार :

बास्क परिवार का भाषा क्षेत्र फ्रान्स में पश्चिमी पेरानीज पर्वत से स्पेन तक है। पर्वतीय दुर्गमता के कारण इस परिवार में 8-10 बोलियाँ विकसित हो गई है।

बास्क परिवार की प्रमुख विशेषताएँ है -

1) यह भाषा अश्लिष्ट-अन्तयोगात्मक भाषा है।

2) ध्वनियों की दृष्टि से बास्क भाषा अधिक समृद्ध है।

3) क्रिया के रूपों में जटिलता है। हर क्रिया में कम से कम चौबीस रूप होते हैं। अर्थात वाक्य रचना अत्यंत जटिल हैं।

4) लिंग व्यवस्था केवल क्रिया रूपों में पायी जाती है। लिंग संबोधन व्यक्ति के अनुसार होता है जैसे -

एज़्तकिक = मैं इसे नहीं जानता।

एज़्तकिक = मैं इसे नहीं जानता।

एज़्तकि = मैं इसे नहीं जानता ओ स्त्री!

एज़्तकि-अ-त् = मैं इसे नहीं जानता ओ पुरूष!

एज़्तकि-जु-त् = मैं इसे नहीं जानता ओ आदरणीय!

एज़्तकि-चु-त् = मैं इसे नहीं जानता ओ बच्चे!

5) पदरचना में प्रत्यय प्रधान होते हैं।

6) बास्क परिवार में शब्द भण्डार सीमित है। साथ ही साहित्यिक रचनाओं का भी अभाव पाया जाता है।

14) मलय-बहुद्वीपीय परिवार :

इस परिवार के अन्य नाम है - मलय पोलिनेशियाई परिवार, आस्ट्रोनेशियई परिवार आदि। इस परिवार का भारोपिय परिवार के बाद दूसरा स्थान है।

मलय-बहुद्वीपीय परिवार का क्षेत्र पश्चिम में अफ्रीकी के तटवर्ती मडागास्कर से लेकर पूर्व में ईस्टर द्वीप तक और उत्तर में फारमोसा से लेकर दक्षिण में न्यूजीलैंण्ड तक जिसमें उल्लेखनीय है, मलय प्रायद्वीप, जावा, सुमात्रा, बोर्नियो, सिलिबिज, बाली, फिलीपाइन्स, न्यूजीलैंण्ड, समोआ, हवाई, ताहिती और प्रशांत महासागर के अधिकतर छोटे-छोटे द्वीप।

इस परिवार की प्रमुख तीन भाषाएँ हैं - 'इण्डोनेशियाई, पोलिनेशियाई और मायक्रोनेशियाई'[8] (शर्मा डॉ. हरिश : 1972)। देवेन्द्रर्ना शर्मा इसकी चार शाखाएँ मानते हैं - इन्दोनेशियाई, मेलानेशियाई, मिक्रोनेशियाई और पोलिनेशियाई।

इण्डोनेशियाई के अन्तर्गत बहाशा, इण्डोनेशियाई जावानी, मलय, सूडानी, मदुरन, उल्लेखनीय भाषाएँ है। इण्डोनेशियाई, इण्डोनेशिया की भाषा है। जो मलय पर आधारित है। मलय मूलत: सुमात्रा की भाषा है लेकिन अब यह भाषा मलाया, बोर्नियो आदि की भी है। जावानी, सूडानी और मदुरन जावाकी भाषाएँ हैं। अन्य भाषाओं में बाली द्वीप की भाषाएँ हैं - बटक, दयक मकस्सर आदि है। इण्डोनेशियाई भाषा फिलिपाइन क्षेत्र में तगलोग, बिसयन और इलोकेन आदि रूपों में है।

पोलिनेशियाई शाखा में हवाई, समाओ, माओरी आदि हैं जो हवाई द्वीपों से न्यूजीलैण्ड के साथ पूर्वी द्वीप समूह तक आती है।

मायक्रोनेशियाई और मलेनेशियाई शाखा के अन्तर्गत अनेक भाषाएँ परस्पर सम्बद्ध है। इस क्षेत्र में फिजियन का अधिक बोलबाला है।

इस परिवार की विशेषताएँ हैं -

1) यह परिवार अश्लिष्ट योगात्मक भाषाओं का समूह है।

2) इस परिवार की भाषाओं की धातुएँ द्विराक्षरी है।

3) बल का प्रयोग शब्द के प्रथम अक्षर पर होता है।

4) संज्ञाओं में विभक्ति, लिंग, वचन आदि का अभाव है।

5) धातु के मध्य में प्रत्यय जोडकर क्रिया रूप बनाए जाते हैं।

15) पापुई परिवार :

पापुई परिवार का क्षेत्र हैं - न्यूगिनी, न्यू ब्रिटेन का कुछ भाग, राउ, तोलो, तेरनात, तिदोर, सोलोमन द्वीपपुंज का कुछ भाग। इस परिवार की कुल 132 भाषाएँ हैं किन्तु अधिकतर लुप्त है।

पापुई परिवार की विशेषताएँ इस प्रकार है -

1) इस परिवार में प्राय: अश्लिष्ट योगात्मक भाषाएँ है।

2) धातुओं उपसर्ग एवं प्रत्यय आदि से शब्द बनाएँ जाते हैं। उदा. न्यूगिनी की मफोर भाषा में ज-म्नफ = मैं सुनता हूँ। व-म्नफ = तू सुनता है; इ-म्नफ = वह सुनता है; सी-म्नफ = वे सुनते हैं; ज-म्नफ-उ = मैं तेरी बात सुनता हूँ।

इस परिवार की भाषाओं का सूक्ष्म तथा सम्यक अध्यन होने से वर्गीकरण करना संभव नहीं है।

16) ऑस्ट्रेलियाई परिवार :

इस परिवार का क्षेत्र ऑस्ट्रेलिया है। सम्पूर्ण ऑस्टेलिया महाद्वीप परिवार में ये भाषाएँ प्रचलित है। ऑस्ट्रेलिया यह नाम भौगोलिक है - भाषिक नहीं। उत्तरी और दक्षिणी ऑस्ट्रेलिया में 100 (सौ) से अधिक भाषाएँ बोलने का अनुमान है किंतु अधिकतर लुप्त है।

ऑस्ट्रेलियाई परिवार की भाषाओं की विशेषताएँ -

1) ऑस्ट्रेलियाई भाषाएँ अश्लिष्ट योगात्मक है।

2) इन भाषाओं में प्रत्यय जोउकर शब्द बनाएँ जाते हैं।

3) इनकी भाषाओं में संख्यावाचक शब्द केवल 1, 2 और 3 के लिए हैं। ऊँची संख्याएँ इनमें कुछ योग करके बनाई जाती है। उदा. युंगर बोली में देखिए -

गुदल- गुदल - दो दो अर्थात चार।
मार्दिन बंगा गुदिर गन - हाथ आदा और एक अर्थात छ:।

4) कुछ भाषाओं में (जैसे, सैवलगल) में उत्तम पुरुष एकवचन में पुल्लिंग के लिए अलग और स्त्रीलिंग के अलग सर्वनाम प्रयुक्त होता है।

17) दक्षिण पूर्व एशियायी परिवार :

इस परिवार का भाषाक्षेत्र बडा विस्तृत है - अन्नाम, कंबोडिया, स्याम से भारत और निकोबार द्वीप समूह तक।

इस परिवार के प्रमुख तीन वर्ग है -

1) मुंडा या कोल, 2) मोन-ख्मेर, 3) अन्नाम-मुआङ्। इसमें मुंडा के दो वर्ग है उत्तरी और दक्षिणी। उत्तरी में लिम्बू, धीमाल, बूनान, पाटनी, कनावरी आदि है। दक्षिणी में संथाली, मुंडारी, भूमिज, कोडा। इनमें मुंडा और संथाली सबसे प्रसिद्ध भाषाएँ हैं -

इस परिवार के भाषाओं की विशेषताएँ इस प्रकार है -

1) इस परिवार की भाषाएँ चीनी भाषा के निकट हैं उनमें संज्ञा, क्रिया आदि शब्द भेद नहीं है।

2) ध्वनियों की दृष्टि से कुछ भाषाएँ समृद्ध है उदा. मुंडारी।

3) लिंग बोध के लिए मूल शब्द में स्त्रीवाचक या पुरुषवाचक शब्द जोड दिया जाता है जैसे - आँडिया कूल (बाघ), एंगा कूल (बाघिन)।

4) इस परिवार की भाषाओं में पद-रचना के लिए उपसर्ग का प्रयोग होता है।

18) अमरिकी परिवार :

अमरिकी परिवार में दक्षिणी एवं उत्तरी क्षेत्र की भाषाएँ सम्मिलित हैं। अमरिकी परिवार के आदिवासी एक हजार के आसपास भाषाएँ बोलते हैं। लेकिन उनका अभी तक ठीक तरह से वर्गीकरण नहीं हो पाया है। इस परिवार के भाषा के प्रमुख तीन वर्ग है। कनाडा और संयुक्त राज्य, मेक्सिको और मध्य अमरिका तथा दक्षिण अमरिका। इन भाषाओं में अथवस्की, अलगोनकी, होका और यूरोकपा प्रचलित है। उत्तर और दक्षिण अमरिका में होका और चिबोचा अधिक प्रचलित हैं।

इस प्रकार पारिवारिक वर्गीकरण में विश्व के सांस्कृतिक एकता के भी दर्शन होते हैं और विश्वभाषाओं का भाषावैज्ञानिक संक्षिप्त ज्ञान प्राप्त होता है। एक परिवार से सम्बद्ध भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन भी संभव है। एक-एक भाषा परिवार का विस्तृत विवेचन भी अलग-अलग रूप से किया जा सकता है।

1.3 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न :

(ड) उचित विकल्प चुनकर वाक्य फिर से लिखिए।

1. महाद्वीप के अन्तर्गत कौनसी भाषाएँ आती हैं?
   अ) एशियायी ब) भारतीय क) आधुनिक ड) फारसी-प्रभावित
2. भाषाओं के वर्गीकरण में आकृतिमूलक वर्गीकरण का आधार है -
   अ) वाक्य-रचना ब) व्याकरण क) ध्वनि ड) अर्थ
3. अयोगात्मक भाषा का सुन्दर उदाहरण कौनसी भाषा हैं?
   अ) चीनी ब) तुर्की क) बांटू ड) हिंदी
4. कौनसी भाषाओं में शब्दों की रूप-रचना, सम्बन्ध तत्त्व केवल आरंभ में लगता है?
   अ) पूर्वांत योगात्मक ब) पूर्व योगात्मक क) मध्य योगात्मक ड) अन्त योगात्मक
5. किस परिवार का क्षेत्र विशाल है?
   अ) अमरिकी ब) सामी-हामी क) बन्तू ड) भारत-यूरोप
6. कौनसा परिवार एकाक्षर है?
   अ) कॉकेशी ब) चीनी क) बास्क ड) पापुई
7. द्रविड परिवार की भाषा है -
   अ) मलयालम ब) चीनी क) मंगोली ड) मदुरन
8. बास्क परिवार की भाषाओं का कौनसा देश है ?

अ) तिब्बत ब) फ्रान्स क) सीरिया ड) कोरिया

9. 'इसाई भाषाएँ' किस आधारपर भाषा का वर्गीकरण है?
   अ) देश ब) धर्म क) प्रभाव ड) द्वीप

10. आकृति मूलक वर्गीकरण किस पर आधारित रहता है?
   अ) काल ब) लिंग क) अर्थ ड) रूप और रचना

11. योगात्मक भाषाओं के प्रमुख भेद है -
   अ) तीन ब) चार क) पाँच ड) छह

12. 'माँ' के लिए जर्मन भाषा में शब्द है -
   अ) मुत्तेर ब) मातेर क) मातृ ड) मदर

13. किस भाषा में 'ज' ध्वनि नहीं है?
   अ) फारसी ब) रूसी क) जर्मन ड) संस्कृत

14. बास्क और एक्सिमो किस प्रकार की भाषाएँ है?
   अ) प्रश्लिष्ट योगात्मक ब) श्लिष्ट योगात्मक क) अश्लिश्ट योगात्मक ड) अयोगात्मक

15. पदक्रम का सर्वोपरी महत्त्व किसमें रहता है?
   अ) योगात्मक ब) अयोगात्मक क) श्लिष्ट योगात्मक ड) प्रश्लिष्ट योगात्मक

1.4 शब्दार्थ, संदर्भ, टिप्पणियाँ :

1) यादृच्छिक = ध्वनिप्रतीक, स्वतंत्र
2) श्रोतृ ग्राह्य = कानों से ग्रहण करना
3) भाषेतर = सभी प्रकार के संकेत
4) रीतिबद्ध = एक प्रकार से बँधा हुआ
5) संचरण = भ्रमण, प्रयोग में लाना
6) विस्थापन = बलपूर्वक किसी स्थान से हटना
7) सरणी = मार्ग, रास्ता
8) अधिमता = प्राप्ति, जानना, सीखना
9) अभिजात = उच्च कुल में उत्पन्न
10) श्लिष्ट = सभ्य, सभ्य समाज में रहने योग्य

टिप्पणियाँ :

1) टकसाली - टकसाल-सिक्कों की ढलाई का स्थान, निर्दोष वस्तु, खरा। टकसाली वि. टकसाल का प्रामाणिक, शिष्टों द्वारा अनुमोदित भाषा प्रयोग।

2) अयोगात्मक - अयोगात्मक वर्ग की भाषाओं के isolating, positional, inorganic, व्यास प्रधान, निपात-प्रधान, निरिन्द्रिय, निरवयव, निर्योग तथा निर्योगी, अलगन्त, विकीर्ण, एकाक्षर, एकाच, धातुप्रधान आदि नामों का प्रयोग अंग्रेजी, हिंदी किताबों में मिलता हैं।

3) योगात्मक - इस वर्ग की भाषाओं के लिए agglutinating, organic, agglomerating, abounding in

affixes, प्रकृति-प्रत्यय-प्रधान, संयोगात्मक, संयोगी, संयोग-प्रधान, व्यक्त, योग, उपचयोन्मुख, संचयीन्मुख तथा सावयव आदि का भी प्रयोग मिलता है।

1.5 सारांश :

भाषा तथा भाषा के विभिन्न रूपों में भाषा के स्वरूप से शुरूवात की है। भाषा के स्वरूप से स्पष्ट हो चुका है कि भाषा विचार, विनिमय का प्रमुख साधन है। भाषा में स्पर्शग्राह्य, नेत्रग्राह्य और श्रोतृग्राह्य इन तीन साधनों का उपयोग किया जाता है। मगर भाषाविज्ञान की दृष्टि से मानव मुख से उच्चरित यादृच्छिक ध्वनि प्रतिकों की भाषा महत्त्वपूर्ण मानी जाती है। जिस पर भारतीय एवं पाश्चात्य भाषावैज्ञानिकों ने प्रकट किए मतों पर विचार किया हुआ है। मानवीय भाषा की प्रॉपर्टी (Property) अर्थात अभिलक्षणों को सूक्ष्म रूप से देखने पर पता चलता है कि विवेचित अभिलक्षण मानवेत्तर भाषा में प्राप्त नहीं होते। अभिलक्षण के साथ भाषा की विशेषताओं पर भी प्रकाश डाला है। मानवीय भाषा के विविध रूप हो सकते हैं जिनमें मानक भाषा, उपभाषा, बोली, उपबोली, कूटभाषा, कृत्रिम भाषा, अभिजात भाषा, अपभाषा मिश्रित भाषा। ये सारे रूप समाजप्रयोग में लाए जाते हैं। भाषा के रूप में उनका प्रयोग होता रहता है। उपभाषा, बोली और उपबोली तीनों में किस तरह सूक्ष्म अंतर है। बोली का प्रयोग कब होता है? और भाषा कैसी होती है? आदि बातें इन रूपों से ज्ञात होती है। भाषा के अन्य रूप कब और क्यों बनते हैं? क्यों बनाएँ जाते हैं? भाषा के कुछ रूप जनसाधारण से पृथक रहे तो उनकी स्थिति क्या होती है? यह भी स्पष्ट हुआ है।

भाषाओं के वर्गीकरण में सूक्ष्म और स्थूल रूप से देखा तो आकृतिमूलक वर्गीकरण और पारिवारिक वर्गीकरण दो आधार सामने आते है। भाषा विज्ञान का काम है कि भाषाओं का वैज्ञानिक अध्ययन करें। संसार में लगभग तीन हजार भाषाएँ हैं। उनका अति सूक्ष्म न सही मगर दो रूपों में अध्ययन करने का प्रयास किया गया है, जो बिल्कुल सटीक है। आकृतिमूलक में पदरचना, रूप-रचना और सम्बन्ध तत्त्व आदि महत्त्वपूर्ण माने गए हैं। फिर उसमें इन तत्त्वों को केंद्र में रखकर अयोगात्मक भाषाएँ और योगात्मक भाषाएँ आदि भेद करके सूक्ष्म अध्ययन किया है। पारिवारिक वर्गीकरण में भाषाओं का विस्तार से अध्ययन किया जा सकता है मगर अठारह भाषा परिवार बनाकर विश्व की भाषाओ को उनका क्षेत्र, वर्ग और उनकी विशेषताएँ आदि रूपों में संक्षिप्तता के साथ छात्रों के समक्ष रखने की कोशिश की है।

1.6 स्वयं अध्ययन प्रश्नों के उत्तर :

(अ)

1) अ - संस्कृत	2) ब - भाषा
3) क - दो	4) ड - मौखिक
5) ड - प्लेटो	6) क - स्वीट
7) क - प्लेटो	8) ब - डॉ. बाबूराम सक्सेना
9) अ - नेत्र	10) क - वेन्द्रिय

(ब)

1) अ - संस्कृत	1) ब - हॉकिट

3) क - यादृच्छिकता
4) ड - सृजनात्मकता
5) ब - भाषा
6) ड - अनुकरण
7) अ - परिवर्तन
8) ब - दो
9) क - सामाजिक
10) ब - मराठी

(क)

1) ड - मानक भाषा
2) क - श्यामसुंदर दास
3) ब - पाँच
4) अ - पश्चिमी हिंदी
5) ब - उपबोली
6) क - अपभाषा
7) ड - जेमेन हाल्फ
8) ड - मिश्रित भाषा
9) क - कूटभाषा
10) ब - अंग्रेजी
11) क - अभिजात
12) अ - उपबोली
13) ड - चीन
14) ब - दो
15) क - सोलह

(ड)

1) अ - एशियायी
2) अ - वाक्य रचना
3) अ - चीनी
4) ब - पूर्व योगात्मक
5) ड - भारत-यूरोप
6) ब - चीनी
7) अ - अलयालम
8) ब - फ्रान्स
9) ब - धर्म
10) ड - रूप और रचना
11) अ - तीन
12) अ - मुत्तेर
13) ड - संस्कृत
14) अ - प्रश्लिष्ट योगात्मक
15) ब - अयोगात्मक

1.7 स्वाध्याय :

अ) टिप्पणियाँ :

1) भाषा का स्वरूप।
2) भाषा की पाश्चात्य परिभाषाएँ।
3) भाषा की परिभाषा - भारतीय मत।
4) भाषा के किन्हीं पाँच अभिलक्षण।
5) भाषा की किन्हीं पाँच विशेषताएँ।
6) बोली।

7) कूटभाषा।
8) कृत्रिम भाषा।
9) अयोगात्मक भाषाएँ।
10) शिष्ट योगात्मक भाषा।
11) पारिवारिक वर्गीकरण में भारत-यूरोप परिवार।

आ) दीर्घोत्तरी प्रश्न :

1) भाषा का स्वरूप बताकर भाषा की परिभाषा विशद कीजिए।
2) भाषा के अभिलक्षण स्पष्ट कीजिए।
3) भाषा की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
4) भाषा के विभिन्न रूपों को बताकर बोली, उपबोली और उपभाषा के रूपों को स्पष्ट कीजिए।
5) भाषा के विभिन्न रूपों में से मानक भाषा, अभिजात भाषा और मिश्रित भाषा आदि रूपों को विशद कीजिए।
6) भाषाओं के वर्गीकरण के आकृतिमूलक वर्गीकरण पर प्रकाश डालिए।
7) भाषाओं के पारिवारिक वर्गीकरण के आधारपर प्रमुख भाषा परिवारों पर संक्षिप्त प्रकाश डालिए।

1.8 क्षेत्रीय कार्य :

1) भाषा की प्रयोगशाला की जानकारी प्राप्त कीजिए।
2) मानवेत्तर प्राणियों की भाषा की विशेषताएँ जानने का प्रयास कीजिए।
3) भारतीय भाषाओं का वर्गीकरण कीजिए।
4) समाज में प्राप्त भाषा के अन्य रूपों की जानकारी प्राप्त कीजिए।

1.9 संदर्भ ग्रंथ सूची :

1) शर्मा डॉ. देवेंद्रनाथ : 'भाषा विज्ञान की भूमिका', राधाकृष्ण प्रकाशन, दरियागंज, दिल्ली, तृ. सं. 1972 ई. पृ. सं. 20, 104, 105
2) तिवारी डॉ. भोलानाथ : 'मानक हिंदी का स्वरूप', प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2011 ई. पृ. सं. 09
3) मौर्य डॉ. राजनारायण : 'भाषा विज्ञान के तत्त्व', साहित्य भवन प्रा. लि., इलाहाबाद, संस्करण - 1984 ई. पृ. सं. 15, 17, 50
4) शर्मा डॉ. देवेंद्रनाथ : 'भाषा विज्ञान की भूमिका', राधाकृष्ण प्रकाशन, दरियागंज, दिल्ली, तृ. सं. 1972 ई. पृ. सं. 105

5) समाधिया डॉ. नारायणदास : ‘भाषा विज्ञान और हिंदी भाषा’, खुर्जा संस्करण, 1985 ई. पृ. सं. 25

6) सरोज भारतभूषण / शर्मा डॉ. कृष्णदेव : ‘भाषा विज्ञान’, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा. नया संस्करण 1984 ई. पृ. सं. 107

7) शर्मा डॉ. हरिश : ‘सामान्य भाषा विज्ञान’, अमित प्रकाशन, गाजियाबाद प्र. सं. 1972 ई. पृ. सं. 94

1.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए :

1) सिंह विजयपाल : ‘भाषा विज्ञान’, संजय बुक सेंटर, वाराणसी

2) पाटील डॉ. हणमंतराव : ‘आधुनिक भाषा विज्ञान’, प्रेम प्रकाशन मन्दिर, दिल्ली

3) चौधरी तेजपाल : ‘भाषा और भाषा विज्ञान’, विकास प्रकाशन, कानपुर

4) पाण्डेय डॉ. लक्ष्मीकांत अवस्थी डॉ. प्रमिला : ‘भाषा विज्ञान एवं हिंदी भाषा’, आशिष प्रकाशन, कानपुर

❑❑❑

इकाई : 2

भाषाविज्ञान का इतिहास

अनुक्रम-रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 विषय विवरण

- भाषाविज्ञान का इतिहास

2.2.1 भाषाविज्ञान : स्वरूप

2.2.2 भाषाविज्ञान की प्राचीन तथा आधुनिक भारतीय परम्परा

2.2.3 पाश्चात्य विद्वानों का भारतीय भाषाओं पर कार्य

2.3 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न

2.4 शब्दार्थ, संदर्भ, टिप्पणियाँ

2.5 सारांश

2.6 स्वयं अध्ययन प्रश्नों के उत्तर

2.7 स्वाध्याय

2.8 क्षेत्रिय कार्य

2.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

2.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए

2.0 उद्देश्य :

इस इकाई के अध्ययनोपरान्त,

- ◆ भाषाविज्ञान के स्वरूप से परिचित हो जाएँगे।
- ◆ भाषाविज्ञान की परिभाषा बता पाएँगे।
- ◆ भाषाविज्ञान की प्राचीन परम्परा से परिचित हो जाएँगे।
- ◆ भाषाविज्ञान की आधुनिक परम्परा समझ सकेंगे।
- ◆ पाश्चात्य भाषा विद्ों का भारतीय भाषाओं पर किया हुआ कार्य जान सकेंगे।

2.1 प्रस्तावना :

भाषाविज्ञान, भाषा का विज्ञान है इसलिए प्रथम इकाई में भाषा के स्वरूप से लेकर पारिवारिक वर्गीकरण तक सूक्ष्म अध्ययन करने के बाद हम इस इकाई में भाषाविज्ञान का स्वरूप किस प्रकार होता है, उसका नामकरण भाषाविज्ञान शब्द का अर्थ, भाषाविज्ञान संबंधी भारतीय एवं पाश्चात्य मतों के साथ भाषाविज्ञान की प्राचीन तथा आधुनिक भारतीय परम्पराएँ कौनसी है? पाश्चात्य भाषावैज्ञानिकों ने भाषा विमर्श में भारतीय भाषाओं पर जो कार्य किया है उसपर विस्तृत विचार-विमर्श किया जाएगा। जिस प्रकार अन्यज्ञान-विज्ञानों की परम्पराएँ है उसी प्रकार भाषाविज्ञान की भी है। उसपर भी समय-समय पर विचार होता आया है उनपर भाषावैज्ञानिक दृष्टि से गौर करना अनिवार्य है।

2.2 विषय विवरण :

किसी विषय का अध्ययन करना हो या ज्ञान देना हो तो उसमें वैज्ञानिकता का होना आवश्यक होता है। यदि केवल स्थूल दृष्टि ज्ञान दिया जाएगा तो अध्येता को उस विषय का गहरा ज्ञान नहीं मिल पाएगा। इसलिए भाषाविज्ञान के अध्ययन में यह जरूरी है कि छात्रों को सूक्ष्मता के साथ ज्ञान दिया जाए। अत: भाषाविज्ञान के अध्ययन में भाषाविज्ञान के स्वरूप से शुरुआत करके उसकी परम्पराएँ और पाश्चात्य विद्वानों ने भारतीय भाषाओं पर जो कार्य किया है उसपर सूक्ष्म चिंतन की आवश्यकता महसूस होती है।

■ भाषाविज्ञान का इतिहास :

भाषाविज्ञान के अध्ययन में उसकी पूर्व पीठिका अर्थात उसके इतिहास से विचार करना जरूरी है। भाषाविज्ञान शब्द से शुरुआत करके उसका नामकरण और स्वरूप से अध्ययन करना जरूरी है।

2.2.1 भाषाविज्ञान का स्वरूप :

भाषाविज्ञान के अंतर्गत भाषा का विश्लेषण सापेक्ष विस्तृत अध्ययन किया जाता है। इसीकारण हमने प्रथम इकाई में भाषा का स्वरूप उसके विविध रूप और वर्गीकरण पर विशेष ध्यान आकर्षित किया था। 'भाषा वह वाणी है जो बोलने और लिखने के काम आती है।' तथा विज्ञान वह होता है, जो विशिष्ट होता है। जिसके नियमों में निश्चितता और अकाट्यता होती है। हो सकता है नियम सभी भाषाओं पर समान रूप से लागू नहीं हो सकेंगे। किंतु

इतना सच है कि भाषाविज्ञान में भाषा का ज्ञान सहज प्राप्त करना संभव नहीं होता वह विशिष्ट ज्ञान अवश्य रहता है। भाषा सम्बन्धी पाठक के मन उठनेवाले सवालों के जवाब भाषाविज्ञान दे देता है। भाषाविज्ञान किसी एक भाषा से सम्बद्ध नहीं रखता। अपितु विश्व की भाषाओं का सामूहिक एवं तुलनात्मक अध्ययन विश्लेषण प्रस्तुत करता है। भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन ही भाषाविज्ञान है। प्रथम भाषा के अध्ययन में सामान्य दृष्टि थी पर अब सामान्य से वैज्ञानिक अध्ययन की जरूरत है।

'भाषाविज्ञान' शब्द भाषा और विज्ञान इन दो अवयवों के योग से बना हुआ है। भाषाविज्ञान के 'विज्ञान' शब्द का अर्थ है 'विशिष्ट ज्ञान' अर्थात भाषा का विशिष्ट ज्ञान। विज्ञान के अंतर्गत उस ज्ञान का अध्ययन किया जाता है जो तर्क एवं विश्लेषण के आधार पर किया जाता है। जिसमें एक निश्चित क्रम होता है। ठीक इसीतरह भाषाविज्ञान में तर्क एवं विश्लेषण का आधार लिया गया है। भाषाविज्ञान में भाषा का वस्तुपरक अध्ययन नहीं हो सकता क्योंकि भाषा कोई पदार्थ नहीं है, अन्यविज्ञानों में वस्तुपरक अध्ययन संभव हो सकता है।

भाषाविज्ञान का नामकरण :

भाषाविज्ञान को कुछ लोगों ने भाषाविज्ञान की अपेक्षा, भाषिकी, भाषा लोचन या भाषा शास्त्र नाम से अभिहीत किया गया है। वस्तुत: ये सभी नाम अंग्रेजी में प्रचलित 'लिंगविस्टिक' शब्द के अनुवाद के रूप में आए हैं। अंग्रेजी में 'लिंगविस्टिक' (Linguastics) और 'फिलॉलोजी' (Philology) इन दो शब्दों का प्रयोग भाषाविज्ञान के लिए किया जाता है ।'[1] (पाण्डेय डॉ. लक्ष्मीकांत : 2006) व्यापक दृष्टि से कहीं-कहीं Science of Language भी कहा जाता है। लेकिन 'फिलॉलोजी' (Philology) शब्द ही सर्वाधिक उपयुक्त सिद्ध होता है। इस शब्द के मूल धातु ग्रीक भाषा के है। 'Philology' शब्द में दो शब्द है - Phil + Logos, Phil का अर्थ है 'word' या 'शब्द' तथा 'Logos' का अर्थ है - 'Science' या विज्ञान। इस प्रकार अर्थ होता है - 'Science of word' इसका word शब्द भाषा का वाचक है।

भाषा, विकसनशील, विश्लेषण सापेक्ष्य, यादृच्छिक एवं ध्वनिमूलक सार्थक व्यवस्था होने के कारण इसका विज्ञान स्थिर नहीं हो सकता। इस उपपत्ति के आधारपर ही कहा जा सकता है कि ''भाषाविज्ञान, भाषा-मातृ के अध्ययन से संबंधित एक गत्यात्मक विज्ञान है जिसका विकास देशकाल के परिवेश में होता है।''[2] (शर्मा डॉ. हरिश : 1972) इन सभी बातों को ध्यान में लेकर भाषाविज्ञान के लिए अनेक नामों का प्रयोग होता आया है। 18 वीं शताब्दी के अंत तक व्याकरण और भाषाविज्ञान का अंतर स्पष्ट नहीं हो पाया था इसलिए विद्वान इसे तुलनात्मक व्याकरण या कम्पैरेटिव ग्रामर (Comparative Grammar) कहते थे। फ्रान्स में इस विज्ञान का नाम 'लिंग्विस्टिक' (Linguistique) पडा। Lingustique, या Linguistic केवल भाषाओं की जानकारी के अर्थ में प्रयुक्त किए जा सकते हैं मगर भाषा विज्ञान इतना सीमित नहीं है, बहुत विस्तृत है। उसमें तुलनात्मक अध्ययन की अपेक्षा अनिवार्य है। 'एफ. जी. टकर ने अपनी पुस्तक 'Introduction to Natural History' में भाषाविज्ञान की व्यापकता देखकर इसका नाम Glottology या Science of Tongue रखा है।''[3] (गौतम डॉ. मनमोहन : 1965) किन्तु यह नाम सटीक और सर्वसमावेशक न लगने से अंत में 'फिलालॉजी ही स्वीकृत हुआ। भाषाविज्ञान और फिलोलॉजी दोनों शब्द संस्कृत वाङ्मय से प्रयुक्त होते आए हैं। अर्थात दोनों नाम उचित लगते हैं जो दोनों संस्कृति से आए हुए हैं।

वर्तमान समय में भाषाविज्ञान, तुलनात्मक भाषाविज्ञान, भाषाशास्त्र भाषाविचार, भाषालोचन और भाषिकी आदि नाम भी प्राप्त होते हैं किंतु इनमें भाषाविज्ञान नाम सर्वाधिक प्रचलित शब्द है जो 'लिंग्विस्टिक्स' का समानार्थी या पर्यायवाची बना हुआ है। भाषाविज्ञान शब्द सहज और सरल है जिससे स्पष्ट होता है भाषा का विज्ञान, जो वैज्ञानिक अध्ययन का भाव प्रकट करता है।

इस तरह भाषाविज्ञान भाषा सम्बन्धी जिज्ञासाओं की तृप्ति करा देने का प्रयास करता है। उसके भिन्न-भिन्न नामों में जो अर्थ छिपे हैं उसके बारे में कहा जा सकता है कि जिस भाषा से मनुष्य का सम्बन्ध दिन-रात रहता है उसका सांगोपांग परिचय भाषाविज्ञान देता है भाषा क्या है? उसके अंग क्या है? ध्वनियाँ कैसे निसृत होती है? उनका उच्चारण, एक से दूसरी ध्वनि का भेद क्यों हो जाता है? एक भाषा की ध्वनियों में विभिन्न कालों में भेद क्यों हो जाते हैं। भाषा के स्थान भेद से अनेक रूप क्यों बनते हैं? संसार की भाषाओं के स्त्रोत एक है या अनेक इन सभी प्रश्नों के उत्तर भाषाविज्ञान ही दे सकता है।

भाषाविज्ञान में जो 'विज्ञान' शब्द आया है उसके बारे में ऊपर कहा जा चुका है कि भाषा के बारे में विशिष्ट ज्ञान भाषाविज्ञान उस अर्थ में रसायन, भौतिक या गणित की तुलना में विज्ञान नहीं है। इन विज्ञानों में दिया जानेवाला ज्ञान सत्य, चिरंतन अर्थात 'True Knowldge' है। science के पर्यायवाची के रूप में 'विज्ञान' शब्द का प्रयोग किया है भाषाविज्ञान, गणित, भौतिक की तरह सत्य चिरंतन ज्ञान नहीं दे सकता, मगर तर्क एवं विश्लेषण के आधार पर प्राप्त विशिष्ट ज्ञान दे देता है। जिस तरह राजनीतिविज्ञान, समाजविज्ञान, मानवविज्ञान उसी तरह भाषाविज्ञान शब्द है। आज भाषाविज्ञान में प्रयोग के आधार पर सिद्धांत भी दिए जा रहे हैं।

भाषाविज्ञान किसी विशिष्ट विषय का (भाषा से संबंधित) वह समस्त ज्ञान जो ठीक क्रम से संकलित करके रखता है, वह ज्ञान उस विषय के अध्येता के लिए उपयोगी साबित होता है। भाषाविज्ञान के नामकरण में भाषाविज्ञान के लिए आए भिन्न भिन्न नाम इस विषय की पुष्टि करते हैं कि जो अनुचित है ऐसा नहीं है। अलग-अलग विचारक अपनी-अपनी दृष्टि से विषय सामग्री को देखकर विचार प्रस्तुत करते है। इसी के आधारपर उसे व्याख्यायित करने का प्रयास सामने आता है।

उपर्युक्त विवेचन के आधारपर भाषा सम्बन्धी व्यवस्थित सूचनाओं का प्रयोग भाषाविज्ञान में दिखाई दे सकता है। भारतीय एवं पाश्चात्य भाषावैज्ञानिकों ने इसे शब्दबद्ध किया है उसे देखकर भाषाविज्ञान के स्वरूप में निखार आ सकता है। भाषा की व्यापकता परिवर्तनशीलता, प्राचीनता, तुलनात्मकता, नियम निर्धारणता के आधारपर भाषाविज्ञान की परिभाषा देखी जा सकती है।

भाषाविज्ञान की परिभाषाएँ :

भाषाविज्ञान की परिभाषा में उन बातों का समावेश हो जो भाषा संबंधी सभी प्रश्नों के जवाब दे। ध्वनि, पद, वाक्य और अर्थ आदि जिसमें वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत हो।

संस्कृत परिभाषाएँ :

वैदिक साहित्य में भाषाविज्ञान के बारे में जो बात रखी है उसमें डॉ. समाधान नारायण दास की पुस्तक

'भाषाविज्ञान और हिंदी भाषा' में वैदिक परम्परा से आयी बात की ओर ध्यान आकृष्ठ किया है। ऋग्वेद के वाक्य शब्द को ऋषिमुनियों ने अभिनव रूप प्रदान करते हुए लिखा है -

यावद ब्रह्म विष्ठित वावती वाक्
येना म: पूर्वे पितर: पदज्ञा
अर्चन्तो अड्गिरसो गा आविन्दन्।

वाक्य, शब्द के आधार पर भाषा के विशिष्ट ज्ञान को शब्द संयोजन के माध्यम से महाभाष्यकार ने अपने 'महाभाष्य' ग्रंथ में इस प्रकार कहा है -

एक: शब्द: सम्यग् ज्ञात: शास्त्रान्वित सुप्रयुक्त:
स्वर्गे लोके कामधुग् भवति।

भाषा के वाक्तत्त्व के आधार पर वाक्-तत्त्व को वाक्यपदीयकार ने दिव्य-तत्त्व मानकर उसकी मीमांसा इस प्रकार की है-

''वागूरूपता चेन्निष्कामेदवबोधस्य शाश्वती
न प्रकाश: प्रकाशेत साहि प्रत्यवर्मिशनी''

डॉ. कपिलदेव द्विवेदी ने भाषाविज्ञान के लक्षण के आधार पर कहा है - 'भाषाविज्ञान वह विज्ञान है, जिसमें भाषा का सर्वांगिण विवेचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया जाता है' -

'भाषायायत्तु विज्ञानं, सर्वांड् व्याकृतात्मकम्।
विज्ञान दृष्टिमूल तद् भाषाविज्ञान मुच्चते।'

वस्तुत: ''भाषाया विज्ञानम् - भाषाविज्ञानम्'' अर्थात भाषा के विभिन्न पक्ष विज्ञान सम्मत उपक्रमों में अनुशीलित होते हैं।

आधुनिक भाषाविद्रों में -

डॉ. श्यामसुंदर दास : ''भाषाविज्ञान उस 'शास्त्र' को कहते हैं जिसमें भाषा मात्र के भिन्न अंगों और स्वरूपों का विवेचन तथा निरूपण किया जाता है।''

अर्थात हम भाषाविज्ञान की सहायता से भाषा का वैज्ञानिक विवेचन अध्ययन-अनुशीलन करना सीखते हैं। विज्ञान और शास्त्र एक ही है।

लक्ष्मीकांत पाण्डेय की 'भाषाविज्ञान और हिंदी भाषा' पुस्तक में भाषाविज्ञान की परिभाषाएँ इस प्रकार मिलती है -

डॉ. बाबूराम सक्सेना : ''भाषाविज्ञान का अभिप्राय भाषा का विश्लेषण करके उसका दिग्दर्शन करना है।'' उक्त परिभाषा में भाषाविज्ञान की दृष्टि से दो बातें प्रमुख है - भाषाविज्ञान के अन्तर्गत भाषा का विश्लेषण और

भाषाविज्ञान के द्वारा भाषा का दिग्दर्शन।

डॉ. मंगलदेव शास्त्री : ''भाषाविज्ञान उस विज्ञान को कहते हैं जिसमें सामान्य रूप से मानवीय भाषा का किसी विशेष भाषा की रचना और इतिहास का और अन्तत: भाषाओं या प्रादेशिक भाषाओं या बोलियों के वर्गों की पारस्पारिक समानताओं और विशेषताओं का तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है।'' अर्थात भाषाविज्ञान में मानवीय भाषाओं का इतिहास, बोलियों की समानताएँ, उनकी विशेषताएँ और तुलनात्मकता को प्रधानता दी है।

डॉ. भोलानाथ तिवारी : ''जिस विज्ञान के अन्तर्गत ऐतिहासिक और तुलनात्मक अध्ययन के सहारे (विशिष्ट ही नहीं, अपितु सामान्य) भाषा की उत्पत्ति गठन प्रकृति एवं विकास आदि की सम्यक व्याख्या करते हुए इन सभी के विषय में सिद्धांतो का निर्धारण हो उसे भाषाविज्ञान कहते हैं।'' अर्थात भाषाविज्ञान के अन्तर्गत जिस भाषा का अध्ययन किया जाता है वह जनसाधारण की होती है जनसाधारण से ही वह विशिष्ट वर्ग की बनती हैं। उस भाषा का सर्वांग अध्ययन भाषाविज्ञान का विषय है।

डॉ. हरीश शर्माजी की पुस्तक 'सामान्य भाषाविज्ञान' में प्राप्त भाषाविज्ञान की परिभाषाएँ इसप्रकार है -

''सामान्य भाषाविज्ञान का संबंध मानवीय भाषाओं से हैं। ये मानवीय आचरण और क्षमता के सर्व-स्वीकृत एवं सर्वमान्य अंग तथा सर्वाधिक प्रभावशाली उपलाभ है। अर्थात् भाषाविज्ञान में मानव से संबंधित भाषा का अध्ययन किया जाता है।

''जब भाषाविद् वाणी के सभी समाजगत रूपों का विश्वस्त विवरण प्रस्तुत करता है तब उसे भाषा का व्याकरण अथवा भाषा की व्यवस्था कहते हैं।'' इस परिभाषा से स्पष्ट होता है कि मनुष्य की वाणी से समाजपयोगी भाषा के सभी रूपों को भाषाविज्ञान प्रस्तुत करता है।

डॉ. ईश्वर पवार की 'भाषाविज्ञान सैद्धांतिकी और व्यवहार' पुस्तक में प्राप्त **डॉ. देवेंन्द्रनाथ शर्मा** ने दी हुई परिभाषा- ''भाषाविज्ञान का सीधा अर्थ है भाषा का विज्ञान और विज्ञान का अर्थ है विशिष्ट ज्ञान। इस प्रकार भाषा का विशिष्ट ज्ञान विज्ञान कहलाएगा।''

अर्थात भाषाविज्ञान में भाषा के विशिष्ट ज्ञान का अध्ययन रहता है।

डॉ. देवीशंकर द्विवेदी कहते हैं, ''भाषाविज्ञान को अर्थात भाषा के विज्ञान को भाषिकी कहते है। भाषिकी में भाषा का वैज्ञानिक विवेचन किया जाता है।'' यानी भाषाविज्ञान में भाषा का वैज्ञानिक विवेचन प्रस्तुत किया जाता है।

डॉ. अंबाप्रसाद सुमन : ''भाषाविज्ञान वह विज्ञान है जिसमें भाषाओं का सामान्य रूप से या किसी एक भाषा का विशिष्ट रूप से प्रकृति, संरचना, इतिहास, तुलना, प्रयोग आदि की दृष्टि से सिद्धांत निश्चित करते हुए वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत किया जाता है।''

अर्थात् भाषाविज्ञान में भाषा का विशिष्ट रूप से सिद्धांतों को निश्चित करके वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत करना है।

अत: भाषाविज्ञान के अन्तर्गत जिस भाषा का अध्ययन किया जाता है उसमें भाषा की उत्पत्ति, गठन, विकास, अंगों का विवेचन और विभिन्न सिद्धांतों का प्रतिपादन और निर्धारण किया जाता है।

पाश्चात्य भाषाविदों द्वारा दी गई परिभाषाएँ :

पाश्चात्यों ने भी भाषाविज्ञान पर विस्तृत विवेचन किया है। इन विद्वानोंने अंग्रेजी के 'फिलोलॉजी' (Philology) और 'लिग्विस्टिक्स' (Linguistics) भाषाविज्ञान के दोनों स्वीकृत शब्दों के आधारपर भाषाविज्ञान की परिभाषा बनवाने का प्रयास किया है -

लक्ष्मीकांत पाण्डेय की 'भाषाविज्ञान एवं हिंदी भाषा' पुस्तक में दी गई भाषाविज्ञान की परिभाषाएँ -

ग्लीसन (Gleason) : "Descriptive lingustics, the discipline which studies languages in terms, internal structure."

ग्लीसन के मतानुसार भाषाविज्ञान के अन्तर्गत भाषाओं का विस्तृत भाषावैज्ञानिक अध्ययन करते समय उसकी आंतरिक संरचना को ध्यान में रखना अनिवार्य है।

प्रो. एल. पी. गुणे : "Comparative Philology or Simply Philology is the science of language, Philology Strictly means the study of language from the literary Point of View." प्रो. गुणेजीने भाषा विज्ञान को तुलनात्मक भाषाविज्ञान या केवल भाषाविज्ञान कहा है जिसमें केवल भाषा का अध्ययन रहता है।

ब्रिटेन का विश्वकोष : "The word Philology is here taken as meaning the science of language i. e. the study of the structure and development of languages, thus corresponding to linguistics." इस परिभाषा में भाषाविज्ञान के लिए 'Philology' शब्द प्रयोग प्राप्त होता है। भाषाविज्ञान में भाषाओं का अध्ययन उनकी रचना और विकास का अध्ययन किया जाता है। इसमें Philology और Linguistics दोनों एक ही अर्थ के द्योतक है।

डॉ. नारायणदास समाधिया की पुस्तक 'भाषाविज्ञान और हिंदी भाषा' में **कार्लवासलर** ने भाषाविज्ञान की परिभाषा इस प्रकार दी है - "Linguistics means profound philosophy of language in general as well as in Particular." वासलर के मतानुसार भाषाविज्ञान भाषा का दर्शनशास्त्र (शब्द प्रयुक्त अर्थतत्त्व) पर आधारित है।

ब्लूमफिल्ड : "Linguistic is a science which concerns with the scientific study of language in general as well as in particular." ब्लूमफिल्ड के मतानुसार भाषाविज्ञान वह विज्ञान है, जिसमें भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन सामान्य एवं विशेष रूप से किया जाता है।

ईश्वर पवार की 'भाषाविज्ञान : सैद्धांतिकी और व्यवहार' में दी गई भाषाविज्ञान की परिभाषाएँ -

आस्कर लुइस चावरिया : "The general term lingustics includes in addition to descriptive linguistics historical and comparative study of language." अर्थात वर्णनात्मक भाषाविज्ञान के अतिरिक्त भाषा का ऐतिहासिक एवं तुलनात्मक अध्ययन का समावेश होता है।

आर. एच. रॉबिन्स : "General linguistics may be defind as the science language." अर्थात भाषा के वैज्ञानिक अध्ययन को भाषाविज्ञान कहते हैं।

गरिमा श्रीवास्तव की 'भाषा और भाषाविज्ञान' में **जॉन लायन्स** ने भाषाविज्ञान की परिभाषा इस प्रकार दी हैं-

''भाषा के वैज्ञानिक अध्ययन को भाषाविज्ञान कहा जा सकता है।''

भाषाविज्ञान की विवेचित परिभाषाओं पर समग्रत: विचार करने से स्पष्ट होता है कि, भाषाविज्ञान भाषा-मात्र का एक व्यवस्थित अध्ययन है। वस्तुत: परिभाषाा देना अपने आप में एक दुरूह व्यापार है। फिर भी परिभाषा देना अनिवार्य होता है। क्योंकि परिभाषा के सहारे ही परिभाषित वस्तु को समझना सहज संभव होता है। वैदिक परम्परा और आधुनिक भाषाविदों से पाश्चात्य भाषावैज्ञानिकों के मतों पर हमने विचार किया है। अनेक विद्वानोंने भाषाविज्ञान की परिभाषाएँ दी है। जिसमें भाषा के विविध पक्षों का संकलन किया है। किसी ने भाषा की उत्पत्ति, किसी ने सामान्य भाषा और विशिष्ट भाषा का अध्ययन, किसी ने भाषा के अध्ययन की विधियों को इसके अन्तर्गत रखा है। किसी ने रचना तुलना प्रयोग आदि को महत्त्व दिया है। किसी ने उन तत्थ्यों का संग्रह किया है जिनके द्वारा भाषा का विकास परिवर्तन होता रहता हैं। किंतु इन सब में अहम बात है, उनमें वैज्ञानिक दृष्टिकोन होना। साथ ही सच तो यह है कि इन सभी बातों का पूर्णतया उल्लेख करना असंभव है। सर्वांगिन संग्रह करनेपर भाषाविज्ञान की परिभाषा एक बृहद आकृति हो जाएगी। भाषाविज्ञान की जितनी परिभाषाएँ आयी है वे सारी उन तमाम विद्वानों की अपनी अपनी दृष्टि की परिचायक है। फिर भी कहा जा सकता है, ''भाषाविज्ञान में मानव की भाषाओं का वैज्ञानिक रीति से सम्यक अध्ययन किया जाता है।'' इस तरह भाषाविज्ञान में भाषा की उत्पत्ति, विकास, प्रकृति, संरचना, भाषा के अंग, सिद्धांत निर्धारण आदि का वैज्ञानिक विवेचन तर्क एवं विश्लेषण के आधार पर किया जाता है। भाषाविज्ञान का काम है ध्वनि, शब्द, पदरचना, वाक्यरचना और अर्थ आदि भाषिक इकाइयों से संबंधित नियमों का अध्ययन करना है फिर इसमें कई भाषाओं का अध्ययन विभिन्न सोपानों को लेकर किया जाता है।

भाषाविज्ञान की वैज्ञानिकता :

भाषाविज्ञान को हम विज्ञान कहते हैं क्योंकि ऊपर कहा जा चुका है कि इसमें भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है। भाषाविज्ञान का स्वरूप, परिभाषा के बाद यह सवाल उठता है कि क्या वाकई यह सच है कि भाषाविज्ञान, विज्ञान है? वास्तव में शास्त्र यह बतलाता है कि क्या करनीय है और क्या अकरणीय। 'शास्त्र' और 'विज्ञान' दोनों में अन्तर है। 'विज्ञान' तो विशेष या विशिष्ट है और 'विज्ञान' शब्द का मूल अर्थ 'विशिष्ट ज्ञान' है। वास्तव में आज के युग में विज्ञान की निश्चित धारणा बन चुकी है। विशिष्ट बोधयुक्त व्यवस्थित ज्ञान को विज्ञान के अन्तर्गत रखा जाता है। जिस तरह भौतिकशास्त्र, रसायनशास्त्र आदि एक परिणामी है उसमें तर्काश्रित या तर्क-समर्थित कुछ नहीं होता। भाषाविज्ञान में विचार प्रसूत व्यवस्था होती है। तर्काश्रित व्यवस्था होती है। रसायनशास्त्र या भौतिकशास्त्र की तरह भाषाविज्ञान हमें ज्ञान नहीं दे सकता किंतु भाषा के बारे में भाषाविज्ञान विशिष्ट ज्ञान देता है जो व्यवस्थित और विस्तृत है तो उसमें सिद्धांत निरूपण भी संभव है। विज्ञान में विकल्प नहीं होता और उसके सत्य काफी सीमा तक देशकाल से परे, अर्थात सार्वत्रिक और सार्वकालिक होते हैं। मगर समाजविज्ञान, मानवविज्ञान, तो विज्ञान कहे जाते हैं उसी तरह भाषाविज्ञान विज्ञान है।

विज्ञान के लिए निश्चित किसी वस्तु का होना अनिवार्य होता है। भाषाविज्ञान, भाषा पर आधारित है भाषा का संबंध मानव तथा समाज से है। यदि अध्ययन के विषयों को तीन वर्गों में रखा जाता होगा - 1) प्राकृतिक विज्ञान (Natural Science), जैसे भौतिकी, रसायनशास्त्र आदि, 2) सामाजिक विज्ञान (Social Science) जैसे अर्थशास्त्र, धर्मशास्त्र आदि, 3) मानविकी (Humanities) जैसे साहित्य, संगीत और चित्रकला आदि। इनमें भाषाविज्ञान समाजविज्ञान के निकट आ सकता है। अत: भाषाविज्ञान, सामाजिक विज्ञान में रखा जा सकता है जो विज्ञान अधिकतर तर्क एवं विश्लेषण पर आधारित है।

तर्क और विश्लेषण मनुष्यों के भावों से संबंधित है मनुष्य का संभाषण कल्पित होता है। दो व्यक्तियों के विचार, संभाषण एक जैसे नहीं होते। भाषाविज्ञान विषय की अभिव्यक्ति भाषा के माध्यम से होती है तथा यह भाषा का ही अध्ययन करता है। भाषा का विशिष्ट ज्ञान देनेवाले इस विज्ञान की बातें उतनी अर्थात रसायनशास्त्र की तुलना में वैज्ञानिक नहीं, मगर व्यापक अर्थ से देखा तो यह ज्ञान निश्चित रूप से वैज्ञानिक हैं जो सहज प्राप्त नहीं हो सकता। कला व्यक्ति सापेक्ष होती है उसमें विकल्प की गुंजाइश होती है भाषाविज्ञान में भी तर्क रूपी विकल्प प्राप्त होते है किंतु उसका दायरा सीमित है। भले ही भाषाविज्ञान में HCL हायड्रोक्लोरिक आम्ल या H_2O = पानी जैसे सायन्स के सुत्रों की तरह के सूत्र नहीं होते। किंतु कला की तरह स्थिति भी नहीं है। जिस प्रकार अनेक प्रकार की कलाओं से मनुष्य का मनोरंजन किया जाता है उसमें हास्य रस की निर्मिती की जाती है उसी प्रकार की स्थिति भाषाविज्ञान में नहीं होती। तर्क एवं विश्लेषण के आधारपर हजारों वर्ष पूर्व की भाषा की सत्य स्थिति का प्रयास मात्र रहता है। वह केवल सत्यज्ञान तक पहुँचाने की कोशिश होती है।

भाषाविज्ञान में भाषा की उत्पत्ति के विविध सिद्धांत देखने से स्पष्ट होता है कि भाषा की उत्पत्ति के अन्य कारण इनके अलावा दूसरे हो नहीं सकते। भाषाविज्ञान में आज नए-नए नियम बनाए जा रहे हैं। ग्रीम का नियम, वर्णर का नियम, ध्वनि-नियम, ग्रैसमन नियम, तालव्य नियम आदि। इनके आधारपर भाषाविज्ञान को कला के भीतर रखना न्यायोचित नहीं लगता। वह आज विज्ञान के काफी करीब है ऐसा मानना ही उचित लगता है।

भाषाविज्ञान के स्वरूप के साथ भाषा की वैज्ञानिकता पर जो विचार किया है वह इसलिए कि भाषाविज्ञान के स्वरूप में इसे विज्ञान क्यों कहते है इसपर बात नहीं हुई थी। अगर भाषाविज्ञान को विज्ञान के नाम से संबोधित किया जा रहा है तो यह सवाल उठता है कि विज्ञान की कुछ विशेषताएँ स्पष्ट हो जाए। इसीलिए भाषाविज्ञान के स्वरूप के साथ भाषाविज्ञान की वैज्ञानिकता पर भी प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है।

स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न :

(अ) उचित विकल्प चुनकर वाक्य फिर से लिखिए।

1. 'महाभाष्य' ग्रंथ के ग्रंथकार कौन है?

   अ) वाक्यपदीयकार   ब) ऋषिमुनि

   क) श्यामसुन्दर दास   ड) महाभाष्यकार

2. 'वाक्-तत्त्व' को किसने दिव्य माना है?

अ) वाक्यपदीयकार — ब) महाभाष्यकार

क) समाधान नारायणदास — ड) श्यामसुन्दर दास

3. 'भाषाविज्ञान और हिंदी भाषा' पुस्तक के लेखक है -

अ) डॉ. हरीश शर्मा — ब) समाधान नारायणदास

क) डॉ. रूपाली चौधरी — ड) सुभवंदा पांडेय

4. भाषाविज्ञान की परिभाषा में किस भाषावैज्ञानिक की परिभाषा में 'शास्त्र' शब्द का प्रयोग हुआ है।

अ) बाबूराम सक्सेना — ब) डॉ. मंगलदेव शास्त्री

क) देवेन्द्रनाथ शर्मा — ड) श्यामसुन्दरदास

5. ''भाषाविज्ञान वह विज्ञान है, जिसमें भाषा का सर्वांगिण विवेचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया जाता है।'' भाषाविज्ञान की उक्त परिभाषा के विद्वान कौन है?

अ) डॉ. कपिलदेव द्विवेदी — ब) मनमोहन गौतम

क) भोलानाथ शर्मा — ड) बाबूराम सक्सेना

6. भाषासंबंधी उठनेवाले सवालों के जवाब किस विज्ञान में प्राप्त हो सकते है?

अ) इतिहास — ब) मानवविज्ञान

क) भाषाविज्ञान — ड) ध्वनिविज्ञान

7. 'फिलोलॉजी' (Philology) शब्द के मूल धातु किस भाषा के हैं?

अ) ग्रीक — ब) रोमन

क) रूसी — ड) जापानी

8. भाषाविज्ञान के लिए 'ग्लोटोलॉजी' (Glottology) नाम किसने दिया है?

अ) ग्लीसन — ब) ऑस्कललुईस चापरिया

क) ब्लूम फिल्ड — ड) एफ. जी. टकर

9. ब्रिटेन के विश्वकोश में भाषाविज्ञान के लिए पर्यायवाची के रूप में किस शब्द का प्रयोग मिलता है?

अ) फिलोलॉजी — ब) फिलॉसॉफी

क) वर्डलॉजी — ड) फोनेटिक्स

10. भाषाविज्ञान की परिभाषा में 'शब्द और प्रयुक्त अर्थतत्त्व' को किस भाषावैज्ञानिक ने विशेष महत्त्व दिया है?

अ) ब्लूम फिल्ड — ब) कार्लवासलर

क) ग्लीसन — ड) ब्रिटेन का विश्वकोश

11. ''भाषाविज्ञान का अभिप्राय भाषा का विश्लेषण करके उसका दिग्दर्शन कराना है।'' उक्त भाषाविज्ञान की परिभाषा के भाषावैज्ञानिक कौन है?

अ) देवेन्द्रनाथ शर्मा | ब) भोलानाथ तिवारी
क) उदयनारायण तिवरी | ड) बाबूराम सक्सेना

12. विश्व की भाषाओं का सामूहिक एवं तुलनात्मक अध्ययन विश्लेषण कौन करता है?

अ) समाजविज्ञान | ब) इतिहास
क) मानवविज्ञान | ड) भाषाविज्ञान

13. भाषाविज्ञान के लिए अंग्रेजी में प्रचलित 'लिंगविस्टिक' शब्द के अनुवाद में किस शब्द का प्रयोग नहीं होता?

अ) भाषिकी | ब) भाषालोचन
क) भाषा का सायन्स | ड) भाषाशास्त्र

14. "General linguistics may be difind as the science language" भाषाविज्ञान की इस परिभाषा के विद्वान कौन है?

अ) ब्लूम फिल्ड | ब) आर. एच. रॉबिन्स
क) कार्ल वासलर | ड) गरिमा श्रीवास्तव

15. 'विज्ञान' शब्द का अर्थ है -

अ) शास्त्रीय ज्ञान | ब) सामान्य ज्ञान
क) विशिष्ट ज्ञान | ड) दिव्य ज्ञान

2.2.2 भाषाविज्ञान की प्राचीन तथा आधुनिक भारतीय परम्परा :

भाषाविज्ञान का स्वरूप देखते समय स्पष्ट हो चुका है कि भाषाओं का वैज्ञानिक अध्ययन जिस विज्ञान में किया जाता है वह भाषाविज्ञान है। भाषाविज्ञान में हमने भाषा के स्वरूप से अध्ययन की शुरूआत की थी। भाषा किसे कहते है? उसके लक्षण, रूप वर्गीकरण। यानी मानव प्रकृति में जो जिज्ञासा की भावना अन्तर्निहित है वह प्रत्येक वस्तु के सम्बन्ध में जानना चाहती है। भाषा-सम्बन्ध में विचार करते समय यह ज्ञात हुआ है कि भाषा हमारे जीवन का अभिन्न अंग है। भाषा के सहारे ही हमारी जिज्ञासाओं की तृप्ति होती है। भाषाविज्ञान की परम्परा इस बात की साक्षी है कि बहुत सारे सभ्य और संस्कृत समाजों में भाषा-सम्बन्धी अध्ययन के प्रति लोग आरंभ से ही उन्मुख रहे हैं। भाषा की उत्पत्ति कैसे हुई इस सवाल के जवाब के लिए हमें हजारों वर्षो की यात्रा अनुमान के आधार पर करनी पडी। अर्थात भाषा का अध्ययन, विश्लेषण से करने की परम्परा प्राचीन काल से ही अनेक देशों में होती आयी है। भारत भी उनमें से एक है। भाषा सम्बन्धी मीमांसा के क्षेत्र में भारत की देन अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। भाषावैज्ञानिक अध्ययन भारत, अरब और चीन में युरोप की अपेक्षा बहुत पहले स्वतंत्र रूप से हो गया था।

भाषाविज्ञान के आरम्भ की परम्परा तथा भाषाविज्ञान सम्बन्धी हुए कार्य की शुरूआत भारत में देखते समय भारतीय वाङ्मय का विकास, वेद से अलग होकर देखना असंभव है। भारत में हुए अध्ययन को प्राचीन और आधुनिक दो वर्गों में रखा जा सकता है। प्राचीन अध्ययन का काल वैदिक काल से लेकर 17 वीं सदी तक माना जा सकता है। आधुनिक काल का आरंभ 19 वीं सदी के मध्य से होता है जो आज तक हम देख सकते हैं।

(अ) भाषाविज्ञान की प्राचीन परम्परा :

भारत में प्राचीन काल से अन्य विषयों की भाँति भाषा वैज्ञानिक साहित्य या भाषा-अध्ययन शुरू है। जब हम प्राचीन परम्परा देखने का प्रयास करते हैं तो उसके बीज वैदिक साहित्य में प्राप्त होते हैं। भारत के प्राचीनतम ग्रंथ में वेद का उल्लेख किए बिना आगे नहीं बढ सकते। वेदों में भाषाविज्ञान की मुख्य प्रवृत्तियाँ उपलब्ध होती है। वेद श्रुतिग्रंथ कहे जाते हैं और मौखिक रूप से सदियों तक इनका व्यवहार होता रहा है। ऋषियों ने अपनी भाषा पर बाहरी लोगों का प्रभाव न पडे, उसपर बाह्य प्रभाव न हो इसलिए वेदों को सुरक्षित रखने का प्रयास उनसे होता रहा। इसके लिए सर्वप्रथम वेद के मूलमंत्र एकत्रित करके संहिता के रूप में संचित किए। उन संहिताओं के शब्द अलग-अलग करके उनके पद-पाठ बनाए गए। जिससे मंत्रों के शब्दों के रूपों को समझना और उन्हें रटना आसान हो गया। उसमें एक बात की ओर विशेष ध्यान दिया गया था किस वर्ण का उच्चारण किस पद्धति से हो। बोलने और पढ़ने के ढ़ंग से शिक्षा के अन्तर्गत विस्तार से समझाया जाता था। इन ऋषि-मुनियों ने वेद पाठ के जो पृथक-पृथक पद्धतियाँ विकसित की उन्हें 'प्रातिशाख्य' कहा गया है।[3] (गौतम डॉ. मनमोहन : 1965)। साथ ही वाक्य में बिठाए जानेवाले शब्दों का ध्यान व्याकरण में रखना पडता है। शब्दों के अर्थपर विचार करके वेदों में शब्दों के प्रकार और अर्थ आदि पर विचार किया गया है। अर्थ कितने है इसके बारे में 'निरूक्त' में कहा गया है। 'निरूक्त' वेदों के छ: अंगों में से एक है। शिक्षा, निरूक्त और व्याकरण यह भाषाविज्ञान के निकट के सम्बन्धी है। (छ: वेदागों शिक्षा, कला, निरूक्त, व्याकरण, छन्द ज्योतिष)

भाषाविज्ञान सम्बन्धी प्राप्त किताबों में प्राचीन भारतीय परम्पर सम्बन्धी प्राप्त सामग्री वेदों से प्राप्त होती है मगर कालक्रम की दृष्टि से यदि देखा तो जिससे परम्परा प्राप्त होती उससे परम्परा पर विचार करना आवश्यक है। 'कृष्ण-यजुर्वेद संहिता में देवों ने इंद्र से कहा है कि हम लोगों के कथन को टुकडो में कर दीजिए।'[4] अत: वे जानते थे वाक्य के खंड हो सकते है, सर्वप्रथम कार्य ब्राह्मणों से हो गया। (तिवारी भोलानाथ : 1974)

1) ब्राह्मण और आरण्यक ग्रंथ :

भाषा अध्ययन का सर्वप्रथम प्रमाण ब्राह्मण ग्रंथों में प्राप्त होता है। इन ग्रंथों को संहिताओं के बाद की रचना माना जाता है। इसमें भाषा के खण्डात्मक रूप का विश्लेषण मिलता है। जो अनुमान पर आधारित है। इसकी अशुद्धता इस उदाहरण से स्पष्ट हो जाती है जैसे 'अपाप' (अप + अप) का खण्ड 'अ + पाप' किया गया है किन्तु विश्वपरम्परा में (भाषा-क्षेत्र) व्याकरण एवं धात्वर्थ तक पहुँचने का यह प्रयम प्रयास ही मानना पडेगा। ऊपर जो उदाहरण देखा उससे स्पष्ट होता है कि 'अपाप' शब्द की व्याख्या में (अ + पाप) सन्धिविच्छेद से शब्द का अर्थ है पाप रहीत जो अशुद्ध है। वस्तुत: इसका सन्धिविच्छेद (अप + अप) जिसका अर्थ जलमय होता है। इस प्रकार

भ्रामक या अनुमान पर आधारित विवेचन ब्राह्मण ग्रंथों में मिलता है वास्तव में इन ग्रंथों का प्रधान लक्ष्य ध्वनि या अर्थ पर नहीं था। कहीं-कहीं अनुषंगिक रूप से इस ओर ध्यान चला गया है। इस दृष्टि से 'ऐतरेय ब्राह्मण' उल्लेखनीय ग्रंथ है किन्तु आरण्यकों में ब्राह्मण की तुलना में अध्ययन की अधिक सामग्री प्राप्त होती है।

2) पदपाठ :

ब्राह्मण ग्रंथो से भाषा के वैज्ञानिक अध्ययन का अग्रिमचरण 'पदपाठ' माना जा सकता है। पदपाठ में वैदिक (वेदों) संहिताओं को पद रूप में दिया गया है। इसमें संधि और समासों के आधारपर वाक्य के शब्दों को पृथक-पृथक किया गया है। संधि और समासों की प्रकृति का ज्ञान हो इसलिए स्वराघात के नियमों से परिचित होना आवश्यक है। इसीकारण स्वराघात पर भी विचार किया गया है। प्रमुख पदपाठकारों में साकल्य (शाकल्य) ऋषि ऋग्वेदीय पदपाठ के, गार्ग्य सामवेदीय के तो मध्यान्दिन यजुर्वेदीय के पदपाठकार के रूप में ख्याति प्राप्त कर चुके हैं।

3) प्रातिशाख्य :

'प्रतिशाखा' शब्द से 'प्रातिशाख्य'[5] शब्द बना है। (शर्मा डॉ. देवेन्द्रनाथ : 1972) प्रतिशाख्यों को प्रायोगिक ध्वनिविज्ञान भी कहा जा सकता है। प्रातिशाख्य की रचना शुद्ध पाठ की भावना को दृष्टि में रखकर की गई थी। इसका प्रमुख कारण था वैदिक भाषा और जनभाषा में फासला बढ़ने से वेदपाठ की आवश्यकता और सुरक्षितता। फिर उसका शुद्धता से उच्चारण और परम्परा रूप में गाकर करना अनिवार्य था। ऐसी परिस्थितियों में लोगों को अशुद्धी से बचाना अनिवार्य था। इस प्रकार धार्मिक प्रेरणा से प्रातिशाख्यों के रूप में विश्व का प्राचीनतम-वैज्ञानिक ध्वनि अध्ययन भारत वर्ष में विकसित हुआ। इन ग्रंथों में ऋग्वेद की शाकल-शाखा का ऋक् प्रातिशाख्य, यजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा का तैत्तिरीय-प्रातिशाख्य, वाजसनेय शाखा का कात्यायन रचित वाजसनेय-प्रातिशाख्य, सामवेद की माध्यन्दिन-शाखा का पुष्पमुनि रचित साम प्रातिशाख्य और अथर्ववेद का अथर्व प्रातिशाख्य, या शौनकीय चक्रव्यापी आदि प्रातिशाख्य मिलते हैं। आज तो प्रातिशाख्य मिलते हैं वे सब पाणिनि के बाद के माने जाते हैं। इन प्रातिशाख्यों की कुछ विशेषताएँ हैं -

i) प्रातिशाख्यों में पाठ को सुरक्षित रखने का आग्रह है अत: स्वराघात, मात्रा, काल एवं उच्चारण सम्बन्धी अन्य नियमों का अध्ययन निरूपण है।

ii) इसमें संस्कृत ध्वनियों का प्रौढ़तम वर्गीकरण किया गया है। ज्यों आज लगभग वही प्रचलित है।

iii) इसमें पदों को चार वर्गों (नाम, आख्यात, उपसर्ग, निपात) विभाजित किया गया है।

4) शिक्षा :

वेदागों में से शिक्षा एक अंग है। शिक्षा में सीख दी गई है कि वेदों का अध्ययन या पठन के समय किस तरह बैठे? मुँह किस तरह खोले और उच्चारण कैसे करे? इसी संदर्भ में वर्णों, स्वर-व्यंजन की संख्या मात्रा आदि का सैद्धांतिक विवेचन किया गया है अर्थात वेद पाठ के निर्दिष्ट संकेतों से त्रुटियाँ रहना असंभव होता था। जिससे वक्ता या पाठक में मधुरता, उच्चारण में अक्षरों की स्पष्टता, पदच्छेद, धैर्य और लय का बढ़ना स्वाभाविक था। अत: शिक्षा ग्रंथों में संस्कृत ध्वनियों का पूर्ण तथा वैज्ञानिक विवेचन प्राप्त होता है आज भी उसमें परिवर्तन नहीं किया जा सकता।

5) निघण्टु :

निघण्टु को 'वैदिक कोश' भी कहा जा सकता है। जनसामान्य का वैदिक भाषा से सम्पर्क टूटने पर लोगों को वेदों के अर्थसहित अध्ययन की आवश्यकता महसूस हुई। इसी दृष्टिकोण से लोगों ने वैदिक शब्दों के संग्रह बनाए। इसी कारण इसे विश्व का प्राचीनतम ग्रंथ माना जाता है। यानी वैदिक शब्दकोशों के संग्रह ग्रंथ का नाम निघण्टु पडा। वर्तमान काल में निघण्टु की संख्या न के बराबर है। अप्राप्य है। आज जो निघण्टु उपलब्ध है उसपर ऑर्थर मैकडॉनेल के मतानुसार यास्क का प्रभाव अधिक है। निघण्टु पाँच अध्यायों में उपलब्ध है, प्रथम तीन अध्यायों में 17, 22 तथा 30 खण्ड हैं जिनमें शब्दों का नियोजन पर्याप्त क्रम से किया गया है। इसमें स्पष्ट रूप से शब्दार्थ नहीं दिया गया है। पर्यायों के द्वारा ज्ञान का अहसास होता है। चौथा अध्याय 3 खण्डों का है, जिसमें वेद के दुरूह क्लिष्ट तम शब्द रखे है पाँचवा अध्याय छ: खण्डों में विभाजित है जिसमें वैदिक देवताओं के नाम संग्रहित है।

6) निरूक्त :

'निरुक्त' का अर्थ है व्युत्पत्ति अर्थात यह बताना कि कोई शब्द किन-किन तत्त्वों के मिश्रण से बना है यानी अर्थतत्त्व और रचनातत्त्व का विश्लेषण करना। संस्कृत में निरूक्त की परिभाषा इस प्रकार दी है -

'वर्णगमो वर्णविपर्ययश्च द्वौ चापरौ वर्णविकारनाशौ।
धातोस्तदर्थातिशयेन योगस्तदुच्यते पंचविधं निरूकतम्।।'[6]
(शर्मा देवेन्द्रनाथ : 1972)

अर्थात वर्णागम, वर्णविपर्यय, वर्ण-विकार, वर्णनाश (वर्ण-लोप) और धातु का अर्थविस्तार इस तरह निरूक्त के ये पाँच भेद हैं। निरूक्त की रचना यास्क महोदय ने की है। कुछ विद्वान इस ग्रंथ को यास्क पाणिनि के ऊपरान्त तथा कुछ इन्हें पाणिनि के काल से पूर्व का मानते है। इतना सच है कि यास्क ने भाषा सम्बन्धी विशेष कार्य किया है। इसे अर्थ विचार की दृष्टि से विश्व का प्रथम ग्रंथ मानने में सन्देह करने की जरूरत नहीं है। इसमें निघण्टु के प्रत्येक शब्द का अर्थ दिया है। वेदमन्त्रों के ज्ञान और व्याख्यान के लिए निरुक्त का अनन्यसाधारण महत्त्व है।

निरुक्त के दो खण्ड किए गए हैं। निरुक्त और निघण्टु। यास्क के निरुक्त की कुछ महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ हैं -

i) इसमें अर्थविचार के साथ शब्दों की व्युत्पत्ति और प्रयोगों द्वारा शब्दों को स्पष्ट किया गया है। ii) समाज और इतिहास के चित्रण के साथ शब्दों के इतिहास पर भी दृष्टि डाली गयी है। iii) पूर्वकालिक एवं समकालीन व्याकरणों के नामों के साथ व्याकरण सम्प्रदायों के नाम दिए गए हैं। iv) भाषा के विकास, गठन और उत्पत्ति आदिपर विस्तार से विचार किया गया है। v) शब्दों के नामकरण को लेकर कुछ वैज्ञानिक शंकाएँ की गई है उदा. तृण को लिया जा सकता है 'तृ.' का अर्थ चुभना है। अत: चुभनेवाला होने के कारण 'तृण' को 'तृण' की संज्ञा दी गई है। तो फिर सुई और भाले (बल्लम) को तृण क्यों नहीं कहा गया। इस तरह भाषाविज्ञान के अनेक छोटे-मोटे प्रश्नों पर प्रकाश डालने का प्रयास ही है। vi) शब्दों के श्रेष्ठ होने के कारणों में दो बातें प्राप्त होती है - (क) शब्द का अर्थ इच्छा पर निर्भर न रहकर सिद्ध और स्थिर रहता है। अर्थात वक्ता और श्रोता में एक भावना उत्पन्न करता है। (ख) इसके द्वारा कम परिश्रम में सूक्ष्म अर्थ का बोध करा देता है। vii) विभाषाओं की ओर भी संकेत किया है। viii)

प्रातिशाख्यों के नाम (संज्ञा) आख्यात (क्रिया) उपसर्ग, निपात (अव्यय) आदि का केवल संकेत था यहाँ उसका विस्तृत विवेचन है (पदजातानि नामाख्यातोपसर्ग निपाताश्च) ix) इसमें अर्थ-निरूपण बहुत ही वैज्ञानिक शुद्ध और तर्कपूर्ण है। x) संज्ञा और क्रिया कृदन्त और तद्धित के भेदों का भी स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता अत: अस्पष्टता पायी जाती है।

यास्क का निरुक्त अत्यंत महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है, भले ही वैज्ञानिकता को लेकर मतमतांतर रहे होंगे लेकिन यह ग्रंथ पाणिनि के धातु सिद्धांत के प्रतिपादन का मूल ग्रंथ है। इसमें कुल 1298 व्युत्पत्तियाँ हैं। उनमें से 849 पुराने ढंग की है, 224 वैज्ञानिक और 225 अस्पष्ट है। यह पुराना होने पर भी पूर्णतया अवैज्ञानिक नहीं है।

7) पाणिनि :

प्राचीन भारतीय भाषा वैज्ञानिक के रूप में पाणिनि सर्वश्रुत है। इतिहास एवं विश्व के ऋषि पुरुष महानतम वैयाकरण पाणिनि है। इस बात का स्वीकार पाश्चात्य विद्वान भी आँखे मूँदकर करते हैं। आधुनिक भाषाविज्ञान का पाणिनि का ग्रंथ 'अष्टाध्यायी' है जो सबका स्त्रोत है। यह एक विश्वप्रसिद्ध ग्रंथ है जो आठ अध्यायों में विभाजित है। प्रत्येक अध्याय में चार पाद है और प्रत्येक पाद में अनेक सूत्र हैं कुल सूत्र संख्या चार हजार है। पूरी पुस्तक 14 सुत्रों '(अइउण्, ऋलृक्, एओङ्, एऔच, हयवरट्, लणत्रमङणम्, झभज, धढ़भष, जबगड़दश्, खफछठथचटतव, कपय् शषसर्, हल्) जिन्हें 'माहेश्वर' सूत्र भी कहा हैं।'[6] (तिवारी भोलानाथ : 1974)

भाषा संस्कार के सुविख्यात वैयाकरण पाणिनि है। इनके काल को लेकर विवाद है। स्थान के सम्बन्ध में एक मत है तक्षशिला के पास शलातुर ग्राम। उनके दो नाम प्राप्त होते हैं शालातुरीय और दाक्षीपुत्र । और वासुदेव शरण अग्रवाल अपने गहरे अध्ययन के बल पर पाणिनि को 5 वीं सदी ई. पूर्व के मध्यभाग का मानते है। अर्थात पाणिनि का काल, नाम, जाति गाँव विवादास्पद है किन्तु 'अष्टाध्यायी' ग्रंथ भाषाविज्ञान का मूल स्त्रोत है।

अष्टाध्यायी की कुछ मुख्य विशेषताएँ हैं जो इस प्रकार -

i) अष्टाध्यायी में प्राप्त 'सूत्रपद्धत्ति' के कारण व्याकरण जैसा नीरस और शुष्कविषय सरस बना हुआ है जो बिल्कुल संक्षेप में है।

ii) एकाक्षर धातुओं के सहारे असंख्य शब्दों को गढने का प्रयास किया गया है।

iii) ध्वनिविज्ञान पर दृष्टि डालकर ही इसमें प्रयत्न, स्थान तथा ध्वनियों का वर्गीकरण किया गया है जो आजतक स्वीकृत है।

iv) अष्टाध्यायी के अनुसार भाषा का प्रधान अंग वाक्य है शब्द नहीं।

v) यास्क के नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात जैसे शब्द भेदों को घटाकर पाणिनि ने दो कर दिए- सुबन्त और तिङन्त। सुबन्त में संज्ञा, सर्वनाम। विशेषण, संख्यावाचक अव्यय है तो तिङन्त में क्रिया आदि। यह विभाजन संयुक्ति और वैज्ञानिक है।

vi) इसमें ध्वनियों का वर्गीकरण ध्वनिविज्ञान की दृष्टि से सर्वथा वैज्ञानिक है।

vii) लौकिक और वैदिक संस्कृत का तुलनात्मक अध्ययन इसकी बहुत बडी विशेषता है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि पाणिनि का अध्ययन आज की वैज्ञानिक कसौटि पर खरा न उतरे किंतु उनका विश्लेषण एक आश्चर्य की वस्तु है। उनके अभाव में व्याकरण या भाषाविज्ञान का विमर्श निरर्थक है। पाणिनि के अन्य ग्रंथों में 'धातुपाठ', 'गणपाठ', 'उणादिसूत्र' आदि है। धातुपाठ में धातुओं की सूची है इसमें संस्कृत के सभी शब्दों को धातुओं पर आधारित माना है। गणपाठ में यह बतलाने का प्रयास किया गया है कि गण में आयी धातुओं के रूप एकही प्रकार से चलते हैं।

8) कात्यायन :

पाणिनि से लगभग तीन शताब्दी पश्चात के कात्यायन माने जाते हैं। पतंजलि इन्हें दक्षिण के ऐन्द्र सम्प्रदाय के आधारपर दक्षिण निवासी मानते है। समय परिवर्तन के साथ भाषा में भी परिवर्तन आया था, ऐसे काल में अष्टाध्यायी ग्रंथ लोगों के लिए कठिन प्रतीत होने लगा था। जब अष्टाध्यायी की सूत्र पद्धति का विवेचन आवश्यक लगता था तब कात्यायन ने अपने 'वार्तिक' की रचना की थी। इसमें पाणिनि के 1500 सूत्रों को सरल बनाने के साथ पाणिनि के पारिभाषिक शब्दों में भी परिवर्तन कर दिया है।

भाषाविज्ञान के इतिहास में 'वार्तिक' का अध्ययन बड़ा महत्त्वपूर्ण माना जाता है। कात्यायन ने अपनी सूत्र शैली के माध्यम से 'वार्तिक' को 'अष्टाध्यायी' से बहुत सरल बनाया है जो बिल्कुल स्तुत्य है।

9) पातंजलि :

पातंजलि या पतंजलि का समय 150 ई. पूर्व माना जाता है। इन्होंने अष्टाध्यायी की भाँति 'महाभाष्य' की रचना की। इसमें भी आठ अध्याय है, इसके प्रत्येक अध्याय में चार पाद है जो कुछ अहि कों में बँटे हुए है। पतंजलि को पाणिनि के समर्थक माना जाता है। उन्होंने कात्यायन द्वारा पाणिनि के अष्टाध्ययी को समझने की जो भूले हुई थी, अत एव 'महाभाष्य' में कात्यायन की आलोचनाओं का सम्यक उत्तर देने का प्रयास किया गया है। पतंजलि ने अपने नियमों को इष्टि कहा है। भाषा का सुन्दर विवेचन इसमें किया गया है। ध्वनि और अर्थ का सम्बन्ध, वाक्य भेद, शब्द और ध्वनि आदि की वैज्ञानिक परिभाषाएँ प्रस्तुत की गई है। इस तरह अष्टाध्यायी की व्याख्या का यह ग्रंथ भाषा से सम्बद्ध मौलिक है।

संक्षेप में पाणिनि, कात्यायण और पतंजली को संस्कृत व्याकरण के 'मुनित्रय' की संज्ञा दी जाती है। इन्हीं आचार्यों के सतत प्रयास से संस्कृत व्याकरण, संसार में श्रेष्ठस्थान प्राप्त कर चुका है। इस व्याकरण के आधारपर ही बाद के व्याकरणकार ख्याति प्राप्त कर चुके हैं।

10) पाणिनि शाखा और अन्य वैयाकरण :

व्याकरण के मुनित्रय (पाणिनि, कात्यायन और पतंजलि) इस शाखा के प्रधान आचार्य रहे हैं। तीनों में मौलिकता का अंश पर्याप्त था। पर इनके पश्चात इतने प्रतिभावान विद्वान न हो सके। जिन्होंने लिखा उन्होंने अधिकतर टीकाएँ लिखी। उनका इस परम्परा में महत्त्व माना जा सकता है।

(अ) 7 वीं सदी पूर्वार्द्ध के जयादित्य तथा वामन ने लिखी टीका 'काशिका' नाम से प्रसिद्ध है। इसमें आठ अध्याय हैं। प्रथम पाँच जयादत्त विरचित है और शेष तीन वामनद्वारा लिखे गए हैं। पाणिनि के सुत्रों को बड़ी

सुबोधता से समझाया गया है। इसके प्राचीन वैयाकरणों के उदाहरण अपना ऐतिहासिक महत्त्व रखते हैं। 8 वीं सदी पूर्वार्द्ध के जिनेन्द्र बुद्धि इस बौद्ध ने 'काशिका' पर ही टीका लिखी। जिसका नाम 'काशिक न्यास' है इसे 'काशिक-विवरण- पंजिका' भी कहते हैं। इसमें 'वार्तिक सिद्ध' शब्दों को सूत्रबद्ध किया है। 9 वीं सदी के भर्तृहरि माने जाते है। इनकी रचना 'वाक्यपदीयम्' में व्याकरण के दर्शन पक्ष का सुन्दर विवेचन है। तीन खण्डों में विभाजित (आगम या ब्रह्मखंड, वाक्यखंड और प्रकीर्ण या पदखंड) इस पुस्तक में व्याकरणकारों के सम्बन्ध में ऐतिहासिक सामग्री भी मिलती है। 11 वीं सदी के रचनाकार कय्यट कश्मीरी थे। अपने ग्रंथ 'महाभाष्य-प्रदीप' में उनको बहुत सफलता मिली है। इस काल में नागोजी भट्ट अलौकिक व्यक्तित्त्व के थे। इनके व्याकरण विषयक ग्रंथों में 'परिभाषेन्दु-शेखर' तथा 'वैयाकरण-सिद्धांत मंजूषा' विशेष प्रसिद्ध माने जाते हैं। 12 वीं सदी के हरदत्त का ग्रंथ 'पदमंजरी' में जयादित्य तथा वामन की रचना 'काशिका' की टीका मिलती है। भाषा में होते गए परिवर्तनों के आधारपर अधिकतर टीकाएँ निर्माण होती गई हैं।

(आ) मुस्लिम शासनकाल में देश का वातावरण विदेशीसा बनने पर 'अष्टाध्यायी' को नए क्रम में सुबोध बनाने की आवश्यकता प्रतीत हुई। पूर्वकाल में व्याकरण पर लिखे ग्रंथों को सुबोध बनाना था। इस दृष्टि से कौमुदीकार विशेष महत्त्वपूर्ण माने जाते है। 14 वीं शती के विमल सरस्वती का ग्रंथ 'रूपमाला' 15 वीं सदी के रामचंद्र की 'प्रक्रिया कौमुदी', 17 वीं सदी के भट्टोजि दीक्षित कृत 'सिद्धान्त-कौमुदी', 18 वीं सदी के वरदराज ने 'सिद्धान्त कौमुदी' पर लिखी टीकाएँ विशेष प्रसिद्ध रही हैं।

11) पाणिनितर व्याकरण :

पाणिनि शाखा से भिन्न कुछ वैयाकरण हुए हैं। उनमें चान्द्र शाखा का नाम विशेष रूप से लिया जाता है। इस शाखा के प्रसिद्ध वैयाकरण चन्द्रगोमिन है। इनकी मौलिक और प्रधान देन 35 सूत्रों की है। चंद्रगोमिन ने उणादि, सूत्र, धातुपाठ, गणपाठ आदि भी लिखे। चंद्रगोमिन 5 वीं सदी के बौद्ध थे। इन्होंने पाणिनि के माहेश्वरी के सुत्रों की संख्या घटाकार 13 कर दी। इसी कडी में जैनेंद्र, शाकटायन, कातंत्र, सारस्वत, हेमचंद्र तथा बोपेदेव शाखा की परम्पराएँ थी।

जैनेन्द्र जैनों की शाखा के थे। उनके व्याकरण के दो संस्करण मिलते हैं। प्रथम संस्करण में 3000 सूत्र तो दूसरे में 3700 मिलते हैं।

शाकटायन भी जैनों की शाखा के रहे हैं उनका प्रधान ग्रंथ 'शाकटायन-शब्दानुशासन' है। इसमें चार पादों के चार अध्याय है और लभग 3200 सूत्र हैं।

हेमचंद्र एक जैन साधु थे। इनकी प्रसिद्ध पुस्तक 'शब्दानुशासन' है। इसमें आठ अध्याय 32 पाद और 4500 सूत्र हैं। समय की जनभाषा, महाराष्ट्री, शौरसेनी, मागधी, पैशाची, चूलिका पैशाची, अपभ्रंश (प्राकृतों) का वर्णन बडा सुन्दर किया है।

कातंत्रशाखा 'कातंत्र' का शाब्दिक अर्थ 'संक्षिप्त संस्करण' है। इस शाखा के शर्ववर्मन ने संस्कृत की दृष्टि से विशिष्ट व्याकरण का संक्षिप्त संस्करण तैयार किया था। सारस्वत शाखा 13 वीं सदी से शुरू हुई थी। सरस्वती से अनुभूतिस्वरूप आचार्य टीकाकार हुए। उन्होंने 'सरस्वती-प्रक्रिया' व्याकरण लिखा। बोपदेव शाखा का आरंभ 13

वीं सदी में हुआ। इनकी भाषा सम्बन्धी प्रसिद्ध पुस्तक 'मुग्धबोध' है इसपर टीकाएँ और कौमुदिया बनी। इसकी शैली अत्यंत सरल, सुबोध है जो कातंत्र से मिलती जुलती है। इनके माहेश्वरसूत्र और प्रत्याहार पाणिनि से भिन्न है। बोपदेव ने 'कल्पद्रुम' नामक गण-पाठ और 'काव्य-कामधेनु' नामक धातुपाठ भी लिखे।

12) पाली व्याकरण :

संस्कृत भाषा के वैयाकरणों के बाद पाली के व्याकरणों की रचना की गई। संस्कृत प्रभाव में तीन शाखाओं में विभक्त इनका व्याकरण है 'कच्चायान', 'मोग्गलान' तथा 'अग्गवंस'। प्रत्येक शाखा में व्याकरण तथा उनकी टीकाएँ मिलती है।

13) प्राकृत व्याकरण :

प्राकृत-व्याकरण संस्कृत पर ही आधारित है। संस्कृत नाटकों में प्राकृत का प्रयोग होता रहा। परिणामत: प्राकृत व्याकरणों की आवश्यकता पड़ी। इसकी दो शाखाएँ हैं - प्रतीच्च और प्राच्य। हेमचन्द्र इस शाखा के उल्लेखनीय ग्रंथकार है। उनका 'शब्दानुशासन' उल्लेखनीय ग्रंथ है। प्राच्य शाखा के प्रमुख वैयाकरण वररूचि माने जाते हैं। प्राकृत-प्रकाश इनका 5 वीं सदी का प्राकृत भाषा का प्राचीनतम व्याकरण है। इस काल में 'प्राकृत-सर्वस्व', 'लंकेश्वर', 'प्राकृत कामधेनु' तथा 'प्राकृत संजीवनी' आदि भी उल्लेखनीय ग्रंथ है।

14) व्याकरणेत्तर भाषाविषयक अध्ययन :

भाषाविज्ञान की परम्परा के वैयाकरणिक ग्रंथों के अतिरिक्त कुछ अन्य शास्त्रवाले ग्रंथों से भी भाषा पर प्रभाव पडा है। उन ग्रंथों में 'नैयायिक' साहित्यिक और मीमांसक हैं।

बंगाल के नदिया के तार्किको या नैयायिक ने भाषा के मनोवैज्ञानिक पक्ष की ओर ध्यान देकर अर्थ-विज्ञान' पर प्रकाश डाला है। इस दृष्टि से जगदीश तर्कालंकार का 'शब्द-शक्ति-प्रकाशिका' ग्रंथ उल्लेखनीय है।

कुछ साहित्यिकोंने रीति आदि का विवेचन करते हुए भाषा के अर्थ पक्ष पर प्रकाश डाला है। इन्होंने अलंकार एवं शब्द शक्तियों का वर्णन किया है। इस दृष्टि से आनन्दवर्द्धनाचार्य के ध्वन्या लोक, जयदेव का चन्द्रलोक, विश्वनाथ का 'साहित्य दर्पण' तथा मम्मट का 'काव्यप्रकाश' प्रसिद्ध है।

मीमांसकों में भी शब्द-स्वरूप, शब्दार्थ, काव्य तथा वाक्यार्थ आदि पर विचार किया गया है।

संक्षेप में कहा जाए तो भारत में भाषाविज्ञान की अत्यंत प्राचीन परम्परा है। रूप, वाक्य, ध्वनि एवं अर्थ आदि प्रत्येक दृष्टि से भाषा सम्बन्धी कार्य होता रहा है। जिसका केवल ऐतिहासिक महत्त्व ही नहीं बल्कि व्यावहारिक उपयोग भी है। इस भारतीय प्राचीन परम्परा की प्रशंसा विदेशी भी मुक्त कंठ से करते हैं। इस प्रकार कहा जा सकता है कि निसंक्कोच भारतीय लोगों की भाषिक परम्परा आदर्श है।

(आ) भाषाविज्ञान की आधुनिक भारतीय परम्परा :

भाषाविज्ञान की प्राचीन भारतीय परम्परा में हमने देखा प्रातिशाख्य शिक्षा ग्रंथ, पाणिनि, पतंजलि आदि के साथ अन्य शाखाएँ भी विशेष महत्त्वपूर्ण रही है। भारत में भाषाविज्ञान का आधुनिक रूप पाश्चात्य प्रभाव से आरंभ

हुआ है। अन्य ज्ञानविज्ञान के क्षेत्रों की तरह भाषाविज्ञान का क्षेत्र भी उनसे अधूरा नहीं रहा। पाश्चात्यों के आदर्श पर आधुनिक युग में भारतीय चलते रहे हैं। उन्नीसवी और बीसवी शताब्दी में जो काम इस देश में हुआ वह गुण की अपेक्षा मात्रा की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। यह कार्य भारत की सभी भाषाओं में प्राप्त होता है। आधुनिक भारतीय परम्परा में कई भाषावैज्ञानिकों ने इसको बढ़ावा देने का काम किया है, जो इस प्रकार बताया जा सकता है -

1) डॉ. रामकृष्ण गोपाल भण्डारकर :

आधुनिक युग के भाषाविदों में डॉ. भण्डारकर का नाम सबसे पहले आता है। आर्यभाषाओं पर पर्याप्त काम करनेवालों में भण्डारकर शीर्षस्थ है। 1877 ई. में आर्यभाषाओं पर ही इन्होंने मुंबई विश्वविद्यालय में जो सात व्याख्यान दिए थे जिनका 1914 ई. में पुस्तक रूप में प्रकाशन हुआ था। उन्होंने इस पुस्तक में प्राचीन तथा मध्ययमुगीन भारतीय आर्यभाषाओं पर कार्य करके भाषाविज्ञान की परम्परा के प्रणेता का सूत्रपात किया था। वे युरोपिय भाषाविज्ञान के पर्याप्त जानकार थे। संस्कृत के प्रौढ विद्वान थे। उन्होंने भाषा और भाषाविज्ञान से संबंधित नई दृष्टि से किया हुआ कार्य ऐतिहासिक महत्त्व का है।

2) डॉ. सुनीतिकुमार चटर्जी :

भाषाविज्ञान की आधुनिक परम्परा को संजीवनी देनेवालों में डॉ. चटर्जी का नाम सामने आता है। आर्य भाषाओं का काम करते समय 1921 ई. में उनका शोध प्रबन्ध 'बंगला का उद्‌भव और विकास' नाम से प्रकाशित हुआ। इसे भारतीय भाषाओं का प्रामाणिक ग्रंथ माना जा सकता है, जो 'विश्वकोश' के नाम से प्रसिद्‌ध है। चॅटर्जी एशिया महाद्‌वीप के सबसे बडे भाषाविद्‌वान माने जाते हैं।

3) डॉ. बाबूराम सक्सेना :

आधुनिक भारतीय भाषावैज्ञानिकों में डॉ. सक्सेना का नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है। इनका अवधी बोली को केंद्र में रखकर लिखा शोध-प्रबन्ध 'अवधी का विकास' (1938 ई.) भाषा विज्ञान की परम्परा में हिन्दी की प्रमुख बोली का वैज्ञानिक विवेचन करनेवाला सर्वप्रथम ग्रंथ साबित हुआ है। इसमें आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं की ध्वनियों का ध्वनिविज्ञान की दृष्टि से विवेचन किया गया है।

4) डॉ. धीरेन्द्र वर्मा :

डॉ. वर्माजी ने पेरिस विश्वविद्यालय से डी.लिट की उपाधि पायी थी। अत: इनका फ्रांसीसी भाषापर जबरदस्त अधिकार था। इनका 1957 ई. में प्रकाशित फ्रांसीसी भाषा में लिखा शोध प्रबन्ध 'ब्रजभाषा' भाषाविज्ञान की परम्परा का महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है। इसके अतिरिक्त इनकी भाषा से सम्बन्धित और दो पुस्तकें है - 1) हिंदी भाषा का इतिहास, 2) ब्रजभाषा व्याकरण। दोनों महत्त्वपूर्ण है।

5) गौरीशंकर हीराशंकर ओझा (1863 - 1975 ई.) **:**

ओझाजीने भाषा शास्त्रीय दृष्टि से पुस्तकों का लेखन किया है। इतिहास, पुरातत्त्व प्राचीन लिपी तथा उसकी बनावट का पूर्ण विवेचन उन्होंने अपने ग्रंथों में किया है। उनकी लिपी-विषयक महत्त्वपूर्ण पुस्तके हैं - प्राचीन लिपिमाला, भारतीय प्राचीन लिपिमाला, अशोक की धर्मलिपियाँ आदि। उनका 'प्राचीन लिपिमाला' अंतर्राष्ट्रीय

ख्याति प्राप्त ग्रंथ है जिनमें तेलगु, कन्नड, कलिंग, तमील आदि लिपियों की उत्पत्ति और उनका क्रमिक विकास दिखाया गया है।

6) कामताप्रसाद गुरू (1875 - 1947 ई.) **:**

गुरुजी मूलत: संस्कृत के विद्वान थे किंतु गुरुजीने हिंदी भाषा पर अधिक कार्य किया है। आपका प्रसिद्ध ग्रंथ 'हिंदी व्याकरण' है। जिसमें हिंदी भाषा का अत्यंत विस्तार से विश्लेषण किया गया है, इसके साथ ही उनकी कृति 'भाषा वाक्य-पृथकरण' भी काफी प्रसिद्ध है। गुरुजी की तरह हिंदी भाषा का इतनी गहराई के साथ आज तक किसी से चिंतन नहीं हो सका है।

7) डॉ. भोलानाथ तिवारी (1923-1989 ई) **:**

डॉ. भोलानाथ तिवारी ने बहुआयामी संघर्ष की अनवरत यात्रा करते-करते हिंदी के शब्दकोशीय और भाषा वैज्ञानिक आयाम को समृद्ध और संपूर्ण करने का बहुत बडा काम किया है। गुरूवर्य धीरेन्द्र वर्मा की प्रेरणा से सामान्य भाषाविज्ञान, व्यावहारिक भाषाविज्ञन, कोश और भाषाविज्ञान का इतिहास आदि दिशाओं में तिवारी जी का कार्य अपनी विशिष्ट पहचान रखता है। **(क) सामान्य भाषाविज्ञान में -** 1) भाषाविज्ञान, 2) शब्दों का जीवन, 3) शब्दों का अध्ययन, 4) भाषाविज्ञान, 5) तुलनात्मक भाषाविज्ञान (अनुवाद), 6) आधुनिक भाषाविज्ञान, 7) शब्दों की कहानी, 8) शब्दविज्ञान, 9) व्यतिरेकी भाषाविज्ञान (संपादित), 10) अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान (संपादित), **(ख) व्यावहारिक भाषाविज्ञान में -** 1) हिन्दी भाषा, 2) ताजुज्बेकी, 3) अनुवाद विज्ञान, 4) अभिव्यक्तिविज्ञान (अनुवाद), 5) हिन्दी ध्वनियाँ और उनका उच्चारण, 6) पारिभाषिक शब्दावली : कुछ समस्याएँ (सम्पादित), 7) काव्यानुवाद की समस्याएँ (सम्पादित), 8) कार्यालयी अनुवाद की समस्याएँ (सम्पादित), 9) पत्रकारिता के अनुवाद की कुछ समस्याएँ, 10) भारतीय भाषाओं से हिन्दी में अनुवाद की समस्याएँ, 11) शैलीविज्ञान, 12) व्यावहारिक शैलीविज्ञान, 13) अनुवाद की व्यावहारिक समस्याएँ, 14) कोशविज्ञान, 15) हिन्दी भाषा की संरचना, 16) अच्छी हिन्दी, 17) हिन्दी भाषाशिक्षण, 18) हिन्दी वर्तनी समस्याएँ, 19) राजभाषा हिन्दी, 20) हिन्दी भाषा की सामाजिक भूमिका, 21) हिन्दी भाषा का संक्षिप इतिहास, **(ग) कोश में -** 1) तुलसी शब्दसागर, 2) बालकोश, 3) बृहत पर्यायवाची कोश, 4) हिन्दी मुहावरा कोश, 5) कथाकोश (संकलित), 6) हिन्दी साहित्य की अन्तर्कथाएँ, 7) भाषाविज्ञान कोश, 8) व्यावहारिक हिन्दी अंग्रेजी कोश, 9) व्यावहारिक हिन्दी कोश, 10) ताजुज्बेकी हिन्दी कोश, **(घ) भाषाविज्ञान का इतिहास :** भारतीय भाषाविज्ञान की भूमिका आदि।

आधुनिक भाषावैज्ञानिकों में तिवारी का लेखन और भूमिका मील का पत्थर सी रही है। भाषाविज्ञान के विवेचन में उन्हें भूलना हड्डीहीन शरीर के बराबर है।[7] (तिवारी डॉ. भोलानाथ : 1978)

8) बीसवी शती के अन्य विद्वान :

भाषाविज्ञान की आधुनिक भारतीय परम्परा को अग्रेषित करनेवालों में चंद्रधर शर्मा की 'पुरानी हिंदी', पद्मसिंह शर्मा 'हिंदी उर्दू और हिंदुस्तानी', मोहिउद्दीन कादरी - 'हिन्दुस्तानी फोनेटीक्स', उदयनारायण तिवारी 'भोजपुरी भाषा और साहित्य', 'हिंदी भाषा का अद्भव और विकास', विश्वनाथ प्रसाद 'भोजपुरी का ध्वनि विज्ञान और प्रक्रिया',

हरदेव बाहरी - 'हिंदी का अर्थविज्ञान', सुभद्रा झा - 'मैथिली का उद्‌भव और विकास', किशोरीदास वाजपेयी - 'हिंदी निरुक्त', 'भारतीय भाषाविज्ञान', 'हिंदी शब्दानुशासन'। पुरुषोत्तम मेनारिया - 'राजस्थानी', डॉ. देवेन्द्रनाथ शर्मा - (1918 - 1991 ई.) 'भाषाविज्ञान की भूमिका' (1966 ई.) तीन खण्डों में विभाजित है। 'भाषा, भाषाविज्ञान और लिपि', 'राष्ट्रभाषा हिंदी : समस्याएँ और समाधान', डॉ. मनमोहन गौतम - 'सरल-भाषाविज्ञान' (1965 ई.), डॉ. विजयपाल सिंह - 'भाषा विज्ञान' (1999 ई.), डॉ. हरिश शर्मा - 'सामान्य भाषाविज्ञान' (1972 ई.), डॉ. नारायण दास समाधिया - 'भाषाविज्ञान और हिंदी भाषा' (1985 ई.), डॉ. भारतभूषण चौधरी - 'संरचनात्मक भाषाविज्ञान (1990 ई.), लक्ष्मीकांत पाण्डेय - 'भाषाविज्ञान एवं हिंदी भाषा' (2006 ई.), गरिमा श्रीवास्तव - 'भाषा और भाषाविज्ञान (2006 ई.), राजनारायण मौर्य - 'भाषाविज्ञान के तत्त्व' (1994 ई.), डॉ. हणमंतराव पाटील - 'आधुनिक भाषाविज्ञान' (1991 ई.), डॉ. राजकिशोर सिंह - 'हिंदी भाषा का विकास एवं नागरी लिपि' (1981 ई.), डॉ. गुणानंद जुयाल - 'हिंदी भाषा का उद्‌भव और विकास' (1973 ई.), डॉ. श्यामसुन्दरदास - 'भाषाविज्ञान भाषा रहस्य', तेजपाल चौधरी - 'भाषा और भाषाविज्ञान', कर्णसिंह - 'भाषा विज्ञान' आदि।

इस प्रकार आधुनिक भाषाविज्ञान की परम्परा को हिंदी भाषिकोंने खूब आगे बढाया। इस परम्परा को समृद्ध करनेवालों में और भी नाम गिनाए जा सकते है।

9) भारतीय अन्यभाषिक परम्परा :

भारतीय परम्परा में भारोपीय भाषाओं में संस्कृत, पाली, प्राकृत तथा अपभ्रंश, बंगला, उडिया, असमी, सिन्धी, पंजाबी, कश्मीरी, तथा मराठी, गुजराती, द्रविड आदि। इन सभी भाषाओं में यह परम्परा अक्षुण्ण रही है।

संस्कृत में डॉ. लक्ष्मण स्वरूप, बी. के. राजवादे तथा सिद्‌धेश्वर वर्मा ने यास्क के निरूक्त पर काम किया है। डॉ. कपिलदेव द्विवेदी - 'अर्थ विज्ञान और व्याकरण' सुकूमार सेन, सूर्यकांत शास्त्री और कृष्णघोष ने इस परम्परा को विकसित करने में अपना योगदान दिया है।

संक्षेप में देखा तो भाषावैज्ञानिक परम्परा प्राचीन काल से शुरू है। निरन्तर रूप से भाषा के बारे में लेखन कार्य चल रहा है। भारतीय वाङ्‌मय का विकास वेद काल से माना जा सकता है अर्थात वैदिक काल से सत्रहवी सदी तक और आधुनिक काल उन्निसवीं सदी के मध्य से शुरू है। ब्राह्मण और आरण्यक में अध्ययन की अधिक सामग्री उपलब्ध है। पद्‌पाठ, प्रातिशाख्य, शिक्षा, निघण्टु, निरूक्त, पाणिनि, कात्यायन, पातंजलि, पाणिनि शाखा और अन्य वैयाकरण, पाणिनितर व्याकरण, पाल, प्राकृत व्याकरण और व्याकरणेत्तर भाषाविषयक अध्ययन आदि भाषा की प्राचीन परम्परा की जडे मजबूत करने में समर्थ है। जिससे भाषाविज्ञान की दृष्टि से देखा तो एक लंबी परम्परा ही सामने आती है।

आधुनिक भारतीय परम्परा में रामकृष्ण गोपाल भण्डारकर, सुनीतिकुमार चटर्जी, बाबूराम सक्सेना, धीरेन्द्र वर्मा, डॉ. भोलानाथ तिवारी, गौरीशकर हीराचंद ओझा और कामताप्रसाद गुरू के साथ बीसवी सदी के भाषावैज्ञानिकों ने भाषा और भाषाविज्ञान की परम्परा को अक्षुण्ण रखा है। इस तरह भाषाविज्ञान की आधुनिक और प्राचीन परम्परा दोनों को समृद्ध बनाने का काम हुआ है जो निश्चित ही ठोस और पथप्रदर्शक माना जा सकता है।

स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न :

(ब) उचित विकल्प चुनकर वाक्य फिर से लिखिए।

1. भाषा अध्ययन का प्रथम प्रयास किस ग्रंथ में प्राप्त होता है?

   अ) पद्पाठ ब) प्रातिशाख्य

   क) ब्राह्मण और आरण्यक ग्रंथ ड) निघण्टु

2. किस ग्रंथ में संस्कृत ध्वनियों का पूर्ण तथा वैज्ञानिक विवेचन मिलता है?

   अ) शिक्षा ब) निरूक्त

   क) निघण्टु ड) पदपाठ

3. पाणिनि का कौनसा ग्रंथ है?

   अ) वार्तिक ब) अष्टाध्यायी

   क) महाभाष्य ड) उणादिसूत्र

4. कातंत्र शाखा के भाषावैज्ञानिक कौन है?

   अ) शर्ववर्मन ब) शाकटायन

   क) हेमचंद्र ड) भट्टोजि दीक्षित

5. पाणिनि के 1500 सुत्रों को किसने सरल बनाया है?

   अ) यास्क ब) जिनेन्द्र बुद्धि

   क) कात्यायन ड) वामन

6. जैनों की शाखा के भाषावैज्ञानिक नहीं है -

   अ) जैनेंद्र ब) शाकटायन

   क) हेमचंद्र ड) चंद्रगोमिन

7. चंद्रगोमिन भाषावैज्ञानिक किस शाखा के थे?

   अ) पाणिनि ब) कातंत्र

   क) जैन ड) चान्द्रशाखा

8. कौनसी रचना चंद्रगोमिन की नहीं है?

   अ) शब्दानुशासन ब) उणादिसूत्र

   क) धातुपाठ ड) गणपाठ

9. 'बंगला का उद्भव और विकास' ग्रंथ के रचयिता है -

   अ) रामकृष्ण गोपाल भण्डारकर ब) सुनीतिकुमार चटर्जी

क) धीरेन्द्र वर्मा　　　　　　　　ड) बाबुराम सक्सेना

10. फ्रांसीसी भाषा पर किसका जबरदस्त अधिकार था?
   अ) धीरेन्द्र वर्मा　　　　　　　　ब) भोलानाथ तिवारी
   क) बाबूराम सक्सेना　　　　　　　ड) तेजपाल चौधरी

11. 'भाषा वाक्य-पृथकरण' ग्रंथ के रचयिता है -
   अ) हरदेव बाहरी　　　　　　　　ब) किशोरीदास वाजपेयी
   क) चन्द्रधर शर्मा　　　　　　　　ड) कामताप्रसाद गुरू

12. धीरेन्द्र वर्मा की प्रेरणा से लेखन करनेवाला भाषावैज्ञानिक है -
   अ) भोलनाथ तिवारी　　　　　　　ब) राजनारायण मौर्य
   क) डॉ. राजकिशोर सिंह　　　　　ड) भारतभूषण चौधरी

13. गौरीशंकर हीराचंद ओझा का ग्रंथ नहीं है -
   अ) प्राचीन लिपिमाला　　　　　　ब) अशोक की धर्मलिपियाँ
   क) भारतीय प्राचीन लिपिमाला　　　ड) हिंदी व्याकरण

14. भाषाविज्ञान के लेखन में किस ग्रंथकार की भूमिका मील का पत्थरसी है?
   अ) विजपाल सिंह　　　　　　　　ब) देवेन्द्रनाथ शर्मा
   क) भोलानाथ तिवारी　　　　　　ड) हरिश शर्मा

15. 'हिंदी व्याकरण' ग्रंथ के रचयिता है -
   अ) कामताप्रसाद गुरू　　　　　　ब) हरदेव बाहरी
   क) पुरुषोत्तम मेनारिया　　　　　ड) मोहिउद्दीन कादरी

2.2.3 पाश्चात्य विद्वानों का भारतीय भाषाओं पर कार्य :

भाषाविज्ञान और भाषा संबंधी कार्य की शुरूआत तथा सूत्रपात यूरोपीय विद्वानों द्वारा ही हुई है। ऐसा कहा तो भी अतिशयोक्ति नहीं होगी। वैसे तो पाश्चात्य देशों में भाषाविज्ञान के अध्ययन का सूत्रपात संस्कृत के अध्ययन से हुई है। अत: दोनों का कार्य पूरक माना जा सकता है किंतु यह सच है कि युरोपिय विद्वानों के आदर्शपर आधुनिक भारतीय भाषावैज्ञानिकों ने भी काम किया है। पाश्चात्य भाषावैज्ञानिकों ने भारतीय भाषाओं पर काफी कार्य किया है क्योंकि उन्होंने ही पहली पहल की है। इसी कारण पाश्चात्य विद्वानों ने किए हुए कार्य को देखना या उसका अध्ययन करना हमारा फर्ज बनता है। उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी में यह काम अधिक हुआ है। वह भी भारत की सभी साहित्यिक भाषाओं में हुआ है ऐसा कहना पडेगा। यहाँ हम भाषाविज्ञान या भाषासम्बन्धी कार्य करनेवाले पाश्चात्य विद्वानों पर विचार करेंगे।

1) विशप कॉडवेल (Bishop Caldwell) (1814 - 1881 ई.) **:**

भारतीय भाषाओं पर जिन पाश्चात्य विद्वानोंने कार्य किया है उनमें विशप कॉडवेल का नाम सर्वप्रथम लिया जा सकता है। इस पादरी पंडित ने द्रविड परिवार की भाषाओं के अध्ययन विश्लेषण में अपना पूरा जीवन लगा दिया था । 1846 ई. में इनका 'द्रविड भाषाओं का तुलनात्मक व्याकरण' (Comparative Grammar of the Dravidian Languages) प्रकाशित हुआ था जो बिल्कुल अद्वितीय था। जो बहुत उपयोगी है।

2) जॉन बीम्स (John Beams) :

भारतीय भाषाओं पर विशेष रूप से कार्य करनेवाले जॉन बीम्स मूलत : इंग्लैड निवासी थे। 1857 ई. में इंडियन सिविल सर्विस में आए और बंगाल में नियुक्त हुए। फिर पंजाब, बिहार, उडिसा आदि में कलेकटर तथा मॅजिस्ट्रेट रहे तभी से भारतीय भाषाओं के प्रति इनके मन में रुचि बढ़ गई थी। भारत में आने के लगभग 10 वर्ष बाद इनका पहला ग्रंथ 'ऐन आउटलाइन ऑफ इंडियन फिलॉलोजी' प्रकाशित हुआ। कॉल्डवेल ने लिखे 'द्रविड भाषाओं का व्याकरण' इस ग्रंथ से प्रेरणा लेकर लगभर 14 वर्षों तक कार्य करके उन्होंने अपना ग्रंथ 'ए कम्पैरेटिव ग्रामर ऑफ द मॉडर्न आयर्न लैंग्विजिज ऑफ इंडिया' तीन भागों (भाग 1 - 1872 में, भाग 2 - 1878 तथा भाग 3 - 1879 ई.) में प्रकाशित किया। उनके इस ग्रंथ में भारतीय आर्यभाषाओं का तुलनात्मक विकास सम्बन्धी अधिक जानकारी है। एक हजार से अधिक पृष्ठों के इस ग्रंथ में 121 पृष्ठों की भूमिका है। इसमें हिंदी, मराठी, गुजराती, सिंधी, पंजाबी, उडिया तथा बंगला की ध्वनियों के विवेचन के साथ संज्ञा सर्वनाम, संख्यावाचक विशेषण तथा क्रियारूपों का संस्कृत में तुलनात्मक विकास, ऐतिहासिक दृष्टि को ध्यान में लेकर दिखाया है। अत: भारतीय आर्यभाषाओं के अध्ययन में इनका बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थान माना जाता है।

3) डॉ. ट्रम्प (Dr. E. Trump) :

1872 ई. में इनका 'सिन्धी व्याकरण' (Grammar of the Sindhi Language Compared with the Sanskrit and Prakrit the Cognate Indian Vernaculars) प्रकाशित हुआ था। अत: ट्रम्प संस्कृत, प्राकृत, सिन्धी तथा पश्तों आदि भाषाओं के जानकार थे। इन भाषाओं का उन्होंने गहरा अध्ययन किया था। उनके ग्रंथ में संस्कृत, प्राकृत तथा आधुनिक भारतीय भाषाओं से भी तुलनात्मक सामग्री दी गई है। तत्पश्चात 1873 ई. में इनका दूसरा ग्रंथ 'पश्तो व्याकरण' नाम से प्रकाशित हुआ। इस तरह डॉ. ट्रम्प ने भारतीय भाषाओं में सिन्धी प्राकृत और पश्तों के साथ आधुनिक भारतीय भाषाओं पर तुलनात्मक कार्य किया था।

4) रेल्फ रिले टर्नर (Ralph Turner) :

टर्नर नेपाली भाषाओं के प्रसिद्ध विद्वान माने जाते है। 30-35 वर्षों तक नेपाली का गहरा अध्ययन करके उन्होंने 1931 ई. में 'नेपाली कोश' नाम से अपने ग्रंथ का प्रकाशन किया था। इसमें सभी नेपाली शब्दों की व्युत्पत्ति कैसे हुई है इसके साथ ही आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं के शब्द समूह का ऐतिहासिक तथा तुलनात्मक दृष्टि से विवेचन करने का प्रयास किया गया है। साथ ही कहीं-कहीं यूरोपिय भाषा के भी तुलनात्मक शब्द दिए हैं। उन्होंने अपना ग्रंथ 212 भाषाओं के आधार पर लिखा गया है। जिसमें लगभग 200 शब्द मूल भारोपीय भाषा के दिए गए हैं।

इस ग्रंथ के अतिरिक्त मराठी स्वराघात, गुजराती ध्वनि तथा सिंधी पर भी टर्नर महोदय ने कुछ कार्य किया है। 1962 ई. में इनका 'भारतीय आर्यभाषाओं का तुलनात्मक व्युत्पत्ति कोश' प्रकाशित हुआ था। इस तरह नेपाली भाषा के विस्तृत अध्ययन के साथ भारतीय भाषाओं पर किया हुआ इनका कार्य महनीय है।

5) सर जॉर्ज अब्राहम ग्रियर्सन (Sr. G. A. Grierson) (1851 - 1941 ई.) **:**

आयरलैंड निवासी जॉर्ज ग्रियर्सन इंडियन सिविल सर्विस की परीक्षा पास होकर बंगाल में नियुक्त हुए थे। भारतीय भाषाओं पर व्यापकस्तर पर कार्य करनेवाले विद्वानों में ग्रियर्सन का नाम लिए बगैर आगे नहीं बढ सकते। 1873 से 87 ई. तक इन्होंने अपने ('Seven Grammars of the Dialects and Subdialects of the Bhihari Language) 'बिहारी भाषाओं के सात व्याकरण' ग्रंथ का प्रकाशन किया था। इस ग्रंथ के बाद उन्होंने भारत की अन्य भाषाओं, उपभाषाओं, बोलियों तथा उपबोलियों का सर्वेक्षण करके ('Lingustic Survey of India') 'भारतीय भाषाओं का सर्वेक्षण' नाम से ग्रंथ लिखा जो 11 भागों में है। अर्थात यह ग्रंथ 1894 से 1927 ई. तक ग्रियर्सन की 33 वर्षों की साधना का सुफल था। 1927 ई. में इस ग्रंथ का प्रकाशन हुआ था। इसमें सारी भाषाओं पर कार्य हुआ है। इस ग्रंथ में भाषाओं और बोलियों आदि का संक्षिप्त व्याकरण के साथ, नमूने तथा मानचित्र भी दिए गए हैं। ग्रियर्सन ने इस ग्रंथ में अनेक लोगों की सहायता लेकर ही भारतीय भाषाओं और बोलियों की सीमाओं का निर्धारण करने का प्रामाणिक प्रयास किया है। कहीं कहीं अपवादात्मक स्थिति भी नजर आ सकती है। किंतु यह एक प्रथम अच्छा खासा ऐतिहासिक प्रयास था। उनके 200 खोजपूर्ण तथा वैज्ञानिक लेख भी प्रकाशित हुए थे, जिनमें संस्कृत, प्राकृत तथा आधुनिक भाषाओं की लिपियों पर विस्तृत विश्लेषण किया गया है। इनकी भाषाविज्ञान सम्बन्धी अन्य कृतियों का भी प्रकाशन हुआ था जिनमे 'बिहारी का तुलनात्मक कोश', 'पिशाच लैंग्विज' (1906 ई.), 'ए मैन्युअल ऑफ कश्मीरी लैंग्विज' (1911 ई.), 'कश्मीरी कोश' (चार खंडो में, 1916 - 32 ई.) आदि भी उल्लेखनीय ग्रंथ है।

6) केलाग सैमुयल एस. (Rev. S. H. Kellogg) (1839 - 1899 ई.) **:**

केलाग पादरी धर्मप्रचारक थे। धर्मप्रचार हेतु भारत में आए और 1872 ई. तक इलाहाबाद के थियोलाजिकल ट्रेनिंग स्कूल में अध्यापक के रूप में पढ़ाते रहे। वे अमरिका के न्यूयॉर्क के वेस्ट हेम्पटन में जन्मे थे। उनका महत्त्वपूर्ण ग्रंथ 'हिन्दी व्याकरण' (A Grammar of the Hindi Language) है, जिसका प्रकाशन 1976 ई. में हुआ था। उसका द्वितीय संस्करण 1893 ई. में निकला था। इस ग्रंथ में हिंदी का सुव्यवस्थित तथा विस्तृत व्याकरण है जो आज भी सर्वोत्तम है। इसमें लिपि, ध्वनि-व्यवस्था तथा संधि के अतिरिक्त हिन्दी के तत्कालीन रूपों के साथ-साथ मारवाडी, मेवाडी, मेरवाडी, जयपुरी, हाडाती, कुमाऊँनी, गढ़वाली, नेपाली, कन्नौजी, बैसवाड़ी, रीवाड़ी, भोजपुरी, मगही और मैथिली आदि भाषाओं के यथास्थान दिए हैं। इसके साथ ही वाक्य रचना के प्रायोगिक नियम और रूपों की व्युत्पत्ति के विकास पर भी प्रकाश डाला गया है। इनके अतिरिक्त 'लाइट ऑफ एशिया', 'लाइट ऑफ द वर्ल्ड' आदि भी इनके ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं।

7) डॉ. हार्नले (Dr. A. P. Hoernle) :

इनका पूरा नाम आउ गुस्टस फ्रेडरिक रुडल्फ होएर्नले है। राष्ट्रीयता की दृष्टि से देखा तो वे जर्मन के थे किन्तु

उनके पिता यही भारत में जर्मन पादरी थे इसी कारण डॉ. हर्नले का जन्म भारत (सिकंदरा, आगरा) में हुआ था। इनकी शिक्षा विदेश में ही हुई थी। 1865 ई. में जयनारायण मिश्नरी कॉलेज बनारस में प्राध्यापक नियुक्त हुए थे। जब वे रायल एशियाटिक सोसायटी के अध्यक्ष थे तब वे सोसायटी के जर्नल के संपादक भी थे। 1872 - 73 ई. में इनका 100 पृष्ठों का गौडिय भाषा समुदाय से सम्बद्ध प्रथम भाषावैज्ञानिक निबंध प्रकाशित हुआ था। 1880 ई. में 'A Comparative Grammar of the Gaudian Language' नामक उनका ग्रंथ प्रकाशित हुआ था। जिसमें भोजपुरी के विस्तृत व्याकरण के साथ-साथ आधुनिक आर्यभाषाओं की तुलनात्मक सामग्री दी गई है। इसी साल हिन्दी धातुओं पर उनका निबंध भी प्रकाशित हुआ था। जिसमें हिन्दी धातुओं का संग्रह, इतिहास और वर्गीकरण आदि है। इन्होंने ग्रियर्सन के साथ बिहारी भाषाओं का 'तुलनात्मक कोष' तथा बीम्स के साथ 'पृथ्वीराज रासो' के आदि पर्व का संपादन भी किया था। अत: हार्नले ने भोजपुरी, बिहारी, हिन्दी आदि भाषाओं के साथ आधुनिक आर्यभाषाएँ और लिपियों के विकास पर भी काम किया था।

8) जूल ब्लाक (J. Block) :

इनका 'मराठी की बनावट' नामक 1919 ई. में ग्रंथ प्रकाशित हुआ था। जिसमें इन्होंने भारतीय भाषा का वैज्ञानिक इतिहास तथा उसकी बनावट का पूर्ण विवेचन करने का प्रयास किया है। साथ ही इस ग्रंथ में ध्वनि और रूप का विवेचन भी किया है। इसके अलावा इन्होंने द्रविड तथा द्रविडों और आर्यो के पूर्व के भारतीयों की भाषा आदि पर भी काम किया है। इनका 'भारतीय आर्यभाषाएँ' नामक ग्रंथ भी प्रसिद्ध है।

पाश्चात्य भाषावेत्ताओं में इनके अलावा सर विलियम जोन्स जी ने रायल एशियाटिक सोसायटी की नीव डालकर भारतीय भाषाओं के अध्ययन में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया था। हेनरी थामस कोलब्रुक और फ्रीड्रिखवान श्लेगल दोनों संस्कृत के विद्वान थे। संस्कृत के कार्य को आगे बढ़ाने का श्रेय इन्हें ही प्राप्त होता है। पिशेल, याकोबी, अल्फर्ड सी वूलनर आदि का प्राकृत, अपभ्रंश भाषाओं पर का वर्गीकरण तथा व्याकरण विशेष महत्त्वपूर्ण कार्य है। टैसीटोरी ने राजस्थानी भाषा पर कार्य किया है तो आगुस्त श्लाइखर जीने मूल भारोपिय भाषाओं का पुनर्निर्माण करके स्वर-व्यंजन, धातु, रूप रचना पर भी विचार किया है। फ्रेडरिक मैक्समूलर का प्रसिद्ध ग्रंथ 'बाइ ग्राफीज ऑफ दी वर्ड्स एण्ड होम ऑफ दी आर्याज' काफी उल्लेखनीय माना जाता है। इन्होंने सायण भाष्य के साथ ऋग्वेद का संस्करण तैयार करके अर्थविचार, संस्कृत धातुओं और नागरी लिपि पर भी विस्तार से विवेचन किया है। तो फांस बॉप ने 'धातु प्रक्रिया'[7] (श्रीमान डॉ. नेमीचंद : 2008) नामक पुस्तक में भारतीय एवं पाश्चात्य भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन किया है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि भारतीय भाषाओं, उनका व्याकरण, लिपि आदि पर व्याख्याताओं में आधुनिक कालीन पाश्चात्य विद्वानों ने बहुत बड़ा काम किया है। पाश्चात्य विद्वानोंने भारतीय भाषाओंपर जो कार्य किया है वह पूर्ण लगन के साथ किया है। जो काम भाषाविज्ञान पर पश्चिमी और भारतीय विद्वानों से हो रहा है उसकी तुलना में भाषाओं पर कम है किंतु यह बात विशेष उल्लेखनीय है कि पाश्चात्य भाषावेत्ताओं द्वारा भारतीय भाषाओं पर विस्तृत कार्य हुआ है। तुलनात्मक व्याकरण, आर्यभाषाओं का विवेचन, आर्यभाषाओं का इतिहास, कोष आदि के

साथ ब्रज, अवधी, राजस्थानी, भोजपुरी, मराठी, द्रविड, संस्कृत और सिन्धी के साथ हिन्दी पर पाश्चात्य विद्वानों द्वारा जो कार्य हुआ है वह गौरवपूर्ण कार्य है।

2.3 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न :

(क) उचित विकल्प चुनकर वाक्य फिर से लिखिए।

1. 'द्रविड भाषाओं का तुलनात्मक व्याकरण' ग्रंथ के रचयिता कौन है?
   अ) डॉ. ट्रम्प ब) विशप कॉडवेल
   क) पिशेल ड) डॉ. हार्नले

2. नेपाली भाषाओं के प्रसिद्ध विद्वान का नाम बताइए -
   अ) रेल्फ रिले टर्नर ब) जॉन बीम्स
   क) जॉर्ज ग्रियर्सन ड) केलॉग

3. रायल एशियाटिक सोसायटी के अध्यक्ष थे -
   अ) विशप कॉडवेल ब) केलॉग
   क) डॉ. हार्नले ड) डॉ. ट्रम्प

4. जॉर्ज ग्रियर्सन द्वारा लिखा 'भारतीय भाषाओं का सर्वेक्षण ग्रंथ कितने भागों में है?
   अ) दस ब) ग्यारह
   क) बारह ड) तेरह

5. जॉर्ज ग्रियर्सन का ग्रंथ पहचानिए -
   अ) बिहारी का तुलनात्मक कोश ब) द्रविड भाषाओं का तुलनात्मक व्याकरण
   क) धातु प्रक्रिया ड) हिंदी व्याकरण

6. 'धातु प्रक्रिया' ग्रंथ के ग्रंथकार कौन है?
   अ) फ्रेडरिक मैक्समूलर ब) फांस बॉप
   क) टैसीटोरी ड) याकोबी

7. संस्कृत भाषा के विद्वान का नाम पहचानिए -
   अ) टैसीटोरी ब) फांस बॉप
   क) केलॉग ड) हेनरी थॉमर्स

8. जूल ब्लाक की पुस्तक कौनसी है?
   अ) धातु प्रक्रिया ब) कश्मीरी कोश
   क) मराठी की बनावट ड) हिंदी व्याकरण

9. जयनारायण मिशनरी कॉलेज के प्रोफेसर थे -

अ) फ्रेडरिक मैक्समूलर | ब) जूल ब्लाक
क) डॉ. हार्नले | ड) जॉर्ज ग्रियर्सन

10. राजस्थानी भाषा पर कार्य करनेवाला पाश्चात्य भाषावेत्ता कौन है?

अ) टैसीटोरी | ब) आगुस्त स्लायखर
क) पिशेल | ड) याकोबी

11. 'हिन्दी व्याकरण' ग्रंथ के रचयिता है -

अ) डॉ. ट्रम्प | ब) डॉ. हार्नले
क) केलॉग | ड) जूल ब्लॉक

12. 'सिन्धी व्याकरण' ग्रंथ किसने लिखा था?

अ) डॉ. ट्रम्प | ब) फ्रेडरिक मैक्समूलर
क) विशप कॉड़वेल | ड) जॉन बिम्स

13. 'नेपाली कोश' ग्रंथ कितनी भाषाओं के आधार पर है?

अ) 210 | ब) 200
क) 211 | ड) 212

14. भारतीय भाषाओं और बोलियों की सीमाओं के निर्धारण का प्रामाणिक प्रयास करनेवाला भाषावेत्ता है-

अ) जॉर्ज ग्रियर्सन | ब) केलाग
क) डॉ. हार्नले | ड) डॉ. ट्रम्प

15. 'पश्तो व्याकरण' पुस्तक के लेखक है -

अ) डॉ. हॉर्नले | ब) डॉ. ट्रम्प
क) रिले टर्नर | ड) विशप कॉडवेल

2.4 शब्दार्थ, संदर्भ, टिप्पणियाँ :

1) संरचना = मन या किसी सूक्ष्म तत्त्व की बनावट जो किसी भी प्रकार के भाव ग्रहण का माध्यम बनती है।

2) भाषाविद् = भाषा या भाषाओं का अच्छा ज्ञाता।

3) वैदिक = वि. (सं.) वेद-संबंधी; जो वेद के अनुकूल हो वेदविहित पवित्र; वेदज्ञ।

4) प्रातिशाख्य = पु. (सं.) वे ग्रंथविशेष जिनके द्वारा भिन्न-भिन्न वेदों तथा एक ही वेद के अनेक तरह से स्वरों के उच्चारण, पदों के क्रम और विच्छेद आदि का निर्णय होता है।

5) निरूक्त = स्त्री (सं.) जिसका निर्वचन किया गया हो; स्पष्ट रूप से कहा या समझाया हुआ; नियोग करनेवाला; नियोग में किया हुआ।

6) धात्वर्थ = पु. (सं.) धातु (पद या शब्द की प्रकृति) निकलनेवाला अर्थ।

7) आरण्यक = वि. (सं.) वन्य; वन में उत्पन्न। पु. वनवासी; वेदों का एक भाग जिसमें वानप्रस्थों के कृत्यों का विवरण है।

8) वैयाकरण = पु. (सं.) व्याकरण जाननेवाला; व्याकरण शास्त्र की रचना करनेवाला।

9) नैयायिक = पु. (सं.) न्यायशास्त्र का विद्वान।

10) नदिया = पु. बंगाल का एक प्रसिद्ध नगर।

संदर्भ :

1) 'शास्त्र' शब्द आज अपने मूल अर्थ में ही न प्रयुक्त होकर बहुत विस्तृत अर्थ रखने लगा है यदि रसायनशास्त्र, भौतिकशास्त्र आदि में उसका प्रयोग ठीक है तो 'भाषाशास्त्र' में उसके अशुद्ध होने का कारण नहीं दीखता।

2) कातंत्र शाखा - कुछ लोग इसी को ऐन्द्र भी मानते हैं इसका प्रसिद्ध ग्रंथ कातंत्र है।

2.5 सारांश :

भाषाविज्ञान में भाषासंबंधी जिज्ञासाओं की तृप्ति करा देने का काम किया जाता है। यानी भाषा विज्ञान के बारे में कहा जा सकता है कि भाषाविज्ञान के अन्तर्गत भाषा की उत्पत्ति गठन, विकास, अंगों का विवेचन और विभिन्न सिद्धांतों का प्रतिपादन और निर्धारण को विशेष महत्त्व दिया जाता है। इन्हीं अंगों के बगैर भाषाविज्ञान का कोई अस्तित्व नहीं है। जितने भाषा वैज्ञानिकों ने भाषाविज्ञान की जो परिभाषाएँ दी हुई है उनमें अधिकांश विद्वानों ने कम अधिक मात्रा में इन्हीं अंगों का आधार लिया है।

भाषाविज्ञान संबंधी मान्यताएँ वैदिक परम्परा से प्राप्त होती है। भाषा के विशिष्ट ज्ञान को शब्द संयोजन के माध्यम से 'महाभाष्य' ग्रंथ में महाभाष्यकार ने रखा है। उसके बाद भाषाविज्ञान पर भारतीय एवं पाश्चात्य भाषाविदों ने जो बातें रखी उसके साथ भाषाविज्ञान का नामकरण और उसकी वैज्ञानिकता को भी संक्षिप्तता के साथ प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। यानी भाषाविज्ञान की वैज्ञानिकता के संबंध में यदि मन में सवाल उठा तो उसका समाधान हो इसलिए वैज्ञानिकता पर विचार किया है।

भाषा यदि हमारे जीवन का अभिन्न अंग है तो उसके बारे में जानना, समझना हमारा फर्ज बनता है। उसकी उत्पत्ति, शुरूआत, विश्लेषण से करने की परम्परा प्राचीन काल से आज तक अनेक देशों में हो रही है। भारत में भी इसकी परम्परा प्राचीन है। वैदिक काल से भाषाविज्ञान पर विचार होता आया है। ब्राह्मण और आरण्यक ग्रंथों से प्राचीन परम्परा में अध्ययन अनिवार्य है। पदपाठ, प्रातिशाख्य, शिक्षा, निघण्टु, निरूक्त, पाणिनि, कात्यायन, पातंजलि, पाणिनि शाखा और अन्य वैयाकरण, पाणिनितर व्याकरण, पालि प्राकृत और संस्कृत परम्परा पर प्राचीन के भीतर विस्तृत विवेचन किया गया है। तो आधुनिक भारतीय परम्परा में डॉ. रामकृष्ण गोपाल भण्डारकर, सुनीतिकुमार

चटर्जी, बाबूराम सक्सेना, धीरेन्द्र वर्मा, गौरीशंकर हीराशंकर ओझा, कामताप्रसाद गुरू तथा भोलानाथ तिवारी ने इस परम्परा को संजीवनी दी। आधुनिक परम्परा में विस्तृत रूप से भाषाविज्ञान पर विमर्श करनेवालों की एक लंबी परम्परा है।

भारतीय भाषावैज्ञानिक भारतीय भाषा, लिपि, व्याकरण. बोलियाँ आदि पर लिख ही रहे हैं किंतु विशेष उल्लेखनीय बात है यह कि पाश्चात्य विद्वानों ने भी विस्तार से भारतीय भाषाओं पर कार्य किया है। उससे भारतीय भाषाओं संबंधी हमारी ज्ञानवृद्धि होती है। विशप कॉडवेल, जॉन बीम्स, डॉ. ट्रम्प, रिले टर्नर, डॉ. जॉर्ज ग्रियर्सन, केलाग, डॉ. हार्नले तथा जूल ब्लॉक आदि पाश्चात्य विद्वानों ने तुलनात्मक व्याकरण, आर्यभाषओं का विवेचन, इतिहास, कोष और विविध बोलियों पर किया हुआ कार्य निश्चित रूप से लाभदायक सिद्ध होता है।

2.6 स्वयं अध्ययन प्रश्नों के उत्तर :

(अ)

1) ड - महाभाष्यकार
2) अ - वाक्यपदीयकार
3) ब - समाधान नारायणदास
4) क - श्यामसुन्दर दास
5) अ - डॉ. कपिलदेव द्विवेदी
6) क - भाषाविज्ञान
7) अ - ग्रीक
8) ड - एफ. जी. टकर
9) अ - फिलोलॉजी
10) ब - कार्लवासलर
11) ड - बाबूराम सक्सेना
12) ड - भाषाविज्ञान
13) क - भाषा का सायन्स
14) ब - आर. एच. रॉबिन्स
15) क - विशिष्ट ज्ञान

(ब)

1) क - ब्राह्मण और आरण्यक ग्रंथ
2) अ - शिक्षा
3) ब - अष्टाध्यायी
4) अ - शर्ववर्मन
5) क - कात्यायन
6) ड - चंद्रगोमिन
7) ड - चान्द्रशाखा
8) अ - शब्दानुशासन
9) ब - सुनीतिकुमार चटर्जी
10) अ - धीरेन्द्र वर्मा
11) ड - कामताप्रसाद गुरू
12) अ - भोलानाथ तिवारी
13) ड - हिंदी व्याकरण
14) क - भोलानाथ तिवारी
15) अ - कामताप्रसाद गुरू

(क)

1) ब - विशप कॉडवेल
2) अ - रेल्फ रिले टर्नर
3) क - डॉ. हार्नले
4) ब - ग्यारह
5) अ - बिहारी का तुलनात्मक कोश
6) ब - फांस बॉप

7) ड - हेनरी थॉमर्स
8) क - मराठी की बनावट
9) क - डॉ. हार्नले
10) अ - टैसीटोरी
11) क - केलॉग
12) अ - डॉ. ट्रम्प
13) ड - 212
14) अ - जॉर्ज गियर्सन
15) ब - डॉ. ट्रम्प

2.7 स्वाध्याय :

अ) दीर्घोत्तरी प्रश्न :

1) भाषाविज्ञान का स्वरूप बताकर भाषाविज्ञान की परिभाषा दीजिए।
2) भाषाविज्ञान की परिभाषा विशद कीजिए।
3) भाषाविज्ञान की प्राचीन परम्परा विशद कीजिए।
4) पाश्चात्य भाषावैज्ञानिकों का भारतीय भाषाओं पर किए हुए कार्य को स्पष्ट कीजिए।
5) भाषाविज्ञान की आधुनिक भारतीय परम्परा पर प्रकाश डालिए।

आ) टिप्पणियाँ :

1) भाषाविज्ञान का नामकरण।
2) भाषाविज्ञान की भारतीय परिभाषाएँ।
3) भाषाविज्ञान की पाश्चात्य परिभाषाएँ।
4) निरूक्त।
5) पाणिनितर व्याकरण।
6) भाषाविज्ञान की आधुनिक परम्परा में भोलानाथ तिवारी।
7) पाणिनि।
8) जॉर्ज ग्रियर्सन का भारतीय भाषाओंपर कार्य।
9) भारतीय भाषाओं पर केलॉग और डॉ. हार्नले का कार्य।

2.8 क्षेत्रीय कार्य :

1) भाषाविज्ञान के अध्ययन की दिशाओं का अध्ययन कीजिए।
2) भाषाविज्ञान तथा भौतिकशास्त्र, रसायनशास्त्र आदि के अध्ययन पद्धति की तुलना कीजिए।
3) भाषाविज्ञान की आधुनिक परम्परा में व्याकरण पर लिखे ग्रंथों को अलग कीजिए।

2.9 संदर्भग्रंथ सूची :

1) पाण्डेय डॉ. लक्ष्मीकांत : 'भाषाविज्ञान एवं हिंदी भाषा', आशिष प्रकाशन कानपुर, संस्करण 2006, ई. पृ. सं. 34 to 36

2) शर्मा डॉ. हरिश : 'सामान्य भाषाविज्ञान', अमित प्रकाशन, गाजियाबाद, संस्करण 1972, ई. पृ. सं. 02

3) गौतम डॉ. मनमोहन : 'भाषाविज्ञान', हिंदी साहित्य संसार दिल्ली, संस्करण 1965, ई. पृ. सं. 01

4) तिवारी डॉ. भोलानाथ : 'भाषाविज्ञान', किताब महल, दिल्ली, संस्करण 1974, ई. पृ. सं. 505, 515

5) शर्मा डॉ. देवेंद्रनाथ : 'भाषाविज्ञान की भूमिका', राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 1972, ई. पृ. सं. 310-311

6) तिवारी डॉ. भोलानाथ : 'भाषाविज्ञान', लिपि प्रकाशन कृष्णनगर, दिल्ली, संस्करण 1978 ई. भूमिका

7) श्रीमाल डॉ. नेमीचंद : 'भाषाविज्ञान', श्रुति पब्लिकेशन, 50 क-6 ज्योतिनगर, जयपुर, प्र. सं. 2008, ई. पृ. सं. 188

2.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए :

1) डॉ. लक्ष्मीकांत पाण्डेय, डॉ. प्रमिला अवस्थी : 'भाषाविज्ञान एवं हिंदी भाषा'

2) डॉ. रुपाली चौधरी : 'भाषाविज्ञान एवं हिंदी भाषा'

❑❑❑

इकाई : 3

भाषा विज्ञान और सहयोगी शाखाएँ

अनुक्रम-रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 विषय विवरण

3.2.1 भाषा विज्ञान : स्वरूप और परिभाषाएँ

3.2.1.1 भाषा विज्ञान के अध्ययन की दिशाएँ

3.2.2 भाषा विज्ञान : आवश्यकता और महत्त्व

3.2.3 भाषाविज्ञान की सहयोगी शाखाएँ

3.2.3.1 व्याकरण

3.2.3.2 कोशविज्ञान

3.2.3.3 व्युत्पत्तिविज्ञान

3.2.3.4 भाषा भूगोल

3.2.3.5 समाज भाषा विज्ञान

3.2.3.6 उपयोजित भाषा विज्ञान

3.2.3.7 अभिकलनात्मक भाषाविज्ञान

3.3 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न

3.4 शब्दार्थ, संदर्भ, टिप्पणियाँ

3.5 सारांश

3.6 स्वयं अध्ययन प्रश्नों के उत्तर

3.7 स्वाध्याय

3.8 क्षेत्रिय कार्य

3.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

3.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए

3.0 उद्देश्य :

प्रस्तुत इकाई के अध्ययनोपरान्त,

- भाषा और भाषा विज्ञान को समझ सकेंगे।
- भाषा विज्ञान के अध्ययन की दिशाएँ जान सकेंगे।
- भाषा विज्ञान की आवश्यकता और महत्त्व का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- भाषा विज्ञान की सहयोगी शाखाओंसे परिचित होंगे।
- व्याकरण, कोशविज्ञान, व्युत्पत्तिविज्ञान, भाषा भूगोल, समाजभाषा विज्ञान, उपयोजित भाषा विज्ञान, अभिकलनात्मक भाषा विज्ञान का परिचय प्राप्त करेंगे।

3.1 प्रस्तावना :

भाषा विज्ञान जो 'भाषा' और 'विज्ञान' इन दो शब्दों के मेल से बना हुआ है। भाषा से हम सोचते हैं, विचार करते हैं और अपने भाव-भावनाओंको दूसरों के सामने प्रकट करते हैं। मनुष्य सामाजिक प्राणी होने के कारण वह अपने विचार जिस माध्यम से अभिव्यक्त करता है उसे भाषा कहते हैं। 'भाषा' शब्द संस्कृत 'भाष' की धातु से बना है। इसका अर्थ होता है बोलना अर्थात भाषा वह है जिससे बोला जाए। भाषिक व्यवहार में भाषा अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। भाषा का महत्त्व देखकर भाषा-विषयक जिज्ञासाएँ निर्माण होती रही है जैसे-भाषा की व्युत्पत्ति कैसे हुई? भाषा का प्रयोग किस प्रकार किया जाता है? भाषा के अवयव कौन-कौन से हैं? भाषा की उच्चारण विधि कैसी है? इन समस्त प्रश्नों का विचार शताब्दियों से होता रहा हैं।

विज्ञान का अर्थ होता है 'विशिष्ट ज्ञान'। किसी वस्तु की सामान्य जानकारी को हम 'ज्ञान' कहते हैं और उसी वस्तु की समस्त जानकारी हासिल करना 'विशेष ज्ञान' कहलाता है। मानव की व्यवस्थित और विश्लेषणात्मक पद्धति से सोचने की उपलब्धि विज्ञान है। भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन जिस पद्धति से किया जाता है, उसे भाषा विज्ञान कहते हैं। भाषा विज्ञान के लिए अंग्रेजी में 'लिंग्विस्टिक' कहा जाता है। भाषा एक व्यवस्था है और प्रत्येक व्यवस्था का व्यवस्थित क्रम में विश्लेषण विज्ञान का विषय है।

भाषा विज्ञान के नामकरण और प्रचलन के बारे में 'भाषा और भाषा विज्ञान' इस ग्रंथ में तेजपाल चौधरी लिखते

है 'भाषा विज्ञान' शब्द अंग्रेजी Linguistics अंग्रेजी में इस ज्ञानशाखा के लिए 'Comparative Grammar', 'Comparative Philology', 'Glossology', 'Glottology' आदि कई नामों का प्रयोग होता रहा है। परंतु अब Linguistics नाम प्राय: सर्वमान्य हो गया है। Linguistics शब्द की व्युत्पत्ति लैटिन शब्द Lingua से हुई है, जिसका अर्थ है 'जिह्वा'। जिह्वा के पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग कई भाषाओं में 'भाषा' के अर्थ में होता है जैसे संस्कृत में वाक्, फारसी में जबान और अंग्रेजी में Tongue । अत: Linguistics शब्द का प्रयोग 'भाषा विज्ञान' के लिए रूढ होता गया।

प्राचीन भारतीय साहित्य में 'भाषा विज्ञान' शब्द प्रयोग कहीं भी नहीं मिलता। आधुनिक काल में हिंदी के भाषा वैज्ञानिकों ने 'भाषाशास्त्र', 'भाषालोचन' और 'भाषिकी' इत्यादि नामों से पुकारा है। किंतु इन नामों से कोई भी नाम महत्त्वपूर्ण नहीं हो गया। भाषा विज्ञान भाषा के विभिन्न अवयवों और पहलुओं का विवेचन करनेवाली विद्याशाखा है। इसमें भाषाविज्ञान की संरचना, प्रकृति और विकास की विभिन्न स्थितियों का अध्ययन किया जाता है।

3.2 विषय विवरण :

3.2.1 भाषा विज्ञान : स्वरूप और परिभाषाएँ :

भाषा विज्ञान का प्रारंभ आधुनिक युगसे विशेषता 18 वी शती के अंतिम दशक से माना जाता है। भाषा अध्ययन की परंपरा भारत के पहले योरोप में विद्यमान थी। भाषा विज्ञान को विविध नामों से जाना जाता था। भाषा विज्ञान की परिभाषा भारतीय तथा पाश्चात्य भाषावैज्ञानिकोंने करने का प्रयास किया है। हम यहाँपर पाश्चात्य भाषा वैज्ञानिकोंने की हुई परिभाषा देखने का काम करेंगे।

(1) ग्लीसन (Gleason) : "Descriptive linguistics the discipline which studies languages in terms, internal structure."

ग्लीसन ने अपनी परिभाषा में कहा है, ''भाषा विज्ञान के अंतर्गत भाषाओं का 'डिस्क्रिप्टिव लिंग्विस्टिक्स' अध्ययन करते समय इनकी आंतरिक संरचना को ध्यान में रखा जाता है।''

भाषा विज्ञान में भाषाओं का अध्ययन एवं विवेचन करके उनकी आंतरिक रचना साथ ही उसके बाह्य रूप के संगठण को भी ध्यान में रखा जाता है।

(2) ब्लूम फिल्ड : "Linguisties is a science which concerns with the scientific study of language in general as well as in perticular."

भाषा विज्ञान वह विज्ञान है, ''जो भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन सामान्य एवं विशेष रूप से करता है।''

(3) आस्कर लुइस चावरिया : "The general term linguistics includes in addition to descriptive linguistics historical and comparative study of language."

अर्थात भाषा विज्ञान में वर्णनात्मक भाषाविज्ञान के अतिरिक्त भाषा के ऐतिहासिक एवं तुलनात्मक अध्ययन का समावेश होता है।

(4) प्रो. रॉबिन्स : ''सामान्यत: भाषा विज्ञान को भाषा का विज्ञान कहा जाता है।'' इस प्रकार रॉबिन्स ने भाषा विज्ञान की परिभाषा की है।

(5) ब्रिटेन का विश्वकोष : "The world Philology is have, taken as meaning the science of language i. e. the study of the structure and development of languages thus corresponding the linguistics."

उपर्युक्त परिभाषा में भाषा विज्ञान के लिए Philology शब्द का प्रयोग किया गया है। इसको भाषा का विज्ञान कहा गया है, इसके अंतर्गत उपर्युक्त परिभाषा के अनुसार, भाषाओं का अध्ययन उनकी रचना और विकास की दृष्टि से किया जाता है। इस परिभाषा के अनुसार Philology का जो अर्थ है वही अर्थ Linguistics शब्द का है।

भारतीय विद्वानों के अनुसार भाषाविज्ञान की परिभाषाएँ :

(1) डॉ. श्यामसुंदर दास : ''भाषा विज्ञान इस शास्त्र को कहते हैं जिसमें भाषा मात्र के भिन्न-भिन्न अंगों एवं स्वरूपों का विवेचन तथा निरूपण किया जाता है।''

डॉ. श्यामसुंदर दास ने भाषा विज्ञान को एक शास्त्र कहा है। इस प्रकार उनकी दृष्टि में भाषाविज्ञान और शास्त्र में कोई अंतर नहीं है, परंतु भाषाविज्ञान और भाषा दोनों में अर्थ की दृष्टि से पर्याप्त अंतर है। इस परिभाषा से भाषा विज्ञान के क्षेत्र में व्यापकता आ जाती है।

(2) डॉ. बाबूराम सक्सेना : ''भाषा विज्ञान का अभिप्राय भाषा का विश्लेषण करके उसका दिग्दर्शन कराना है।''

इस परिभाषा में दो विशेषताओं की ओर संकेत किया है। एक भाषाविज्ञान के अंतर्गत भाषा का विश्लेषण किया जाता है तो दूसरी ओर भाषाविज्ञान के द्वारा भाषा का दिग्दर्शन भी होता है।

(3) डॉ. मंगलदेव शास्त्री : ''भाषाविज्ञान उस विज्ञान को कहते है जिसमें सामान्य रूप से मानवीय भाषा का किसी विशेष भाषा की रचना और इतिहास और अन्तत: भाषाओं, प्रादेशिक भाषाओं या बोलियों के वर्गों की पारम्परिक समानताओं और विशेषताओं का तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है।''

डॉ. मंगलदेव शास्त्री भाषा विज्ञान के अंतर्गत एक भाषा विशेष के रचनात्मक और ऐतिहासिक अध्ययन और विवेचन को आवश्यक मानते हैं। साथ ही भाषाओं के तुलनात्मक अध्ययन के महत्त्व को भी स्वीकार करते हैं।

(4) डॉ. भोलानाथ तिवारी : ''जिस विज्ञान के अंतर्गत ऐतिहासिक और तुलनात्मक अध्ययन के सहारे भाषा व्युत्पत्ति, गठन, प्रकृति एवं विकास आदि की सम्यक व्याख्या करते हुए इन सभी के विषय में सिद्धांतों का निर्धारण हो, उसे भाषा विज्ञान कहते है।''

इस परिभाषा में भाषा विज्ञान के अर्थ को अधिक से अधिक स्पष्ट करने का प्रयत्न किया गया है उनके अनुसार भाषा विज्ञान के अंतर्गत जिस भाषा का अध्ययन होता है वह विशिष्ट वर्ग की न होकर जनसाधारण की होती है।

(5) डॉ. उदय नारायण तिवारी : ''भाषा शास्त्र का विषय भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत करता है। इस

अध्ययन की सीमा के अंतर्गत मानव कंठ से नि:सृत वाणी, प्राचीन तथा अर्वाचीन, संस्कृत एवं असंस्कृत, विद्‌वान एवं निरक्षर सभी के भाषा के रूपों का समावेश करती है।''

इस परिभाषा के अनुसार भाषा शास्त्र से वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत होता है। मानव कंठ से निर्माण वाणी, जो प्राचीन तथा अर्वाचीन, संस्कृत एवं असंस्कृत, विद्‌वान एवं निरक्षर के भाषा रूपों का समावेश रहता है।

उपर्युक्त भाषा विज्ञान की परिभाषाओं का अनुशीलन करने पर ज्ञात होता है कि भाषा विज्ञान में भाषाओं का अध्ययन विवेचन, उनकी आंतरिक रचना, उसके बाह्य रूप संगठन को ध्यान में रखा जाता है। इसमें वर्णनात्मक, ऐतिहासिक एवं तुलनात्मक अध्ययन का समावेश होता है। भाषा विज्ञान के क्षेत्र में व्यापकता आ जाती है। यही भाषाविज्ञान भाषा का विश्लेषण, दिग्दर्शन करता है। उपर्युक्त विवेचन के आधारपर भाषा विज्ञान की परिभाषा इस प्रकार होती है, ''भाषा विज्ञान वह विज्ञान है जिसमें भाषा विषयक सामग्री का वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत किया जाता है।''

3.3 (अ) स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न :

1. भाषाविज्ञान भाषा का किस प्रकार अध्ययन करता है?
   अ) ऐतिहासिक ब) सामाजिक क) वैज्ञानिक ड) मनोवैज्ञानिक
2. भाषाविज्ञान में किसकी गणना होती है?
   अ) ध्वनियों, शब्दों, पदों ब) रूप, ध्वनि क) अर्थ और शब्द ड) कल्पना, भाव, शैली
3. व्याकरण, कोशविज्ञान, व्युत्पत्तिविज्ञान यह किस विधा में आती है?
   अ) इतिहास ब) भूगोल क) मानवविज्ञान ड) भाषाविज्ञान
4. विश्लेषण या टुकडे करना यह किसका काम होता है?
   अ) भूगोल ब) मानव विज्ञान क) इतिहास ड) व्याकरण
5. ध्वनियों का उच्चारण संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण का अध्ययन किसमें किया जाता है?
   अ) व्युत्पत्ति विज्ञान ब) भौतिकी विज्ञान क) भूगोल विज्ञान ड) व्याकरण
6. पाणिनि का व्याकरण से संबंधित ग्रंथ का नाम कौनसा है?
   अ) सतसई ब) सप्तमी क) अष्टाध्यायी ड) एकादश
7. 'वैयाकरण सिद्‌धान्त कौमुदी' यह व्याकरण से संबंधित ग्रंथ किसने लिखा है?
   अ) आनंद प्रकाश दीक्षित ब) भट्‌टोजि दीक्षित क) मनहरन दीक्षित ड) कृपाशंकर दीक्षित
8. भृतहरि का किस ग्रंथ वाक्यों और पदों के अंत:संबंध को परिभाषित करता है?
   अ) ललितललाम ब) वाक्यपदीय क) शब्दपदीय ड) व्याकरण मूर्त
9. व्याकरण भाषा के किस प्रयोग का ज्ञान करता है?
   अ) शब्द और रूप ब) पद और वाक्य क) सम्यक और निर्दोष ड) सदोष और निर्दोष

10. कुबेरनाथ राय ने व्याकरण की तुलना किससे की है?

अ) शिपाई　　ब) सेनापति　　क) गणमैन　　ड) पुलिसमैन

11. केंद्रापगामी और केंद्राभिगामी प्रवृत्तियों का द्वंद्व किसमें चलता है?

अ) भाषा　　ब) बोली　　क) व्यक्ति बोली　　ड) अपभाषा

12. किसका संबंध सौंदर्य और उपयोगता से होता है?

अ) वाक्य　　ब) कल्पना　　क) कला　　ड) बुद्धि

13. शब्दों के शुद्ध रूप और प्रयोग के नियमों का निरूपण व्याकरण में होता है यह किसका मत है?

अ) पाणिनि　　ब) भृतहरि　　क) कामता प्रसाद　　ड) भट्टकेदार

14. निघण्टु का रचनाकाल किसके लगभग है?

अ) 1000 ई. पू.　　ब) 1200 ई. पू.　　क) 1400 ई. पू.　　ड) 1500 ई. पू.

15. भाषाविज्ञान का प्रारंभ आधुनिक युग में किस शती के अंतीम दशक से माना जाता है?

अ) 18 वीं　　ब) 19 वीं　　क) 20 वीं　　ड) 21 वीं

16. 'भाषाविज्ञान और भाषा दोनों में अर्थ की दृष्टि से पर्याप्त अंतर है' यह किसका मत है?

अ) कामताप्रसाद　　ब) श्यामसुंदरदास　　क) बाबूराम सक्सेना　　ड) उदयनारायण

17. 'भाषाविज्ञान का अभिप्राय भाषा का विश्लेषण करके उसका दिग्दर्शन कराना है' यह किसका विचार है?

अ) भोलानाथ तिवारी　　ब) बाबूराम सक्सेना　　क) गणपतिचंद्र गुप्त　　ड) उषादेवी यादव

18. मंगलदेव शास्त्री के अनुसार भाषाविज्ञान के अंतर्गत भाषाविज्ञान के रचनात्मक और ऐतिहासिक अध्ययन और किसको आवश्यक मानते हैं?

अ) सृजनपक्ष　　ब) अनुशीलन　　क) समीक्षण　　ड) विवेचन

19. भाषाविज्ञान के अंतर्गत जिस भाषा का अध्ययन होता है वह विशिष्ट वर्ग की न होकर जनसाधारण की होती है यह किसका विचार है?

अ) सिद्धनाथ　　ब) सोमनाथ　　क) भोलानाथ　　ड) जगन्नाथ

3.2.1.1 भाषा विज्ञान के अध्ययन की दिशाएँ :

भाषा विज्ञान का क्षेत्र अत्यंत विस्तृत हैं विश्व की समस्त भाषा भाषा विज्ञान के क्षेत्र में आती है। इससे भाषाओं का विवेचनात्मक अध्ययन, विश्लेषण, उनकी उत्पत्ति, विकास तथा उनकी परस्पर तुलना आदि का अध्ययन होता है। भाषा विज्ञान में साहित्यिक भाषाओं के साथ असभ्य, अर्धसभ्य एवं ग्रामीण देहाती लोगों की बोलियों का भी सावधानी से अध्ययन किया जाता है। भाषा विज्ञानियों को साहित्यिक भाषा की अपेक्षा बोलचाल और ग्रामीण

बोलियाँ अधिक महत्त्व की होती है। इससे भाषा के प्रकृति के मौलिक तत्त्व तथा निष्कर्ष निकालना संभव होता है। यह विज्ञान आज का (वर्तमान) और अतीत दोनों प्रकार की भाषा का अध्ययन करता है। व्यक्ति की प्रवृत्ति का जितना सूक्ष्मतम् अध्ययन भाषा विज्ञान करता है, उतना अन्य विज्ञान नहीं करता है। भाषा विज्ञान एक ओर व्याकरण का काम करता है तो दूसरी ओर उसके दार्शनिक पक्ष को उद्घाटित करता है।

भाषा विज्ञान का क्षेत्र व्यापक होने के कारण अध्ययन करनेवाले को अपनी दृष्टि और सीमाओं के अनुसार अध्ययन की एक दिशा चुननी पडती है। भाषाविज्ञान में अध्ययन की प्रमुखत: पाँच दिशाएँ देखने को मिलती है -

जैसे -

1) ऐतिहासिक भाषाविज्ञान 4) संरचनात्मक भाषाविज्ञान
2) तुलनात्मक भाषाविज्ञान 5) प्रायोगिक भाषाविज्ञान
3) वर्णनात्मक भाषाविज्ञान

1) ऐतिहासिक भाषाविज्ञान : भाषा की ध्वनियाँ, रूप और अन्य भाषिक इकाइयों का विकासात्मक अध्ययन ऐतिहासिक भाषाविज्ञान के अंतर्गत आता है। संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश, वैदिक भाषा और हिंदी की ध्वनियाँ और रूपों का अध्ययन करके उनके विकास को रेखांकित करना हिंदी का ऐतिहासिक और विकासात्मक अध्ययन कहा जायेगा। उदा. के लिए जैसे - हम हिंदी की 'ए' और 'ऐ' ध्वनियों को ले सकते हैं। वैदिक काल में इनका उच्चारण क्रमश: अइ-आइ था। लौकिक संस्कृत में ये ए - अइ हो गयी। ए मूल स्वर हो गया और ऐ का उच्चारण आइ से बदलकर अइ हो गया। पालि भाषा में संयुक्त स्वर लुप्त हो गए और इन दोनों की जगह केवल मूल स्वर ए शेष रह गया। प्राचीन हिंदी में बोलियों से स्वर फिर मानक भाषा में आ गए और क्रमश: ए (ए), ऐ (अइ) बोले जाने लगे। मानक हिंदी में आज फिर ये दोनों मूल स्वर हो गए हैं।

ऐतिहासिक भाषाविज्ञान में रूपों के विकास का अध्ययन किया जाता है। जैसे भूतकाल में कृत - किय - किया तथा वर्तमान काल में पठति - पठइ - पठइ - पढ़े आदि रूपों का विकास होता है। अर्थ के विकास का अध्ययन भी ऐतिहासिक भाषाविज्ञान का विषय है। वैदिक भाषा में उष्ट्र शब्द 'भैंस' के अर्थ में प्रचलित था जो उतरवर्ती काल में 'ऊँट' का वाचक बन गया। जैन धर्म के चरण विकास काल में 'लुंचित' शब्द सम्मान सूचक था जो धार्मिक द्वेष के कारण 'लुच्चा' बन गया जिसका अर्थ चरित्रहीन हो गया।

2) तुलनात्मक भाषाविज्ञान : उन्नीसवी शती में सर विलियम जोन्स ने भारतीय एवं पाश्चात्य भाषाओं के तुलनात्मक अध्ययन से भाषाविज्ञान की नींव डाली। इसमें दो या अधिक भाषाओं की तुलना की जाती है। तुलनात्मक अध्ययन का उद्देश्य उन भाषाओं की समानताओं और असमानताओं को रेखांकित करना होता है। उन्नीसवी शताब्दी में भाषाविज्ञान का अध्ययन भारतीय, योरोपीय और ईरानी भाषाओं के तुलनात्मक अध्ययन से प्रारंभ हुआ और ध्वनि, शब्दभण्डार आदि की समानता के कारण इन्हें एक परिवार की भाषा माना गया। ग्रिम, ग्रॉसमेन जैसे भाषावैज्ञानिकों ने इन भाषाओं की ध्वनियों में एक नियमबद्ध परिवर्तन ढूँढ़ निकाला। यह भाषिक अध्ययन का प्रथम चरण रहा। उस काल में भाषा विज्ञान का नाम ही 'तुलनात्मक भाषाविज्ञान' रहा।

यह तुलनात्मक अध्ययन दो रूपों में होता है - स्थानगत और कालगत।

(अ) स्थान गत : एक ही युग में प्रचलित दो भाषाओं की तुलना स्थानगत अध्ययन है। जैसे संस्कृत-हिंदी की तुलना।

(ब) काल गत : जब दो विभिन्न युगों की भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है तो उसे कालगत कहते है। जैसे - हिंदी - संस्कृत या संस्कृत और पालि या मराठी और गुजराती और हिंदी की तुलना।

अत: तुलनात्मक भाषाविज्ञान एक ही परिवार की भाषाओं तक सीमित नहीं होता है तो भिन्न - भिन्न परिवारों की भाषाओं का भी तुलनात्मक अध्ययन होता है।

3) वर्णनात्मक भाषाविज्ञान : वर्णनात्मक भाषाविज्ञान का क्षेत्र ऐतिहासिक और तुलनात्मक भाषाविज्ञान की अपेक्षा सीमित होता है। वर्णनात्मक भाषाविज्ञान न तो किसी भाषा के अतीत में जाता है और न ही उसकी किसी अन्य भाषा से तुलना करता है। वह तो केवल एक भाषा की एक काल की इकाइयों का वर्णन करता है। इसीलिए इसे 'एककालिक भाषाविज्ञान' भी कहते है।

वर्णनात्मक भाषाविज्ञान का निर्माण एक आंदोलन के रूप में हुआ। 19 वीं शताब्दी में विलियम जोन्स ने भारतीय एवं पाश्चात्य भाषाओं की तुलना में भाषाविज्ञान की नींव डाली। उस समय इसे तुलनात्मक व्याकरण या वर्णनात्मक भाषाविज्ञान कहा जाता था। इस अध्ययन में ऐतिहासिकता के तत्त्व सम्मिलित थे, क्योंकि आधुनिक भाषाओं के साथ-साथ प्राचीन भारतीय और योरोपीय भाषाएँ भी इस तुलना का आधार बनी रही थी।

संस्कृत, ग्रीक, लैटिन जैसी भाषाओं से लेकर वर्तमान भाषाओं तक के विकासक्रम को भी अध्ययन में सम्मिलित कर लिया गया था। यह क्रम चालीस-पचास साल तक चलां इसके बाद अन्तर्राष्ट्रीय भाषा परिषद ने एककालीक अध्ययन का लक्ष्य स्वीकार किया। वर्णनात्मक भाषाविज्ञान किसी भाषा की ध्वन्यात्मक और पदात्मक विशेषताओं का आकलन करता है। आकृतिमूलक स्वरूप को रेखांकित करता तथा वाक्यरचना शब्दसमूह आदि को लेकर उसका वर्णन करता है। कई भाषा वैज्ञानिकोंने इसे व्याकरण का ही एक रूप माना है। यदि भाषिक नियमों का एक कालिक अध्ययन करते हैं, तो उसमें कार्य-कारण के विश्लेषण की गुंजाइश ही नहीं होती। जैसे - हम 'जाना' क्रिया के रूपों की मीमांसा करें तो पायेंगे कि 'जाता है', 'जा रहा है', 'जाता था', 'जा रहा था' और 'जाएगा' के साथ 'गया' का मेल नहीं बैठता। यह रूप 'जाया' होना चाहिए था। यह विषमता क्यों उत्पन्न होती है इसका उत्तर वर्णनात्मक भाषाविज्ञान के पास नहीं है, किंतु खुणों के इतिहास के पास इसका उत्तर मौजूद है। हिंदी 'जाता है', 'जा रहा है' आदि रूप संस्कृत की 'या' धातु से विकसित हुए है जबकि 'गया' गम धातु के कृदन्त रूप 'गत' से (गत: - गयो - गया)।

4) संरचनात्मक भाषाविज्ञान : भाषा तत्त्वों की व्याख्या संरचना से (ध्वनि, रूप, वाक्य का विशिष्ट स्थान) पूर्ण होती है। संरचनात्मक प्रक्रिया भाषाविज्ञान में महत्त्वपूर्ण मार्ग है। भाषात्मक तत्त्व संरचनात्मक पद्धति से विश्लेषित किए जाते हैं। भाषिक संरचना में ध्वनि रूप, वाक्य का विशिष्ट स्थान है। ध्वनि तथा वाक्य भाषाविज्ञान का महत्त्वपूर्ण संरचनात्मक पक्ष है। इस पक्ष को रचनात्मक तत्त्वों की सापेक्षता में विवेचित करना इस पद्धति का लक्ष्य है।

रचनांतर्गत भाषा के विभिन्न स्तरों तथा प्रभावों का अध्ययन अनिवार्य हो जाता है। परिवेश युग के अनुसार भाषातत्त्व किन-किन आधारों पर किन-किन रूपों में विकसित होते हैं आदि का क्रमिक किंतु वर्णनात्मक अध्ययन संरचनात्मक पद्धती है। रचना के अंतर्भूत तत्त्वों को क्रममूलक तथा स्थितिमूलक आधारों पर नियोजित करना भी इस पद्धती का उद्देश्य है।

भाषाविज्ञान भाषा की वैज्ञानिक दृष्टि है। उस दृष्टि का आकलन करना, रचना के सूक्ष्म अवयवों का अनुभव करना संरचनात्मक पद्धती का एक अंग है। भाषा संरचनात्मक पद्धति है। इस पद्धति का विस्तार सहज सुबोध होता है। कोई भी भाषा नैसर्गिक तरीके से विकसित होती है। विकास की उस दिशा का प्रतिपादन और अनुशीलन संरचनात्मक पद्धती का अंग बन जाता है। रूपविज्ञान के अंतर्गत शब्दविज्ञान और पदविज्ञान दोनों की अभिक्रियाओं का अध्ययन-मनन-भाषा-विस्तार के लिए संरचनात्मक ही है। भाषा का सम्यक रूप से रचनात्मक पक्ष उभरकर प्रस्तुत कर देना ही संरचनात्मक पक्ष की अर्थवत्ता है।

भाषा जाने-अनजाने अभिव्यंजन में नैसर्गिक गति प्रवाहमान है। इस प्रवाह की गति को भाषा सृजना के आयामों में उद्घाटित कर देना तथा व्याकरण जैसे बाधित विज्ञान से भाषा का परिमार्जन कर लेना संरचनात्मक यौगिक क्रिया का फल है। भाषा अर्थ व्यंजना में विलक्षण है। अर्थविज्ञान के ऱ्हास, उतार और उत्कर्ष को अर्थादेश के साथ संकोच और विस्तार को तादात्म कर लेना भी भाषाविज्ञान और विशेषकर संरचनात्मक पद्धती का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

5) प्रायोगिक भाषाविज्ञान : कुछ विद्वान प्रयोगशील भाषाविज्ञान को व्यावहारिक भाषाविज्ञान भी कहते है। यह पद्धती धीरे-धीरे विकसित हो रही है। सैद्धान्तिक उपलब्धियों का विवेचन ऐतिहासिक भाषाविज्ञान, तुलनात्मक भाषाविज्ञान, वर्णनात्मक भाषाविज्ञान, संरचनात्मक भाषाविज्ञान इन उपर्युक्त चार पद्धतियों में किया जाता है। भाषा का प्रयोग पक्ष जो सिद्धान्त पक्ष से अधिक सबल है। इस पक्ष को समझने के लिए भाषाविज्ञान की प्रयोगात्मक पद्धती की नींव डाली गयी है। इस पद्धती में भाषा विद् किसी भाषा के क्षेत्र में जाकर उसके बोलने वालों से निकट संपर्क स्थापित करते हुए भाषा का व्यावहारिक अध्ययन करता है।

प्रयोगात्मक पद्धती ने आज के विज्ञान युग में विस्तार पाया है। जैसे - जैसे भाषा क्षेत्रीयता की परिधि की आवाज गूंजने लगी है, वैसे-वैसे भाषाविज्ञान ने प्रयोगपरक उच्चस्तरीय परिमापन की माँग बढ़ गई है। समूचे विश्व में विस्तीर्ण भाषायी आदान-प्रदान प्रयोगात्मक पक्ष एक उभरा हुआ रूप है। प्रयोगात्मक मशीनरी, टैकनीक से अधिक संबंध है। इसलिए टेलिप्रिंटर, कायमोग्राफ तथा कम्प्यूटर जैसे तांत्रिक साधनों का विकास प्रयोगात्मक पद्धती को बल देता है। आज भारतवर्ष में हिंदी का राष्ट्रव्यापी रूप बल पकडता जा रहा है। परिणाम स्वरूप हिंदी अनुवाद तथा पारिभाषिक शब्दावली का निर्माण विविध रूपों में विविध विषयों के साथ अपेक्षित हो गया है। एक ओर जन-जीवन की भाषा का स्वरूप भाषा के सिद्धान्त पक्ष को अभिनव मार्ग प्रशस्त करने में सक्षम है तो दूसरी ओर भाषा की विविध शैलियों को प्रयोगपूरक बनाने में यह पद्धति सफल हुई है।

भाषाविज्ञान के अध्ययन को ऐतिहासिक, तुलनात्मक, वर्णनात्मक, संरचनात्मक और प्रायोगिक भाषाविज्ञान

जैसी दिशाओं में रखना जो सर्वथा अवैज्ञानिक और कटघरों में बंद कर देने के समान है। इन्हीं दिशाओं का समन्वय करने पर भाषाविज्ञान का अध्ययन कर दिया जाता है।

3.2.2 भाषाविज्ञान : आवश्यकता और महत्त्व :

भाषाविज्ञान एक स्वतंत्र विधा है और भाषा के संबंध में विशिष्ट ज्ञान करानेवाला ज्ञान का महत्त्वपूर्ण भंडार है। कोई भी विज्ञान या ज्ञानशाखा निरूद्देश्य नहीं होती। उसी विज्ञान या ज्ञानशाखा के पीछे कोई ना कोई महत्त्वपूर्ण उद्देश्य होता है। ज्ञानसाधन के लिए इसका अध्ययन किया जाता है और ज्ञान की दूसरी शाखाओं की तरह इसमें भी लाभ, भौतिक सुख की प्राप्ति हो जाती है। भाषाविज्ञान अध्ययन के बाद कई उपयोग हमारे सामने आते हैं जैसे बौद्धिक जिज्ञासा की तृप्ति, भाषा का ज्ञान, भाषा की शुद्धता और प्रयोग का ज्ञान जैसे यहाँपर भाषाविज्ञान के महत्त्वपर प्रकाश डाला जाता है -

बौद्धिक जिज्ञासा की तृप्ति :

पढने-लिखने से बौद्धिक क्षमता का विकास होता है। अपनी बौद्धिक क्षमता का विकास कोई 'कला' की अध्ययन साधना से करता है, कोई विज्ञान की ज्ञान-साधना से करता है। कोई अर्थशास्त्र पढ़ता है तो कोई भौतिक-शास्त्र। ज्ञान साधना से बौद्धिक विकास और बौद्धिक जिज्ञासा की तृप्ति होती है। कभी-कभी अर्थशास्त्र और दर्शनशास्त्र का अध्ययन करने पर कोई अर्थशास्त्री होगा, या तत्त्वज्ञानी होगा ऐसा नहीं है। साहित्य को पढनेवाला अच्छा सा रचनाकार होगा ऐसा नहीं है। या विज्ञान पढ़नेवाला वैज्ञानिक बनता है ऐसा भी नहीं होता। ज्ञान साधना से भाषा संबंधी समस्या और जिज्ञासा की शांति हो जाती है। ज्ञान-साधना का प्रयोजन है मानसिक भूख की शांति करना है। भाषाविज्ञान से यही काम होता है।

आज ज्ञान-साधना जीविका के लिए की जाती है, विद्यार्थी विषयों का चुनाव महाविद्यालय या विश्वविद्यालय में इसी प्रयोजन से करते हैं। ज्ञान साधना से दैनंदिन आवश्यकताओं की पूर्ति भी होती है। ज्ञानसाधना का मुख्य कार्य है बौद्धिक विकास और बौद्धिक समस्याओं का समाधान करना है। बुद्धिमान व्यक्ति की प्रवृत्ति कुतूहल है। इसी कारण आते-जाते समय इधर-उधर देखते हैं। इस प्रवृत्ति के कारण रास्ते से जाते समय अगर कहीं गुंडागर्दी दिखाई देती है तो व्यक्ति के पाँव अचानक रुकते हैं। कई लोगों से जानकारी ली जाती है। अगर कोई ढ़ोलक बजाता है तो सुनकर व्यक्ति रूकता है। भाषाविज्ञान भाषा के विभिन्न पहलुओं को लेकर मानव-मन में उत्पन्न हुई जिज्ञासाओं को तृप्त करता है। शब्दों का निर्माण, ध्वनियों का उच्चारण कैसे होता है? त, थ, द, ध, न जैसे वर्ण एक ही उच्चारण स्थान से बोलने पर परस्पर भिन्न क्यों है? अर्थ और शब्द का संबंध क्या रहता है? अशुद्ध उच्चारण के कारण स्कूल का इस्कूल, स्टेशन का इस्टेशन क्यों होता है। एकही वाक्य में पंजाबी, बंगाली, तेलगू, तमिल, मराठी भिन्न-भिन्न लहजे में क्यों बोलते है? इस प्रकार के सैंकडों प्रश्न एक भाषा अध्ययनकर्ता के मन उठते हैं। भाषाविज्ञान इनका उत्तर देकर हमारी जिज्ञासा को संतुष्ट करता है।

व्यवहार में प्रयोग :

भाषा और भाषाविज्ञान समाज और व्यक्ति के लिए आवश्यक ज्ञान है। भाषाविज्ञान के अध्ययन से कोई भी

भाषा के सही-सही स्वरूप को समझने में सहायता मिलती है। भाषाविज्ञान का अध्ययन करनेवाले व्यक्ति अध्ययनकर्ता को यह नितांत आवश्यक है। एक भाषा वैज्ञानिक ने ध्वनिविज्ञान के महत्त्व का उल्लेख करते हुए कहा है कि ध्वनिविज्ञान से अनभिज्ञ भाषाशिक्षक उतना ही दयनीय होता है जितना शरीर शास्त्र से अनभिज्ञ चिकित्सक। ध्वनिविज्ञान के संबंध में कहा हुआ यह वाक्य पूरे भाषाविज्ञान पर लागू होता है। उच्चारण की शुद्धता के महत्त्व को 'श' और 'स' भिन्न-भिन्न स्वनिम है। कभी हिंदी भूभाग में रहनेवाले लोग जब मानक हिंदी बोलते समय 'शास्त्री' को 'सास्त्री' और 'विशेष' को 'विसेस' बोलने लगते तो बड़ा हास्यास्पद होता है। मराठी भाषी लोग 'हैं' को 'है' और 'पढ़ें' को 'पढ़े' बोलते हैं इससे उच्चारण भी भद्दा लगता है और सम्प्रेषण में भी अशुद्धता रहती है।

शब्दों के प्रयोग में अशुद्धता जो अशोभनीय होती है। मराठी भाषा में आदरसूचक 'तुम' सर्वश्रुत है किंतु हिंदी में इस अर्थ में 'आप' का प्रयोग होता है। जब कोई मराठी भाषी हिंदी बोलते समय किसी प्रतिष्ठित व्यक्ति को 'तुम' का प्रयोग करता है तो वह नहीं जानता कि वह क्या गलती करता है।

भाषा की शुद्धता और प्रयोग का ज्ञान :

भाषाविज्ञान के भाषा की शुद्धता पर ध्यान देना जरूरी है। अशुद्ध भाषा पढे लिखे बुद्धि जीवियों के मुख से सुनने को मिलती है तो हंसी-मजाक के समान लगता है। भाषा की शुद्धता का संबंध भाषाविज्ञान के अध्ययन से है। कौन सा वर्ण कहाँ से उच्चरित होगा? शब्दों का उच्चारित भाषा का प्रभाव मंत्र की तरह होता है। दिल्ली भारत की राजधानी है। यह शुद्ध प्रयोग है किंतु दिल्ली भारत का राजधानी है यह अशुद्ध प्रयोग है। बंबई भारत की राजधानी है, यह गलत प्रयोग है। यह भाषा की नहीं तथ्य की गलती है। भाषा की गलती को अशुद्ध कहा जाता है। भाषाविज्ञान भाषा की शुद्धता का सैद्धांतिक स्वरूप ही नहीं बल्कि भाषा व्यवहार पक्ष को नियंत्रित करता है। भाषाविज्ञान में उच्चारण की शुद्धता, कोषनिर्माण, अनुवाद कार्य, भाषाविज्ञान आदि को लिया जाता है।

भाषा अनुसंधान एवं साहित्यज्ञान में सहायक :

ज्ञान का आधार खोज और अनुसंधान है। अनेक भाषावैज्ञानिकों ने भाषा के अनुसंधान कार्य से रहस्य में छिपे वस्तुओं को खोलने में सहायता पहुँचायी है। अनुसंधान के कारण ही संसार की भाषाओं को वर्गीकृत किया जाता है। भाषा-सामग्री का संकलन और उसके आधारपर सिद्धान्त निर्माण भाषा के अनुसंधान कार्य का महत्त्वपूर्ण चरण है। भाषाविज्ञान के सिद्धान्त साहित्य की व्याख्या में सहायक होते है। साहित्य का आधार भाषा है जो भाषा के द्वारा साहित्य को समाज तक पहुँचाया जाता है। भाषा से ही साहित्य की व्याख्या करके साहित्य का रसास्वाद था लोकहित स्पष्ट किया जाता है। भाषा का विश्लेषण भाषाविज्ञान के सिद्धान्त से संभव है।

पाश्चात्य भाषावैज्ञानिक मैक्समूलर, शेथ, स्वीट, जेस्पर्सन आदि ने वेदों का अनुवाद करने के लिए भाषाविज्ञान का ही प्रयोग किया था। भाषाविज्ञान प्राचीन भाषाओं की कृतियों का अर्थ समझने में भी सहायक होता है। 'संदेश रासक' के संपादक आ. हजारीप्रसाद द्विवेदी ने उस अपभ्रंश रचना का अनुवाद भाषा वैज्ञानिक अध्ययन के सहारे से ही किया है। 'कबीर की उलट बासियाँ' और 'पृथ्वीराज रासो' के संबंध में भी यह बात कहीं जाती है।

प्रागऐतिहासिक एवं ऐतिहासिक अनुसंधान में योग :

प्राचीन सभ्यताओं एवं संस्कृतियों के ज्ञान के लिए मनुष्य जिज्ञासु रहा करता है। मनुष्य सभ्यता के अतीत को जानने के लिए अनेक विधि का प्रयास कर रहा है। ऐतिहासिक और प्रागऐतिहासिक अनुसंधान में मानव श्रम और सम्पत्ति दोनों खर्च हो रहे हैं। प्राचीन काल की मुद्राओं पर अंकित अक्षर, शिलालेख प्राप्त ताम्र-पत्र का विश्लेषण, भाषाविज्ञानी, भाषाजिज्ञासु, भाषापिपासु ही कर सकता है। वेद, उपनिषद्, अष्टाध्यायी, नाट्यशास्त्र से प्रागऐतिहासिक एवं ऐतिहासिक तथ्यों पर प्रकाश पडता है। भाषाविज्ञान पारिभाषिक शब्दावली बनाने के बारे में काफी महत्त्वपूर्ण होता है। संस्कृत के शब्दों और धातुओं में प्रत्यय जोड़कर पिछले दिनों सैकड़ों पारिभाषिक शब्द गढ़े गए है और आवश्यकता पड़ने पर और हजारों शब्द बनाए गए। अंतरराष्ट्रीय कहे जानेवाली अंग्रेजी की समृद्ध शब्दावली ठीक और लैटिन भाषाओं के शब्दों से विकसित हुई है। अरबी भाषा के धातुओं से उर्दू में असंख्य शब्द बनाए गए हैं।

संस्कृति के अन्वेषण में सहायक :

प्राचीनता की खोज मनुष्य का स्वभाव है। हर प्राचीन वस्तु अतीत के अंधेरे में होती है। प्राचीन संस्कृति भी इस नियम का अपवाद नहीं है। प्राचीन भाषा को अध्ययन से प्राचीन संस्कृति का पता लगता है। किसी भी देश की संस्कृति के ज्ञान का आधार उस देश की भाषा हो सकती है। वैदिक भाषा से भारत की वेदकालीन संस्कृति का ज्ञान होता है। इसी तरह लौकिक संस्कृत से उस युग की सभ्यता एवं संस्कृति का ज्ञान होता है। जिस भाषा से समाज के स्तर और संस्कृति का ज्ञान प्राप्त करते हैं, उस भाषा को जानने का आधार भाषाविज्ञान ही है।

भाषाविज्ञान का अध्ययन समकालीन समाज, समाज में रहनेवाले रीतिरिवाज को समझने में सहायक होते हैं वेदों में यज्ञ से संबंधित ऋत्विक, यजमान, समिधा, आचमन, सामग्री, अर्ध्य, पाद्य, नमस्कार का परिचय देते है। मध्यकाल में युद्धों के दौरान सुनाई देनेवाले आवाज जैसे - हाथी, घोडे, ऊँट की आवाजे, समशेर और ढ़ाल की आवाजें, भारतीय वस्त्रों, खाद्य पदार्थों, आभूषण पहरावों के नाम पिछली शताब्दी तक के कृषि उपकरण, संसाधन सब समकालीन जीवन-शैली के संकेत देते हैं। बहुपत्नी प्रथा का भार्या और पति परिवार के भरण-पोषण के लिए पुरुष के उत्तरदायित्व का वर और स्वयंवर कन्याओं के प्रति चयन के अधिकार का तथा गुरूकुल एक विशिष्ट शिक्षा प्रणाली का परिचय देते हैं।

विदेशी भाषा सीखने में सहायक :

भाषा बोलना और भाषा पर अधिकार जमा लेना यह दो अलग बाते हैं। भाषा ज्ञान प्राप्त करने के लिए साधना करनी पड़ती है। तभी वह भाषा प्राप्त होती है। उस पर अधिकार आ जाता है। जब अपनी भाषा को अधिकार करने में इतना श्रम, इतनी साधना करनी पडती है तब विदेशी भाषा पर अधिकार करने की बात अलग रहेगी। मुश्किल कार्य भी यंत्र की सहायता से सुकर हो जाता है, वैसे ही भाषाविज्ञान के निर्देशानुसार कोई भाषा सीखने में सुकर हो जाती हैं, वैसे ही भाषाविज्ञान के निर्देशानुसार कोई भाषा सीखने में सुकर है। भाषावैज्ञानिक ढंगसे विदेशी भाषा अल्पश्रम से और सुविधापूर्वक रीति से अवगत हो जाती है। जो भाषा सीखने में दस वर्ष लगते हैं, वह भाषा विज्ञान की सहायता से उसे चार महिने में सीख जाता है। इस प्रकार भाषा विज्ञान भाषा- शिक्षा में समय और श्रम दोनों बचाता है।

वाक् चिकित्सा में सहायक :

चिकित्सा के क्षेत्र में जो विशेषीकरण है उसका उपयोग समाज के लिए बहुत महत्त्व का है। प्रत्येक अंग के लिए अलग-अलग चिकित्सक होते हैं। लेकिन चिकित्सा के क्षेत्र में भाषाविज्ञान का प्रयोग रहता है यह सुनने में आश्चर्यजनक लगता है। आज भाषाविज्ञान वाक् चिकित्सा का अंग बन गया है। यह भाषाविज्ञान की नई उपलब्धि है। विदेशों में वाक् चिकित्सा बहुत ही प्रसिद्धी पाती जा रही है। दिनो-ब-दिन इसकी व्यापकता बढ़ती जा रही है। हलकाहट, तुतलाहट, अभिव्यंजना में बाधा ध्वनियों के उच्चारण में भूल आदि को देखने का आधार भाषाविज्ञान ही है। भाषाविज्ञान में वाक् चिकित्सा के अवरोधन कारणों को ढूँढ़ निकाला जाता है। भाषा विज्ञान के कारण ही यांत्रिक अनुवाद को अधिक सक्षम और निर्दोष बनाया जाता है अथवा व्यावसायिक विज्ञापनों के लिए नारे या घोषवाक्य तैयार करने में दक्षता हासिल की जाती है।

भाषा विज्ञान का अध्ययन समाज के लिए उतना ही उपयोगी है, जितना किसी भी अन्य शास्त्र को समझने के लिए। भाषा शिक्षण क्षेत्र में ध्वनि का निर्माण, व्याकरण, पद और वाक्य का बोध कराया जाता है। भाषा विज्ञान, विज्ञान की कसौटी पर खरा उतरता है। भिन्न-भिन्न अंग और स्वरूपों का विवेचन तथा निरूपण यह भाषाविज्ञान ही करता है।

भाषाविज्ञान का अध्ययन :

भाषाविज्ञान पूर्ण रूप से पल्लवित तथा पुष्पित वृक्ष है। जिसकी चार शाखाएँ बताई जाती हैं स्वनविज्ञान, रूपविज्ञान, अर्थविज्ञान और वाक्य विज्ञान। भाषाविज्ञान की यह चार शाखाएँ हिंदी के साथ अंग्रेजी, फ्रेंच, जर्मन आदि भाषाओं में भी मानी जाती है वहाँ इन्हें क्रमश: Phonetice, Morphology, Semantics तथा Syntax के नाम से जाना जाता है।

भाषाविज्ञान की उपर्युक्त चार शाखाओं के विषय में भारतीय भाषावैज्ञानिकों में एकमत नहीं है। भाषाविज्ञान की शाखाओं के संबंध में प्राप्त मतों को तीन वर्गों के अंतर्गत रखा जाता है। पहला वर्ग जो छ: शाखाओं में दिखाई देता है, दूसरा वर्ग वह है जो पाँच शाखाओं में विभाजित तथा तीसरा वर्ग जिसकी चार शाखाए मानी जाती है।

भाषाविज्ञान की छ: शाखाएँ माननेवाले भाषावैज्ञानिकों में डॉ. श्यामसुंदर दास प्रमुख हैं। उन्होंने अपने ग्रंथ 'भाषाविज्ञान' में छ: शाखाओं का उल्लेख किया है - (1) ध्वनिविचार, (2) ध्वनिशिक्षा, (3) रूपविचार, (4) वाक्यविचार, (5) अर्थविचार, (6) प्राचीन बोध।

इन प्रकारों पर चिंतन करने पर पता चलता है कि ध्वनि विचार और ध्वनि शिक्षा नामक दो शाखाएँ एक ही हैं।

भाषाविज्ञान की पांच शाखाएँ माननेवाले भाषावैज्ञानिकों में प्रमुख डॉ. मंगलदेव शास्त्री उन्होंने (1) वाक्य विज्ञान, (2) पदविज्ञान, (3) ध्वनिविज्ञान, (4) अर्थविज्ञान, (5) प्रागैतिहासिक अनुसंधान।

डॉ. भोलानाथ तिवारी ने भी भाषाविज्ञान की पाँच शाखाएँ स्वीकार की हैं - (1) वाक्य विज्ञान (Syntax), (2) रूपविज्ञान (Morphology), (3) शब्दविज्ञान (Wordology), (4) ध्वनिविज्ञान (Phoneties), (5) अर्थविज्ञान (Sementics)।

डॉ. बाबूराम सक्सेना के अनुसार भाषाविज्ञान की चार शाखाए इस प्रकार हैं - (1) वाक्यविज्ञान, (2) पद-विज्ञान, (3) ध्वनिविज्ञान, (4) अर्थ-विज्ञान।

प्रा. नलिनीमोहन सान्याल ने भी भाषाविज्ञान की चार शाखाएँ मानी हैं। पर उनकी ये चार शाखाए डॉ. सक्सेना की उपर्युक्त चार शाखाओं से कुछ भिन्न हैं - (1) ध्वनिविज्ञान (Phonology), (2) ऐतिहासिक व्याकरण या गठन-तत्त्व (Morphology), (3) आपेक्षिक विन्यास तत्त्व (Comparactive Synatax) और (4) अर्थतत्त्व (Semactalogy) इस प्रकार उपर्युक्त तीन वर्गों के भाषावैज्ञानिकों द्वारा प्रस्तुत भाषावैज्ञानिक शाखाओं पर विचार करते हुए हम देखते हैं कि, उनकी संख्या बहुत अधिक हो जाती है। परंतु इन विभिन्न शाखाओं में एक बात ध्यान देने योग्य है कि लगभग सभी भाषावैज्ञानिकों ने वाक्यविज्ञान, रूपविज्ञान, ध्वनिविज्ञान, अर्थविज्ञान इन चार शाखाओं को किसी रूप में स्वीकार किया है। ये चार शाखाएँ ही भाषाविज्ञान के प्रमुख अंगों के रूप में सर्वाधिक मान्य है।

भाषाविज्ञान का अध्ययन क्षेत्र :

हमारे भावों और विचारों की वाहक भाषा है। भाषा वाक्य के माध्यम से वहन होती है। वाक्यों के खण्ड 'पद' कहलाते है और पदों के खण्ड 'ध्वनि' है। अत: ध्वनि, पद तथा वाक्य भाषा के अवयव हैं जिनसे उसके शरीर की रचना होती है। अर्थ, भाषा की आत्मा है। उसके बिना इन अवयवों का कोई महत्त्व नहीं होता। भाषाविज्ञान भाषा के इन्हीं घटकों का अध्ययन करता है। भाषाविज्ञान के अध्ययन क्षेत्र में ध्वनिविज्ञान, पदविज्ञान, वाक्यविज्ञान और अर्थविज्ञान का समावेश होता है।

ध्वनिविज्ञान :

ध्वनिविज्ञान यह भाषाविज्ञान का सबसे महत्त्वपूर्ण अंग है। ध्वनि के स्वरूप, उसकी उच्चारण प्रक्रिया, उसके भेद-उपभेद, बलाघात, स्वराघात, अनुनासिकता इत्यादि का अध्ययन इसके अंतर्गत आता है। ध्वनिविज्ञान का क्षेत्र आज बहुत व्यापक हो गया है। मानस्वर और स्वनिम विज्ञान के अध्ययन ने उसे बहुत गहराई प्रदान की है। मानस्वरों के द्वारा किसी भी भाषा के स्वरों के सही-सही स्वरूप को जाना जाता है। स्वनिम विज्ञान दो भाषाओं की ध्वनियों के साम्यवैषम्य को जानने-समझने में सहायता करता है।

ध्वनिपरिवर्तन की विभिन्न स्थितियों का भी अध्ययन किया जाता है। संस्कृत के अग्नि, हस्त, कर्म आदि शब्द किन-किन ध्वनि परिवर्तनों से होते हुए आग, हाथ और काम बन गए, इसका विश्लेषण करना ध्वनिविज्ञान का विषय होता है।

पदविज्ञान :

पदों और शब्दों का अध्ययन पद विज्ञान के क्षेत्र में आता है। पद के स्वरूप का विवेचन, शब्द, संबंधतत्व और पद के अन्त: संबंध का अध्ययन, संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया और अव्यय आदि भेदों का ज्ञान, लिंग, वचन, कारक, पुरुष काल और क्रियार्थ आदि व्याकरणिक कोटियों का परिचय पदविज्ञान के प्रमुख विषय है।

पदविज्ञान में शब्दविज्ञान का अंतर्भाव रहता है। जिसमें शब्द निर्माण प्रक्रिया का अध्ययन किया जाता है।

उपसर्ग, प्रकृति और प्रत्यय के संयोग से शब्दों की निष्पत्ति शब्दविज्ञान का प्रमुख विषय है। संस्कृत व्याकरण में धातुओं और शब्दां से नए शब्द बनाने के लिए क्रमश: कृत और तद्धित प्रत्ययों का प्रयोग किया जाता। उस प्रक्रिया का अध्ययन करना भी भाषाविज्ञान के इस अंग का कर्म है। रूपिम की अवधारणा ने पदविज्ञान के अध्ययन को बहुत सूक्ष्मता प्रदान की है। इसमें उपसर्ग, प्रकृति, प्रत्यय, विभक्ति और परसर्ग जैसी लघुत्तम भाषिक इकाइयों का पृथ्थकरण किया जाता है। रूपिम के अध्ययन से किसी भाषा के व्याकरणिक स्वरूप को समझने में सहायता मिलती है।

वाक्यविज्ञान :

वाक्य के स्वरूप और भेदों का अध्ययन वाक्यविज्ञान का विषय है। वाक्य का गठन कुछ पदों के संयोग से होता है। जिन्हे एक विशिष्ट क्रम में रखना जरूरी होता है इसे पदक्रम कहते हैं। आयोगात्मक भाषाओं में पदक्रम का व्याकरणिक महत्त्व होता है। पदक्रम का वाक्यविज्ञान में अध्ययन किया जाता है। वाक्यविज्ञान के अध्ययन में पिछले वर्षों में बहुत गहराई आयी है। भाषाओं का आकृतिमूलक वर्गीकरण और वाक्य का विभाजन इस विज्ञान के अपेक्षाकृत नवीन अध्ययन विषय है। वाक्यविज्ञान में रचना, अर्थ, व्याकरण आदि की दृष्टि से वाक्यों का वर्गीकरण भी किया जाता है।

अर्थविज्ञान :

भाषा का प्राणतत्त्व अर्थविज्ञान है। इनकी अर्थवत्ता ध्वनि, पद और वाक्य की सार्थकता पर निहित होती है। इसमें शब्द और अर्थ का अध्ययन किया जाता है। इसके अंतर्गत संकेतग्रह के साधक और बाधक कारणों तथा शब्द शक्तियों का समावेश होता है। भाषा एक परिवर्तनशील वस्तु है। उसकी यह प्रकृति सबसे ज्यादा अर्थ को प्रभावित करती है शब्दों का अर्थ बड़ी तेजी से बदलता है। अर्थविज्ञान में अर्थपरिवर्तन की दिशाओं और अर्थपरिवर्तन के कारणों का भी अध्ययन किया जाता है। शब्द कभी संकुचित अर्थ छोड़कर विस्तृत अर्थग्रहण कर लेता है तो कभी विस्तृत अर्थ को छोड़कर संकुचित। शब्द का अर्थ पूरी तरह बदल जाता है और विश्वास नहीं होता कि इस अर्थ के मूलमें इतना भिन्न अर्थ समाया हुआ है। लक्षणा, प्रयत्न लाघव, सादृश्य, अज्ञान, भावुकता, सौजन्य परिवेश आदि कारण अर्थ को प्रभावित करते हैं। जिनके चलते 'बुद्ध', बुद्धू बन जाते है 'असुर' राक्षस।

अर्थ विज्ञान के अंतर्गत तीन बाते ध्यान में रखी जाती है।

(1) अर्थ संकोच, (2) अर्थ विस्तार, (3) अर्थादेश।

(1) अर्थ संकोच : का तात्पर्य यह है कि पहले से प्रचलित किसी शब्द के अर्थ में न्यूनता आ जाना। किसी शब्द का व्यापक अर्थ जहाँ सिमट कर छोटा हो जाता है उसे अर्थ संकोच कहते है। उदाहरण के लिए - अंग्रेजी के deer तथा संस्कृत के 'मृग' शब्द का प्रयोग पहले 'पशु' के लिये होता था परंतु क्रमश: वर्तमान अंग्रेजी तथा हिंदी में इसका प्रयोग 'हरिण' के लिए हो रहा है।

(2) अर्थ विस्तार : जब किसी शब्द का अर्थ सीमित क्षेत्र से निकलकर विस्तृत हो जाता है तब उसे अर्थविस्तार कहते हैं। 'अभ्यास' शब्द का प्रयोग पहले केवल बाण फेंकने के अभ्यास के लिए होता था परंतु आज

हर अच्छे-बुरे कार्यों के लिए भी अभ्यास शब्द का प्रयोग होता है। इसी प्रकार स्याह का अर्थ काला है। जिससे स्याही शब्द बना है क्योंकि पहले लोग काले रंग से लिखते थे परंतु अब लाल हरी सभी रोशनाइयों के लिए स्याही शब्द का प्रयोग होने लगा है।

(3) अर्थादेश : कभी-कभी एक शब्द के प्रधान अर्थ के साथ गौण अर्थ भी चलने लगता है। फिर धीरे-धीरे प्रधान अर्थ लुप्त हो जाता है। और गौण अर्थ ही चलने लगता है। इसी को अर्थादेश कहते है। जेसे 'वर' का अर्थ श्रेष्ठ था पर अब 'दुल्हे' के लिए प्रयुक्त होता है। इसी प्रकार 'दुल्हा' शब्द का मूल अर्थ था 'जो जल्द न मिले' अर्थात 'दुर्लभ'। परंतु अब यह वर के लिए नए अर्थ में प्रयुक्त होने लगा है।

अर्थविज्ञान के अंतर्गत बौद्धिक नियमों का अध्ययन किया जाता है। जब शब्दों के विविध-अर्थ-परिवर्तन के बुद्धिगत कारणों को दृष्टि में रखकर उससे संबंधित नियम बनाए जाते हैं तो उन्हें बौद्धिक नियम कहते हैं। जैसे 'स्कूल' शब्द से एक प्रकार की शिक्षा संस्था का बोध होता है तो 'पाठशाला' से दूसरे प्रकार की और 'कॉलेज' से तिसरे प्रकार की शिक्षा संस्था का अर्थबोध होता है अर्थविज्ञान में शब्द का भी व्यापक अध्ययन किया जाता है। शब्द और अर्थ का तात्पर्य, स्वरूप पारस्परिक संबंध का अध्ययन इसी शाखा से होता है।

3.3 (ब) स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न :

1. भाषा वैज्ञानियों को साहित्यिक भाषा की अपेक्षा कौन सी बोलियाँ अधिक महत्त्व की होती हैं?
   अ) बोलचाल और ग्रामीण ब) कस्बाई देहाती क) शहरी कस्बाई ड) देहाती शहरी
2. भाषा की ध्वनियां, रूप और अन्य इकाइयों का विकासात्मक अध्ययन किसके अंतर्गत आता है?
   अ) मनोवैज्ञानिक भाषा ब) सामाजिक भाषा क) ऐतिहासिक भाषा ड) पौराणिक भाषा
3. जैन धर्म के चरम विकास काल में 'लुंचित' शब्द किस वाचक था?
   अ) आदरसूचक ब) मान सम्मानसूचक क) सम्मानसूचक ड) चरित्र हीन सूचक
4. धार्मिक द्वेष के कारण 'लुच्चा' शब्द का अर्थ क्या था?
   अ) सम्मानहीन ब) चरित्रहीन क) चारित्र्यहीन ड) अपमानीत
5. तुलनात्मक भाषाविज्ञान की नींव किसने डाली?
   अ) सर विलियम्स जोन्स ब) सर जॉर्ज माऊंट क) जॉर्ज ग्रिर्यसन ड) विलियम्स सेक्सपिअर
6. किस अध्ययन का उद्देश्य भाषाओं की समानताओं और असमानताओं को रेखांकित करना होता है?
   अ) ऐतिहासिक भाषाविज्ञान ब) तुलनात्मक भाषाविज्ञान
   क) पौराणिक भाषाविज्ञान ड) प्रायोगिक भाषाविज्ञान
7. तुलनात्मक भाषाविज्ञान में किसने नियमबद्ध परिवर्तन ढूँढ़ निकाला?
   अ) ग्रिम ग्रॉसमेन ब) विलियम्स जोंस क) लुईस वेवस्टर ड) जॉर्ज ग्रॉसमेन

8. तुलनात्मक अध्ययन किस दो रूपों में होता है?

अ) बुद्धिगत-कल्पनागत ब) स्थानगत-कल्पनागत

क) स्थानगत-कालगत ड) शैलीगत-भावगत

9. एक ही युग में प्रचलित दो भाषाओं की तुलना किस आधार पर होती है?

अ) कालगत ब) कल्पनागत क) स्थानगत ड) निर्मितीगत

10. कालगत रूपों में किस की तुलना होती है?

अ) पर्वों की ब) युगों की क) दो शताब्दिओंकी ड) सालों की

11. कौनसा भाषाविज्ञान एकही परिवार तक सीमित नहीं रहता है?

अ) संरचनात्मक ब) प्रायोगिक क) अभिकलनात्मक ड) तुलनात्मक

12. ऐतिहासिक भाषाविज्ञान का क्षेत्र यह नहीं है?

अ) अतीत और तुलना ब) भूत और वर्तमान क) भविष्य और भूत ड) वर्तमान और भविष्य

13. ध्वनि, रूप, वाक्य का विशिष्ट स्थान किस भाषाविज्ञान के अंतर्गत होता है?

अ) प्रायोगिक ब) तुलनात्मक क) संरचनात्मक ड) ऐतिहासिक

14. प्रयोगशील भाषाविज्ञान का दूसरा नाम क्या है?

अ) व्यावहारिक ब) प्रायोगिक क) व्यावसायिक ड) प्रायोजिक

15. ध्वनिविज्ञान से अनभिज्ञ भाषा शिक्षक उतना ही दयनीय होता है जितना शरीर शास्त्र से अनभिज्ञ......।

अ) डॉक्टर ब) चिकित्सक क) ऋषी ड) वैदू

16. अशुद्ध भाषा पढ़े-लिखे बुद्धिजीवियों के मुख से सुनने को मिलती है तो किसके समान लगता है?

अ) शुद्धता-अशुद्धता ब) हसी-मजाक क) बुद्धिमान ड) देहातीपन

17. मैक्समूलर, शेथ, स्वीट, जेस्पर्सन आदि ने किसका अनुवाद करने के लिए भाषाविज्ञान का उपयोग किया?

अ) उपनिषद् ब) पुरान क) वेदों ड) शतपथ ब्राह्मण

18. वेद उपनिषद्, अष्टाध्यायी नाट्यशास्त्र से किस तथ्यों पर प्रकाश पडता है?

अ) प्रागऐतिहासिक ब) पौराणिक क) आधुनिक ड) मध्यकालीन

19. भाषाविज्ञान किस चिकित्सा का अंग बन गया है?

अ) बोली ब) वाक् क) ध्वनि ड) रूप

3.2.3 भाषाविज्ञान की सहयोगी शाखाएँ :

भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन करनेवाला शास्त्र भाषाविज्ञान है। वह भाषा के विभिन्न अंगों का अध्ययन करता है जैसे ध्वनियां, शब्दों, पदों और वाक्यों की गणना होती है। अर्थ भाषा की आत्मा है। अत: आत्मा भी भाषाविज्ञान के अध्ययन के दायरे में आती है। भाषाविज्ञान का अध्ययन व्याकरण, कोशविज्ञान, व्युत्पत्तिविज्ञान, भाषा भूगोल, समाज भाषाविज्ञान, उपयोजित भाषाविज्ञान और अभिकलनात्मक भाषाविज्ञान के अंतर्गत किया जाता है। सहयोगी शाखाओं में हम एक एक का अध्ययन करेंगे।

3.2.3.1 व्याकरण :

व्याकरण का अर्थ है विश्लेषण करना। इसकी व्युत्पत्ति वि + आ उपसर्ग कृ धातु से 'अन' (ल्युट) प्रत्यय जोड़कर हुई है। व्याकरण भाषा के अंगों का विच्छेदन करके उसके सही स्वरूप को समझने में सहायता करता है। व्याकरण का व्यापक रूप में संस्कृत साहित्य में प्रयोग हुआ है। ध्वनियों का उच्चारण, संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, विभक्तियाँ जिसका उपयोग कर क्रिया के विभिन्न गुणों की और लकारों के रूप, तद्धित और कृदन्त शब्दों के निर्माण की प्रक्रिया, स्त्री प्रत्यय और उनसे बननेवाले शब्द आदि अनेक विषय आ जाते है। भट्टोजिदीक्षित की वैयाकरण सिद्धान्त कौमुदी, पाणिनि की अष्टाध्यायी, पतंजलि का महाभाष्य, कात्यायन की व्याख्याएँ आदि ग्रंथों का अध्ययन क्षेत्र व्याकरण ही है। भर्तृहरि का 'वाक्यपदीय' वाक्यों और पदों के अन्त:संबंध को परिभाषित करता है। व्याकरण के उद्देश्य को कई विद्वानों ने अपने विचारानुसार निरूपित किया है। व्याकरण भाषा के सम्यक् और निर्दोष प्रयोग का ज्ञान कराता है।

भाषा के अध्ययन में व्याकरण का महत्त्व एक व्याख्याकार के अनुसार है। साहित्यकार कुबेरनाथ ने अपने निबंध में व्याकरण की तुलना पुलिसमैन से की है। पुलिस का काम है समाज में व्यवस्था बनाए रखना। भाषिक व्यवस्था बनाए रखने का काम व्याकरण करता है। पुलिस नियमों का निर्माण नहीं करती बल्कि विधायकों द्वारा निर्माण किए गए नियमों का पालन कराने के लिए अपनी शक्ति का इस्तेमाल करती है। व्याकरण भाषा के नियमों का सृष्टा नहीं होता। केवल उन्हें उपयोग में लानेवाला अनुचर होता है। भाषा नित्य परिवर्तनशील होती है। इस सहज प्रवृत्ति के कारण भाषा बदलना चाहती है। व्याकरण इस परिवर्तन को रोकना चाहता है।

संस्कृत भाषा को व्याकरणबद्ध करने का कार्य आचार्य पाणिनि ने किया। इससे वैदिक भाषा की रूप विविधता पर नियंत्रण आने लगा। भाषा सुव्यवस्थित होती गई। किंतु व्याकरणिक दबाव के कारण भाषा का स्वाभाविक विकास अवरूद्ध हो गया और कालान्तर में उसकी तुलना निर्जिव भाषाओं में होने लगी। दूसरी ओर पालि, प्राकृत जैसी लोकभाषाएँ विकासक्रम की राह पर चलती हुई भारतीय आर्यभाषाओं के वर्तमान रूप तक पहुँच गयी। व्याकरण की तुलना भाषा विज्ञान के साथ की जाय तो व्याकरण और भाषाविज्ञान का क्षेत्र एक ही दिखाई देता है।

भाषाविज्ञान में ध्वनि, पद और वाक्य को ध्वनिविज्ञान, पदविज्ञान और वाक्यविज्ञान कहते हैं। भाषाविज्ञान

इनका विकास और इतिहास का अध्ययन करता है। विकास और परिवर्तन के कारणों की छानबीन करता है और स्थिति का विश्लेषण करता है। व्याकरण का इतिहास और विश्लेषण से कोई संबंध नहीं रहता। व्याकरण केवल भाषाविज्ञान के तत्कालीन स्वरूप से संबंध रखता है। अत: संस्कृत, प्राकृत और हिंदी के व्याकरण अपनी-अपनी भाषाओं तक सीमित है। व्याकरण स्थान की दृष्टि से एक ही भाषा तक सीमित होता है। जैसे हिंदी का व्याकरण लिंग का विचार करते समय केवल हिंदी में दो ही लिंग हैं किंतु स्त्रोत भाषा के (संस्कृत) तीन लिंग होंगे, मराठी या गुजराती भाषा में भी लिंगो की संख्या तीन होगी। याने प्रत्येक भाषा का अपना-अपना ढाँचा होता है और व्याकरण का क्षेत्र उसी तक सीमित होता है।

व्याकरण, भाषा विशेष के वर्तमान स्वरूप का वर्णन करता है न उसके नियमों का विश्लेषण, न इतिहास में जाता है किंतु इसका तात्पर्य व्याकरण कला है, विज्ञान नहीं। स्वीट जैसे भाषावैज्ञानिकोंने व्याकरण को 'कला' भी माना है। उनके अनुसार कला का संबंध सौंदर्य और उपयोगता से होता है और न ही भाषा की शुद्‌धता और न ही उपयोगिता से। व्याकरण केवल वाक्य शुद्‌ध है या अशुद्‌ध इसका संकेत करता है।

व्याकरण का क्षेत्र वर्ण, लिपी, वर्तनी, लिंग, वचन, कारक, पुरूष, क्रियार्थ, वाक्यभेद इत्यादि विषयों तक सीमित होता है न उच्चारण प्रक्रिया का विवेचन न अर्थ परिवर्तन की कारण मीमांसा। व्याकरण परंपरावादी होता है जब तक कोई भाषिक परिवर्तन भाषाद्‌वारा मान्य नहीं होता तब तक व्याकरण उसके प्राचीन रूप को शुद्‌ध मानता है। किंतु नया नियम स्वीकार्य होने पर उसके पुराने नियमों को अग्राह्य समझा जाता है। मराठी में संस्कृत के तत्सम इकारान्त, उकारान्त शब्द पहले ऱ्हस्व लिखे जाते थे जैसे - कवि, ऋषि, स्थिति, गुरू, साधु, पशु किंतु अब ये कवी, ऋषी, स्थिती, गुरू, साधू और पशू इस रूप में लिखे जाते हैं।

भाषा वैयाकरणों और शब्द कोषों ने 'व्याकरण' के स्वरूप को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है। 'हिंदी विश्वकोश' के अनुसार किसी भी भाषा के अंग-प्रत्यंग का विश्लेषण तथा विवेचन व्याकरण कहलाता है। व्याकरण की परिभाषा मानक हिंदी कोश में दी गई है - ''व्याकरण वह शास्त्र है, जिसमें बोलचाल तथा साहित्य में प्रयुक्त होने वाली भाषा का स्वरूप, उसके गठन, उसके अवयवों, उसके प्रकारों और पारस्परिक संबंधों तथा उसके रचनाविधान और रूपपरिवर्तन का विचार होता है।''

कामताप्रसाद गुरू ने व्याकरण के बारे में कहा है, ''जिस शास्त्र में शब्दों के शुद्‌ध रूप और प्रयोग के नियमों का निरूपण होता है उसे व्याकरण कहते हैं।''

व्याकरण के कार्य को देखते हुए व्याकरण की परिभाषा इस प्रकार होती है - ''व्याकरण वह शास्त्र है, जिसमें किसी भाषा के अंगों का सैद्‌धान्तिक एवं प्रायोगिक निरूपण किया जाता है, जो संबंध भाषा के शुद्‌ध उच्चारण, लेखन और आकलन में सहायक होता है।''

व्याकरण की प्राथमिक बात शुद्‌धता है। उसका काम भाषा के प्रचलित रूप का सम्यक् ज्ञान कराना है।

बोलनेवालें के द्वारा भाषा का गलत प्रयोग न केवल हास्यास्पद होता है बल्कि उससे कई बार सम्प्रेषण में भी बाधा आती है।

भाषा और व्याकरण के अध्ययन में एक दूसरे के सहायक होते हैं। भोलानाथ तिवारी के मतानुसार, ''बिना भाषाविज्ञान की जानकारी के अच्छा व्याकरण नहीं लिखा जाता। दूसरी ओर भाषाओं के विश्लेषण में भाषाविज्ञान व्याकरण से पर्याप्त सामग्री और सहायता लेता है। अनेक रूपों में व्याकरण भाषाविज्ञान का उपकार करता है, तथा भाषाविज्ञान के लिए सामग्री संकलन करता है।

3.2.3.2 कोशविज्ञान :

भाषिक अध्ययन की महत्त्वपूर्ण शाखा कोशविज्ञान है। कोशविज्ञान में शब्द-कोश तैयार करने की प्रक्रिया का वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है। कोशविज्ञान यह अर्वाचीन शास्त्र है। भारतीय साहित्य में कई कोश उपलब्ध हैं। इस विषय के प्राचीनतम उपलब्ध ग्रंथ 'निघण्टु' हैं जिनमें वैदिक भाषा के कठिन शब्दों के पर्याय दिए गये हैं। शब्दों की व्याकरणिक वर्गीकरण इनकी उल्लेखनीय विशेषता है। निघण्टु कोश का रचनाकाल लगभग 1000 ई. पू. माना गया है। इसके बाद अमर कोश, मेदिनी कोश जैसे कई कोश उपलब्ध होते हैं। नीचे कोशों के अनेक प्रकार दिए हैं -

1) शब्द कोश / बहुभाषा कोश
2) मुहावरा कोश
3) लोकोक्ति कोश
4) व्यक्ति कोश
5) ग्रंथ कोश
6) साहित्यकार कोश
7) व्युत्पत्ति कोश
8) संदर्भ कोश
9) ज्ञान कोश
10) वर्णनात्मक कोश
11) ऐतिहासिक कोश
12) पारिभाषिक कोश
13) पर्याय कोश।

1) शब्द कोश : शब्द कोश यह कोश का लोकप्रिय प्रकार है। इसके कई भेद किए जाते हैं - एक भाषा कोश, द्विभाषा कोश, त्रिभाषा कोश। उन्नसवीं, बीसवी शताब्दियों में ज्ञान-विज्ञान की प्रगति के फलस्वरूप विश्व के भिन्न-भिन्न भाषा-भाषी लोग एकदूसरे के निकट संपर्क में आए हैं। इनमें साहित्य का आदान-प्रदान तेजी से होता रहा। बाइबल, गीता, कुरान जैसे धर्मग्रंथ तथा कालिदास, शेक्सपिअर जैसे रचनाकारों की कृतियों का विभिन्न भाषाओं में अनुवाद हुआ है। इसके लिए बड़ी संख्या में शब्दकोश निर्माण होते रहें। एक भाषा कोश में किसी भाषा के शब्दों का संग्रह किया जाता है। शब्द के पर्याय दिए जाते, शब्दों का विभिन्न तरीकों से स्पष्टीकरण किया जाता है। अंग्रेजी की 'ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी' तथा हिंदी का 'हिंदी शब्दसागर' इसी शैली के कोश है।

द्विभाषा कोश में एक भाषा के शब्दों के दूसरी भाषा में पर्याय दिए जाते हैं। हिंदी में अंग्रेजी-हिंदी कोश, मराठी-हिंदी कोश, संस्कृत-हिंदी कोश, उर्दू-हिंदी कोश जैसे कई कोश प्रकाशित हो गए हैं। अब तीन-तीन भाषाओं में भी कोश आने लगे है।

2) मुहावरा कोश : पिछले पचास वर्षों में जो अनेक प्रकार के कोश प्रकाशित हुए है, उनमें मुहावरा कोश की गणना होती है। इसमें किसी भाषा के मुहावरों का संग्रह और स्पष्टीकरण किया जाता है। मुहावरा कोश वर्णनात्मक, तुलनात्मक और ऐतिहासिक तीन प्रकार के बनाए जाते है।

3) लोकोक्ति कोश : इस कोश में अनेक भाषाओं की कहावते संग्रहीत की जाती है। हिंदी में वि. दि. नरवणे का 'भारतीय लोकोक्ति संग्रह' एक उल्लेखनीय कोश है। डॉ. कृष्णचंद्र शर्मा ने कौरवी बोली की लोकोक्तियों का संग्रह किया है।

4) व्यक्ति कोश : किसी एक व्यक्ति द्वारा अपने साहित्य में प्रयुक्त शब्दों का कोई कोश व्यक्ति-कोश कहलाता है। अंग्रेजी में शेक्सपिअर, मिल्टन, आदि के कोश इस प्रकार के हैं। हिंदी में कबीर, सूर, तुलसीदास आदि कवियों के व्यक्ति-कोश प्रकाशित हुए हैं।

5) ग्रंथ कोश : इस प्रकार के कोश किसी भाषा की विशिष्ट कृतियों को लेकर तैयार किये जाते हैं। हिंदी में 'पृथ्वीराज रासो', 'रामचरितमानस', 'बिहारी सतसई' आदि पर कई कोश प्रकाशित हुए है। अन्य भाषा में भी बाइबल, कुरान आदि कृतियों के इसी प्रकार के कोश तैयार किय गए है।

6) साहित्यकार कोश : किसी भाषा के कवियों और लेखकों के संक्षिप्त जीवनवृत्त, साहित्यिक गतिविधियाँ और लिखित कृतियों की जानकारी देनेवाले कोश इस वर्ग में आते है। हिंदी में गिरिराज शरण अग्रवाल का 'साहित्य संदर्भ कोश' इस प्रकार का नवीनतम कोश है।

7) व्युत्पत्ति कोश : किसी भाषा के शब्दों की व्युत्पत्ति की जानकारी व्युत्पत्ति कोश से मिलती है। पारिभाषिक शब्दों की व्युत्पत्ति इसका उल्लेखनीय उदाहरण है।

8) संदर्भ कोश : विशिष्ट क्षेत्र की सामग्री का परिचय देनेवाले कोश जो 'संदर्भ कोश' के नाम से जाने जाते हैं। डॉ. गोपाल का 'साहित्य शब्दकोश', डॉ. गिरिराज शरण अग्रवाल का 'साहित्य संदर्भ कोश' इस वर्ग के कोश है।

9) ज्ञान कोश : ज्ञानकोश को विश्वकोश भी कहते हैं जिसका अंग्रेजी नाम 'इनसाइक्लोपीडिया' है। इनमें ज्ञान की विभिन्न शाखाओं से संबंधित विषयों और व्यक्तियों की जानकारी दी जाती है। इसके अनेक रूप हैं जैसे - पौराणिक संदर्भ कोश, ऐतिहासिक संदर्भ कोश आदि।

10) वर्णनात्मक कोश : इस कोश में किसी एक काल में प्रयुक्त सारे शब्दों और उनके सारे अर्थो को देते हैं। हिंदी में नागरी प्रचारिणी सभा का 'हिंदी शब्दसागर' या उसका संक्षिप्त रूप 'बृहत् शब्दसागर' या 'प्रामाणिक' आदि इसी प्रकार के वर्णनात्मक कोश है। उनमें अर्थ किसी भी क्रम से न दिए जाकर मनमाने ढंग से जैसे याद आते गए। वर्णनात्मक कोश में अर्थ प्रचलन के आधारपर क्रमबद्ध किए जाने चाहिए- जो अर्थ सबसे अधिक प्रचलित हो, उसे सबसे पहले और जो सबसे क्रम प्रचलित हो उसे बाद में। वर्णनात्मक कोश में कभी-कभी अर्थ के कम या

अधिक प्रचलन के संबंध में विवाद भी खड़ा हो सकता है और ऐसी स्थिति में विवादाग्रस्त अर्थों में किसी को भी आगे-पीछे रखा जा सकता है।

11) ऐतिहासिक कोश : इसमें भाषा के केवल प्रचलित शब्दों या उसके प्रचलित अर्थों को ही न लेकर सारे शब्दों और उनके सारे अर्थों को लेते है। इस कोश में कौन-कौन शब्द किस अर्थ में प्रयुक्त हुए, ये पता चलता है। आधुनिक भारतीय भाषा का इस प्रकार का ऐतिहासिक कोश अभी निर्माण नहीं है। संस्कृत का मोनियर विलिएम्स का कोश इसी प्रकार का है। संस्कृत का इस प्रकार का एक आदर्श कोश पूना में बना है। अंग्रेजी की 'ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी' इस प्रकार का अब तक का सर्वोत्तम प्रयास है।

12) पारिभाषिक कोश : किसी भी भाषा में विभिन्न विषयों इतिहास, भूगोल, अर्थशास्त्र, भाषाविज्ञान, दर्शन, मनोविज्ञान आदि या उनकी शाखाओं प्राचीन भूगोल, सांख्यिकी, ध्वनिविज्ञान में प्रयुक्त पारिभाषिक शब्दों के कोश बन सकते हैं। हिंदी में 'संत साहित्य कोश' बड़ा उपयोगी हो सकता है।

13) पर्याय कोश : भाषा कोश का एक रूप है, जिसमें मिलते-जुलते अर्थ के शब्द एक साथ रखें जाते हैं। उनके साथ कभी-कभी विरोधी शब्दों का उल्लेख कर दिया जाता है। कवियों या लेखकों के लिए इस प्रकार के कोश उपयोगी होते हैं।

कोश निर्माण विधि / प्रक्रिया :

कोश वह संग्रह है जिसमें भाषा और अर्थ संबंधी सभी जानकारियाँ सुव्यवस्थित ढंग से प्राप्त होती है। कोश तभी उपयोगी माना जाता है, जिसमें स्त्रोत भाषा बोल जिज्ञासू अपनी आवश्यकतानुसार उचित परिचय प्राप्त कर सके। कोश बनाते समय निम्न बाते आवश्यक होती हैं -

शब्दसंग्रह : शब्दसंग्रह का निर्माण करते समय यह ध्यान देना जरूरी है कि कोश में कोई भी शब्द छूट नहीं गया है जिससे एक सुस्पष्ट कोश तैयार हो सके।

वर्तनी : इसमें वर्तनियों में स्पष्टता होनी चाहिए। कोश में शब्दों की वर्तनी को शुद्ध रूप में प्रस्तुत करना आवश्यक है।

शब्दक्रम : शब्दों का क्रम, वर्णानुक्रम, अक्षरक्रम, विषयक्रम, सूरक्रम, व्युत्पत्तिक्रम आदि कई पद्धतियों में रखा जाता है। सुगठन तथा सुव्यवस्था का विचार आवश्यक है।

व्याकरण : शब्दों के साथ उनका व्याकरण कोश में भी दिया जाय तो पाठक को साफ-साफ स्पष्ट होगा कि एक विशिष्ट शब्द संज्ञा है, सर्वनाम है या क्रिया अथवा अन्य कोई।

उच्चारण : कोश में उच्चारण - संबंधी युक्ति-युक्त निर्देश रहने चाहिए। जिससे अध्ययन कर्ता पाठक शब्दों का ठीक उच्चारण कर सकता है।

व्युत्पत्ति : शब्दों की व्युत्पत्ति के कारण शब्दों की प्रकृति और प्रत्यय को समझने में सरलता आती है।

चित्र : पर्यायवायी शब्दों को देने के बाद शब्दों की स्पष्टता नहीं होती। ऐसे समय शब्दों के अर्थ के स्पष्टीकरण के लिए कोशकार को संबंधित चित्र का प्रयोग करना आवश्यक होता है।

3.2.3.3 व्युत्पत्तिविज्ञान :

व्युत्पत्तिविज्ञान शब्दों की व्युत्पत्ति का अध्ययन करनेवाला शास्त्र है। व्युत्पत्ति शब्द का अर्थ विशेष व्युत्पत्ति है। इस शब्द की व्युत्पत्ति वि और उत् उपसर्ग युक्त 'पद' धातु से नि प्रत्यय जोडकर हुई है। शब्द के मूल को जानना, उसमें प्रत्यय के संयोग से होने वाले ध्वनि परिवर्तन का अध्ययन करना और शब्द के लंबे इतिहास में उसके स्वरूप में होनेवाले अन्य बदलावों को जानना व्युत्पत्तिविज्ञान का विषय है।

व्युत्पत्तिविज्ञान अंग्रेजी के Etymology का हिंदी पर्याय है। शब्दविज्ञान की इस शाखा का विकास पाश्चात्य और पौर्वात्य देशों में स्वतंत्र रूप से हुआ है। योरोप की ग्रीक और लैटिन भाषाओं से असंख्य शब्द बनाए गए। अंग्रेजी में भाषाविज्ञान, समीक्षाशास्त्र, मनोविज्ञान, अर्थशास्त्र, राजनीतिशास्त्र इत्यादि ज्ञानशाखाओं के पारिभाषिक शब्द इन्हीं स्तोत्रों से आए हैं।

आधुनिक युग में अंग्रेजी शब्दों के पर्याय के रूपमें सैकड़ों संस्कृत शब्दों को हिंदी में लाया गया और उससे भी अधिक नये शब्दों का निर्माण किया गया। संस्कृत भाल में 'गच्छतीती गौ', 'पततीति पत्रम्', 'सर्मतीति सर्प:' आदि व्युत्पत्तियों के द्‌वारा शब्दों को धातुओं से जोड़ने का प्रयास किया गया है। यास्क का 'निरुक्त' की व्युत्पत्तिशास्त्र का प्राचीनतम ग्रंथ है। इसमें वैदिक भाषा के शब्दों की व्युत्पत्ति दी गई है।

संस्कृत में शब्द निर्माण के लिए दो प्रकार के प्रत्यय प्रचलित थे धातुओं से लगनेवाले 'कृत' प्रत्यय और नाम शब्दोसे लगनेवाले 'तद्धित' प्रत्यय। इन शब्दों को क्रमश: कृदन्त और तद्धीत कहते थे। अकेली 'कृ' धातु से कृति, करण, कारक, कार्य, करणीय, कर्तव्य, कर, कार, क्रिया कृत्य आदि दर्जनों कृदन्त शब्द बनते थे। इन शब्दों के आदि में उपसर्ग जोडकर इस संस्कर को सैकडों तक पहुँचाया जाता।

अकेले 'कृति' शब्द से प्रकृति, उपकृति, संस्कृति, अनुकृति, निष्कृति, विकृति, सुकृति, उपकृति, प्रतिकृति आदि अनेक शब्द बनते। तल्लित प्रत्यय जोड़कर महत्ता, उदारता, औदार्य, पांडित्य, कौन्तेय, राधेय, दाशरथि, मारूति जैसे शब्द बनाए जाते।

आज हमारी भाषाओं में प्रयुक्त सबसे अधिक शब्द तद्‌भव हैं। ये संस्कृत शब्दों का परिवर्तित रूप है।

उदा. यदि हम किसी भाषा के संख्यावाचक शब्दों की व्युत्पत्ति जानने की कोशिश करें तो मूल स्त्रोत और उत्तरवर्ती ध्वनि परिवर्तनों को सूक्ष्मता से समझना होगा। 'एक' संस्कृत के 'एक' का अविकृत रूप है। दो के लिए संस्कृत में पुल्लिंग में द्वौ और स्त्रीलिंग में द्‌वे। 'तीन' का विकास पुल्लिंग 'त्रय' या स्त्रीलिंग का त्रीपिसे हुआ। चार का चत्वारि, पाँच का पंच, छह का षट्, सात का सप्त, आठ का अष्ट नौ नव और दस का दश।

व्युत्पत्तिविज्ञान, शब्दों के विकास का अध्ययन करने के लिए उनके अतीत में जाता है और उनके विभिन्न रूपों को पहुचानने की कोशिश करता है। इससे शब्दों की निर्दोष व्युत्पत्ति समझी जाती है। उदा. संस्कृत के 'कर्म'

विकसित काम शब्द का प्राकृत रूप 'कम्म'। कर्म < कम्म < काम। इस प्रकार शब्दों की संख्या बहुत बड़ी है।

जैसे, = हस्त < हत्थ < हाथ,

कर्ण < कण्ण < कन्न < कान

अक्षि < अक्खि < आख < आँख आदि।

व्युत्पत्तिविज्ञान एक उपयोगी शास्त्र है। किसी भाषा के शब्द भण्डार के विभिन्न स्त्रोतों का अध्ययन व्युत्पत्तिविज्ञान की सहायता के बिना असंभव है। दो भाषाओं के एक वर्ग के शब्दों के व्युत्पत्ति परक अध्ययन से कई रोचक निष्कर्ष निकल जाते हैं।

उदा. हिंदी और मराठी में मातृ से विकसित माई और माउ (ली) शब्द दोनों भाषाओं की मध्यकालीन स्त्रोत भाषाओं में 'ऋ' के उच्चातरण के इ और उ की ओर झुके होने का संकेत देते है।

3.2.3.4 भाषाभूगोल :

भाषाभूगोल का प्रमुख काम है भाषाओं का सीमांकन। जिसके लिए भाषिक सर्वेक्षण को आधार बनाता है। भारतीय संघ में राज्यों की रचना भाषाओं के आधारपर की गयी है। भाषिक सीमांकन की आवश्यकता राजनैतिक सीमाओं को ही भाषिक सीमाएँ मान लिया जाय किंतु भाषाभूगोल इस प्रकार के स्थूल सीमांकन को प्रामाणिक नहीं मानता। इसका कारण भाषाओं और बोलियों की सीमाएं राजनैतिक सीमाओं की तरह स्पष्ट नहीं होती। सामान्यतया दोनों भाषाओं की सीमा पर काफी बड़ा क्षेत्र ऐसा होता है, जहाँ उन भाषाओं को मिला-जुला रूप प्रचलित होता है। जैसे-जैसे हम एक भाषा के क्षेत्र से दूसरी भाषा के क्षेत्र की ओर बढ़ते है, वैसे-वैसे पहली भाषा का प्रभाव कम होता जाता है और एक बिदुंपर पहुँचकर पूर्णतया समाप्त हो जाता है। इस प्रदेश को संधिक्षेत्र कहते हैं। यह संधिक्षेत्र कितना बड़ा है इस विषय में कोई सुनिश्चित नियम नहीं बनाया जाता। मैदानी प्रदेशों में संधिक्षेत्र अधिक विस्तृत होता है। सघन जनसंख्या वाले प्रदेशों में यह विस्तार और बढ़ जाता है। इसके विपरीत नदियों, वन-पर्वतों वाले क्षेत्रों में संधिक्षेत्र छोटा होता है।

कालगत और स्थानगत भाषिक परिवर्तन के दो प्रकार होते हैं। कालगत परिवर्तन में वैदिक भाषा से लेकर आधुनिक हिंदी तक की विकास यात्रा का परिणाम है। स्थानगत परिवर्तन में आधुनिक प्रादेशिक भाषाओं के विभिन्न रूप आते हैं। भाषा के कालगत विकास का अध्ययन ऐतिहासिक भाषाविज्ञान का विषय है। स्थानगत परिवर्तन का अध्ययन भाषाभूगोल का विषय है। याने भाषाभूगोल भाषाओं और बोलियों के सीमा निर्धारण तथा तत्संबंधी बातों का अध्ययन करनेवाला विज्ञान है।

बोलियों की सीमा रेखा और संधि क्षेत्र को अंकित करना भाषाभूगोल की एक शास्त्रीय पद्धति हैं, जिसे बोली मानचित्रावली के निर्माण की पद्धति कहते है। यह कर्म सर्वेक्षण के द्वारा किया जाता है। संधिक्षेत्र को अंकित करने की एक पद्धति में खड़ी और आड़ी रेखाओं से दोनों भाषाओं का क्षेत्र दिखाया जाता है और संधि क्षेत्र में ये रेखाएँ एक दूसरी को काटती है और वह क्षेत्र ग्राफ पेपर की सी वर्गाकार आकृतियों से अंकित हो जाता है।

भाषाभूगोल के कार्य या उपयोगिता (प्रयोजन) :

'भाषाविज्ञान और हिंदीभाषा का स्वरूप-विकास' इस ग्रंथ में डॉ. देवेंद्रप्रसाद सिंह ने भाषाविज्ञान की उपयोगिता निम्न प्रकारों में स्पष्ट की है -

सीमानिर्धारण : संसार में भाषा की संख्या लगभग तीन हजार है। इन भाषाओं को प्रमुख भाषा परिवारों में वर्गीकृत भी किया गया है। भाषाओं के वर्गीकरण के चाहे जितने प्रकार बनाएँ - सब की उपयोगिता है। भाषाओं के अध्ययन की सुविधा संसार की सैकडों भाषाएँ सीमा की दृष्टि से एक दूसरे के आस-पास पडती है और एक दूसरे को प्रभावित भी करती है, कोई भाषा अपनी पार्श्ववर्ती भाषा से इतनी प्रभावित हा जाती है, उसमें निजीरूप लगभग परिवर्तित हो गया सा है। जैसे हिंदी बंगला की सीमा जहाँ मिलती है, हिंदी पर बंगला का प्रभाव है, वहाँ निश्चय करना कठिन हो जाता कि यह हिंदी है या बंगला? व्यापक रूप में संसार की भाषाओं के साथ यह समस्या है और इस दृष्टि से 'भाषाभूगोल' इस समस्या का समाधान प्रस्तुत करता है। तुलनात्मक आधार यह निश्चय कर देता है कि किस भाषा की सीमा कहाँ तक मानी जाए।

महत्त्व निर्धारण : सभी भाषाएँ समान महत्त्व की नहीं होती। अंग्रेजी के समक्ष संसार की सभी भाषाएँ महत्त्व की दृष्टि से गौण हैं। हिंदी का जितना महत्त्व है, उतना संथाली का नहीं। भाषाओं का महत्त्व निर्धारण अनेक दृष्टियों से होता है, जिनमें प्रमुख है राजनीतिक दृष्टि, सामरिक दृष्टि, आर्थिक दृष्टि, सांस्कृतिक दृष्टि, समाजशास्त्रीय दृष्टि, कूटनीति दृष्टि आदि। भाषाओं का महत्त्व निरूपित करना भाषा भूगोल का अनिवार्य कार्य है।

सूचक : भाषाभूगोल की सीमा में भाषाविज्ञान के सभी अंगों का अध्ययन आता है। भाषा में परिवर्तन पार्श्ववती, भाषाओं के प्रभाव से भी होता है। कोई भाषा किस प्रकार पार्श्ववर्ती भाषा को प्रभावित करती है यह सूचना भी भाषाभूगोल की सीमा में समाहित है। किसी भी देश के लिए राष्ट्रीय जागरण, सांस्कृतिक जागरण बहुत ही महत्त्व रखता है। राष्ट्रीय और सांस्कृतिक जागरण का अविर्भाव किसी देश में भाषाविशेष या भाषाओं के कारण होता है। भारत का राष्ट्रीय दृष्टिकोन हिंदी और भारत की दूसरी भाषाओं में भलेही व्यक्त हुआ हो, लेकिन इसका आविर्भाव अंग्रेजी के माध्यम से ही हुआ है। भाषाभूगोल का ही कार्य यह बताता है कि किन घटनाओं, किन-किन ऐतिहासिक कारणों के कारण भाषा में परिवर्तन हुआ है। किसी भाषा के प्राचीन रूप, मध्यकालीन रूप और आधुनिक रूप में क्या और कितने परितर्वन हुए हैं? भाषा की प्रगति के कौन-कौन से साधक कारण हैं और भाषा विकास के अवरोधक कारण कौन-कौन से हैं - यह सूचना भी भाषाभूगोल के द्‌वारा ही प्रस्तुत की जाती है।

भाषा गणना एवं जनगणना : किसी भाषा के बोलने वालों की कितनी संख्या है - यह भाषिक जनगणना है। संसार में कितनी भाषाएँ हैं - यह भाषा गणना है। संसार में 2796 भाषाएँ हैं या लगभग तीन हजार भाषाएँ है - यह भूगोल के आधारपर ही बताना संभव हो सका है। संसार में चीनी भाषा बोलनेवालों की संख्या सबसे अधिक है। अंग्रेजी दूसरे स्थान पर है। जनसंख्या की दृष्टि से हिंदी का स्थान संसार में तीसरा है। भारत में हिंदी बोलनेवालों की संख्या सर्वाधिक है। सामरिक, राजनीतिक, धार्मिक, व्यापारिक दृष्टिसे किसी भाषा का महत्त्व निर्धारण, भाषा बोलनेवालों की संख्या का गणित, संसार की भाषाओं की सीमा भाषाओं की संख्या और उनका सीमा निर्धारण भाषाभूगोल का प्रयोजन है।

3.2.3.5 समाजभाषाविज्ञान :

अर्वाचीन ज्ञान समाज भाषाविज्ञान की एक शाखा है। जिसका जन्म पाश्चात्त्य देशों में चार-पाच दशक पहले हुआ। समाज भाषाविज्ञान में सामाजिक संदर्भों को कटकर भाषा का अध्ययन नहीं हो सकता। परंपरागत भाषाविज्ञान भाषा को वाक्यों का समूह मानता है। वाक्य पदों के समूह से बनते हैं। पद शब्द और प्रत्यय आदि से संयोग से तथा शब्द ध्वनियों के संयोग से। परंतु इतना मानना पर्याप्त नहीं है।

मनुष्य केवल हाथ-पाँव और अन्य अवयवों का समूह मात्र नहीं इससे बढ़कर मनुष्य एक सजीव प्राणी है। उसी प्रकार भाषा ध्वनियाँ, पदों और वाक्यों का समूह नहीं, समाज मानस की अभिव्यक्ति है।

भाषा प्रारंभ से सामाजिक वस्तु है। उसके द्‌वारा हम मानव समुदाय अपने भाव या विचार ही अभिव्यक्त नहीं करते तथापि अपने संपूर्ण सामाजिक जीवन को साकार करते हैं। हर समाज के संस्कार उसकी भाषा में संबंधित होते हैं। उदा. मानव मात्र के प्रति पारिवारिकता का भाव भारतीय संस्कृति की अन्यतम विशेषता है। पाश्चात्य संस्कृति में हम इसका अभाव पाते हैं कोई भी भारतीय संस्कृति का व्यक्ति अपने माता-पिता की आयु के बुजुर्गों को मिस्टर सक्सेना या मिसेस शर्मा कहकर संबोधित नहीं करता। वे उसके लिए 'चाचा जी' या 'चाची जी' है। एकाद अपरिचित व्यक्ति के लिए हम 'भाई साहब' या 'बहनजी' का प्रयोग करते हैं। इसी विशेषता के कारण स्वामी विवेकानंद के 'भाइयों और बहनों' संबोधन ने सर्वधर्म सम्मेलन के श्रोताओं को मोह लिया था। यह व्यापक परिवार - भाव हमारी भाषाओं में सर्वत्र प्रतिबिंबित होता है।

शिष्टाचार के बारे में प्रत्येक भाषिक समाज में अपनी-अपनी परंपराएँ है। आदर सूचक 'जी', 'बहुवचन का प्रयोग, पति के लिए 'आर्यपुत्र' का प्राचीन संबोधन, राजा के लिए 'स्वामी' या 'अन्नदाता' जैसे शब्द सामाजिक परंपराओं ने ही दिए हैं। अंग्रेजी में सर, मॅडम, एक्सक्यूज मी, आइ एम सॉरी, थैंक्यू प्रयोग पाश्चात्य संस्कृति से आए हैं और भारतीयता में ढ़लकर 'क्षमा कीजिए', 'धन्यवाद', 'मुझे खेद है' जैसे बन गए हैं। मुस्लिम संस्कृति में 'तशरीफ लाइए', 'तशरीफ रखिए' आदि बातें कहीं मूलरूप में तो कहीं 'पधारिए' और 'बिराजिए' बनकर हिंदी में आ गयी है।

3.2.3.6 उपयोजित भाषाविज्ञान :

उपयोजित भाषाविज्ञान को अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान भी कहा जाता है। अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान, भाषाविज्ञान का प्रायोगिक क्षेत्र है। उपयोजित भाषाविज्ञान का प्रारंभ सन् 1950 ई. के बाद पहली बार संयुक्त राष्ट्र अमेरिका और ब्रिटेन दोनों देशों में साथ-साथ हुआ।

सन 1956 ई. में एडिनबर्ग विश्वविद्यालय में जे. सी. कैटफोर्ड के निर्देशन में उपयोजित भाषाविज्ञान के स्कूल की स्थापना की गयी। इसके बाद सन् 1957 ई. में चार्ल्स फर्ग्युसन के द्‌वारा वॉशिंग्टन डी. सी. में उपयोजित भाषाविज्ञान का अध्ययन केंद्र स्थापित हुआ। एडिनबर्ग के अनुसार आरंभ में उपयोजित भाषाविज्ञान को उपभोक्ता के रूप में ही देखा गया था न कि भाषा-सिद्‌धान्त के उत्पादक के रूप में। तब उपयोजित भाषाविज्ञान की सक्रियता का सबक भाषिक अनुसंधान की प्राप्तियों की अर्थव्याख्या करना था। उपयोजित भाषाविज्ञान अपने क्षेत्र में केवल भाषा-शिक्षण को समाहित नहीं कर शैलीविज्ञान, भाषिक कमियाँ और अनुवाद को भी समाहित करने की दृष्टि से

एक व्यापक समझ के लिए प्रतिबद्ध है। तर्क-वितर्क करनेवाले भाषाविज्ञानी क्रिस्टल ने यह प्रस्तावित किया कि न केवल भाषिक अनुसंधान की प्राप्तियों को इन क्षेत्रों में प्रासंगिक बनाया जाए, बल्कि ऐसा इनके सिद्धान्तों और शोध-प्रविधियों के साथ भी किया जाए।

'भाषाविज्ञान और हिंदी भाषा का स्वरूप-विकास' इस ग्रंथ में डॉ. देवेंद्र प्रसाद सिंह उपयोजित भाषाविज्ञान के बारे में लिखते है कि, उपयोजित भाषाविज्ञान के अंतर्गत अनुवादकार्य, भाषाशिक्षण, भाषासर्वेक्षण, उच्चारणशुद्धि, पुस्तकों का निर्माण कार्य जैसे - कोश निर्माण, पाठालोचन, व्याकरण आदि आता है। भाषा संबंधी व्यावहारिक ज्ञान से इस विधि का सीधा संबंध है। देशी और विदेशी भाषा पढ़ने पढ़ाने की व्यवस्था कैसे की जाए, दूसरी भाषाओं से अनुवाद की कठिनाइयों से कैसे बचाया जाय, प्रशासनिक शब्दावली, वैज्ञानिक शब्दावली, संपादन कार्य आदि व्यावहारिक बातें इसी के अंतर्गत आती हैं। टाइप की सुविधा के खयाल से वर्णों को कैसे लिखा जाय? 'ख' और 'ख' को कैसे अंतर किया जाय अर्थात लिपि की कठिनाइयों पर विचार करना उपयोजित/प्रायोगिक भाषा पद्धती का ही काम है।

उपयोजित भाषाविज्ञान मानव भाषा व्यवहार के प्रतिरूपण के व्यावहारिक परिणाम को संकेन्द्रित करता है। इस क्षेत्र में प्रविधियां तकनीक उपकरण और अनुप्रयोग भाषा अभियांत्रिकी अथवा मानवभाषा-प्रौद्योगिक जैसे पदों के अंतर्गत सन्निविष्ट हो जाते हैं। उपयोजित भाषा व्यवस्थाएँ मानवीय योग्यता को प्राप्त करने के काफी दूर है। पर उनके पास असंख्य संभावित उपयोग अनुप्रयोग हैं। इनका लक्ष्य मानव-भाषा के ज्ञानवाले कोमलांगी (Software) उत्पादों की रचना करना है। इस प्रकार उपयोजित भाषाविज्ञान कार्यरत होता है।

3.2.3.7 अभिकलनात्मक भाषाविज्ञान :

अभिकलनात्मक भाषाविज्ञान और भाषाविज्ञान दो परस्पर सहयोगी ज्ञानानुशाखा है। यह मानव शाखा की क्षमता या संगणात्मक पहलुओं में सरोकार रखता है। यह संज्ञानात्मक विज्ञान से जुड़ा है और कृत्रिम प्रतिभा के क्षेत्र को कुछ अंश तक ढ़क लेता है। कृत्रिम प्रतिभा संगणक विज्ञान की वह अद्यतन शाखा है जो मानवविज्ञान के संगणकीय प्रतिमानों के लिए प्रयत्न करती है। अभिकलनात्मक भाषाविज्ञान के सैद्धांतिक और अनुप्रयुक्त दो घटक तत्त्व है।

अभिकलनात्मक भाषाविज्ञान का विवेचन प्राय: संज्ञानात्मक प्रतिमान के क्षेत्र में किया जाता है। यह भाषिक ज्ञान विषय में, औपचारिक सिद्धान्तों पर विचार करता है जो कि किसी भी मनुष्य की आवश्यकता भाषा को प्रजनित करने और उसे समझने की होती है। आए दिनों यह सिद्धान्त जटिलता के उस अनुपात (ऱ्हास, जटिलता) तक पहुँच चुका है। उसे अभिकलनात्मक भाषाविज्ञान के अनुसार ही व्यवस्थित किया जाता है। अभिकलनात्मक भाषावैज्ञानिक औपचारिक प्रतिमानों को मानव-भाषा मनीषा के अनुरूप पहलुओं के रूप में विकसित करते हैं, साथ ही उन्हें अभिकलनात्मक कार्यक्रम की तरह लागू करते हैं। ये योजनाएँ सिद्धान्तों के और अधिक विकास तथा मूल्यांकन के लिए आधार को रचती है, संघटित करती है। भाषिक सिद्धान्तों के साथ-साथ संज्ञानात्मक मनोविज्ञान की उपलब्धि भाषिक क्षमता को अनुरूपित करने हेतु एक महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करती है।

अभिकलनात्मक भाषाविज्ञान मानव भाषा व्यवहार के प्रतिरूपण के व्यावहारिक परिणाम को संकेन्द्रित करता है। अभिकलनात्मक भाषाविज्ञान के क्षेत्र में प्रविधियाँ तकनीक, उपकरण अनुप्रयोग भाषा अभियांत्रिकी अथवा मानवभाषा प्रौद्योगिकी जैसे पदों के अंतर्गत समाविष्ट हो जाते हैं। अभिकलनात्मक भाषाविज्ञान का उपयोग मानव-भाषा के ज्ञानवाले कोमलांगी (Software) उत्पादों की रचना करना है। इस प्रकार के उत्पाद हमारे जीवन को परिवर्तित करते जा रहे हैं। मानव और मशीन के पारस्परिक प्रभाव को उन्मत्त करने के लिए वे तत्काल अपेक्षित हैं, क्योंकि उसकी मुख्य रूकावट एक साम्प्रेषणिक समस्या है।

आजकल के संगणक हमारी भाषा को नहीं समझ पाते दूसरी ओर अभिकलनात्मक भाषा को सीखना कठिन है। क्योंकि वे मानव-विचार की संरचना को सुसंगतता प्रदान नहीं कर पाते। यदि भाषा को मशीन समझती है और विमर्श का क्षेत्र बहुत प्रतिबंधित है, तो मानव-भाषा का व्यवहार कोमलांग (Software) की स्वीकृति और व्यवहारकर्ता की उर्वरता (जिससे बहुत से विचार निकलते) को बढ़ा सकता है। आज जो अन्तरतंत्र (Internet) का तेजी से विकास हुआ है और सूचना-समाज का जो हमारे सामने आविर्भाव हुआ है, उन सबने भाषा-प्रौद्योगिकी उत्तेजक नयी चुनौतियाँ पेश कर दी हैं। नया मीडिया लेखिमिकी (Graphics) ध्वनि (Sound) और फिल्म (Movie) के पाठ को संयुक्त कर देता है। बहुमीडियाई सूचनाओं का संपूर्ण संसार केवल भाषा के द्वारा संरचित होता, अनुक्रमित होता तथा मार्गनिर्देशन करता है।

वैश्विक तंत्र पर बहुभाषायी उपकरणों की सहायता के साथ स्वामित्व अधिकार प्राप्त किया जाता है। एक से दूसरी भाषा की सूचनागत व्यवस्थाएँ और ज्ञान-प्रबंधन व्यापार, शिक्षा और अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग के लिए भाषिक प्रतिबंधों को जीत लेते हैं। संगणक भाषाविज्ञान के (अभिकलनात्मक भाषाविज्ञान) बहोत से विद्यार्थियों और प्रयोक्ताओं के लिए इस ज्ञानानुशासन के प्रति विशेष आकर्षण मानविकी, प्राकृतिक और व्यावहारिक ज्ञान तथा अभियांत्रिकी के क्षेत्र का कुशल संयोगीकरण है। वैज्ञानिक अभिगम और उसकी अनुप्रयोगी तकनीकें भाषाविज्ञान, अभिकलनात्मक विज्ञान और मनोविज्ञान से आती है। कुछ विश्वविद्यालयों में यह विषय अभिकलनात्मक विज्ञान (संगणक विज्ञान) के अंतर्गत पढ़ाया जाता है। तो कुछ दूसरे विश्वविद्यालयों में इसका अध्यापन भाषाविज्ञान या संज्ञानात्मक विज्ञान के अधीन करवाया जाता है। इसके अतिरिक्त उन परियोजनाओं और विभागों के अंतर्गत भी इसे पढ़ाया जाता है। जो अभिकलनात्मक भाषाविज्ञान के प्रति पूरी तरह निष्ठावान है, भले ही उनकी संख्या कम हो पर यह उभर रही संख्या है।

अभिकलनात्मक भाषाविज्ञान का उद्देश्य :

भाषा का निर्माण और उसकी समझ के लिए संगणक-व्यवस्थाओं का अध्ययन ही संगणक-भाषाविज्ञान (अभिकलनात्मक भाषाविज्ञान) है। अभिकलनात्मक भाषाविज्ञान का उद्देश्य पांडेय शशिभूषण शीतांशु के अनुसार निम्नलिखित है -

(1) मशीनी अनुवाद (Machine Translation)

(2) सूचना पुन:प्राप्तिसुधार (Information Retrievel)

(3) मनुष्य मशीन अन्तरापृष्ठ (Man Machine Inferfaces)

अभिकलनात्मक भाषाविज्ञान में व्यापक तौर पर वैविध्य प्राप्त होता है, पर विशिष्ट प्रायोगिक व्यवस्थाओं के विकास का प्राथमिक अभिप्रेरण (किसी दिशामें लगाना) वहाँ सदैव बना रहा है, जिसमें स्वाभाविक भाषा का समावेश रहता है। उपर्युक्त तीनों उद्दिष्ट दिशायें इसके अंतर्गत आती हैं।

(1) मशीनी अनुवाद (Machine Translation) **:** सन 1950 ई. के दशक के उत्तरार्ध में मशीनी अनुवाद का आरंभ हुआ। इसमें जो कठिनाइयाँ समाविष्ट थीं, उनका भान लोगों को कम था और उनकी आशाएँ बहुत ऊँची थी। मशीनी अनुवाद के क्षेत्र में आनेवाली समस्याओं ने भाषाविज्ञान और संगणक भाषाविज्ञान (अभिकलनात्मक भाषाविज्ञान) दोनों ही क्षेत्रों में ऐसे कार्यों को प्रोत्साहित किया। इनमें बहुत आरंभिक पारजर (Parser) का भी समावेश था। सन् 1960 ई. के दशक के आरंभ में इस दिशा में बड़े पैमाने पर काम किया गया। पर सफलता का अभाव रहा। यह बोध सामने आया कि, पूर्ण स्वचालित उच्च गुणात्मक अनुवाद पाठ की समझ से जुड़े बुनियादी काम के बिना संभव नहीं है। युरोप और जापान में संगणक भाषाविज्ञान के क्षेत्र में ठोस योजनाएँ चल रही है। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में संगणक-भाषाविज्ञान की चालू योजनाओं में कुछ योजनाएँ मशीनी अनुवाद के नाम आती है।

(2) सूचना पुन:प्राप्ति सुधार (Information Retrievel) **:** सूचना या सुधार भाषा रूपों, पुस्तकों, शोध-पत्रों, प्रतिवेदनों में दिखाई देने लगता है। किसी भी जिज्ञासा या पूछताछ के उत्तर में किसी तथ्यांक-संग्रह से प्रासंगिक पाठ को खींच निकालने की व्यवस्था थी। तब पाठ को, पाठ के व्यवहार को पूछताछ का प्रत्यक्ष उत्तर देने के लिए या तो प्रदर्शित किया जाता अथवा उसका व्यवहार, किया जाता विशेषत: तकनीकी एवं वैज्ञानिक प्रतिवेदनों वाले पाठ पूरी तरह जटिल है, इस क्षेत्र में कम सफलता प्राप्त हुई है। स्वचल सूचना पुन: प्राप्ति में अब कुछ अनुसंधान दल जुडे हुए हैं।

(3) मनुष्य मशीन अन्तरापृष्ठ (Man Machine Inerfaces) **:** मानव की स्वाभाविक भाषा सर्वाधिक सुविधाजनक सामने आती है। इसमें तथ्यांक-आधारित सूचना पुन:प्राप्ति और आदेश भाषा के अनुप्रयोगों के साथ-साथ परस्पर प्रभावित करनेवाली व्यवस्था भी होती है। वाक्य-रचनागत और अर्थगत दोनों आधारों पर, सूचना पुन: प्राप्ति और मशीनी अनुवाद के लिए संसाधित होनेवाले पाठों की अपेक्षा होती है। अनुप्रयोग का परस्पर प्रभाव डालनेवाला स्वभाव व्यवस्था को व्यवहार्य बनाने के लिए अनुमत कर देता है। अभिकलनात्मक भाषाविज्ञान ने सन् 1970 ई. के दशक के आरंभ से काम करनेवाले सर्वाधिक अन्तरापृष्ठों को समाविष्ट किया है।

अमेरिका के न्यूयॉर्क विश्वविद्यालय में अभिकलनात्मक भाषाविज्ञान के उपकरणों को विकसित किया गया है। इसको केंद्र में रखकर कुछ शैक्षणिक सामग्री भी तैयार की गई है। इनमें एक छोटीसी प्रश्नोत्तर व्यवस्था भी साम्मिलित है, जो वाग्भागीकरण (Parsing), रूपान्तरक विश्लेषक, अर्थीम नियंत्रण, प्रमाणक विश्लेषण तथा औपचारिक तर्थशास्त्र की व्याख्या करती है।

अभिकलनात्मक भाषाविज्ञान के क्षेत्र में वाक्य रचनात्मक विश्लेषण और अर्थ विश्लेषण का महत्त्व है।

वार्तालाप-विश्लेषण : वार्तालाप स्वाभाविक भाषा संदेशों को दो व्यक्तियों के बीच अथवा मनुष्य और

मशीन के बीच किया जानेवाला विनिमय है। अभिकलनात्मक भाषाविज्ञान के लिए इसका अध्ययन सैद्धांतिक और अनुप्रायेगिक दोनों दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है।

अभिकलनात्मक भाषाविज्ञान पर राल्फ ग्रीश मैन (Ralph Grish Man) की Computational Linguistics and Introduction पुस्तक महत्त्वपूर्ण है। भाषा के संगणक-विश्लेषण को यह पुस्तक वाक्य-संरचनागत विश्लेषण, अर्थीय विश्लेषण, पाठ-विश्लेषण और स्वाभाविक भाषा-प्रजनन की समस्याओं के संदर्भ में अभिगमों की श्रृंखला प्रस्तुत करती है। ऐसा काई भी व्यक्ति, जिसे संगणक विज्ञान, साथ ही गणित की पृष्ठभूमि वाली जानकारी प्राप्त है। वह इससे लाभान्वित हो सकता है।

3.3 (क) स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न :

1. व्याकरण को बहुत शक्तिशाली माना जाना भाषा के लिए कैसा संकेत माना जाता है?
   अ) शुभ संकेत ब) अशुभ संकेत क) पूर्व संकेत ड) इच्छाबोधक

2. किसके दबाव के कारण भाषा का स्वाभाविक विकास अवरुद्ध होता है और उसकी परिभाषा मृत प्राय होती है?
   अ) व्याकरणिक ब) ऐतिहासिक क) सामाजिक ड) भौगोलिक

3. व्याकरण वर्णनात्मक विज्ञान है, वह भाषा के किस स्वरूप को वर्णित करता है?
   अ) वर्तमान ब) भूत क) भविष्य ड) आधुनिक

4. भाषा के अंग-प्रत्यंग का विश्लेषण हिंदी के किस कोश से होता है?
   अ) लोकोक्ति ब) मुहाँवरा क) शब्दकोश ड) विश्वकोश

5. कोशविज्ञान के बारे में प्राचीनतम जानकारी किससे मिलती है?
   अ) तुलनात्मक व्याकरण ब) भाषाभूगोल
   क) निघण्टु ड) समाजभाषाविज्ञान

6. हिंदी में वि. दा. नरवणे ने किसका संग्रह किया?
   अ) ज्ञानकोश ब) भारतीय लोकोक्ति क) पारिभाषिक ड) मुहावरा

7. कोश का सबसे लोकप्रिय प्रकार कौनसा है जिसमें एकभाषा, द्विभाषा, त्रिभाषा कोश होते हैं?
   अ) बहुभाषा कोश ब) ग्रंथकोश क) संदर्भकोश ड) शब्दकोश

8. साहित्यकार की कृतियों में प्रयुक्त शब्दों का वैज्ञानिक विधि में स्पष्टीकरण किसमें होता है?
   अ) वर्णनात्मक कोश ब) व्यक्तिकोश क) संदर्भकोश ड) व्युत्पत्तिकोश

9. विशिष्ट क्षेत्र की सामग्री का परिचय देनेवाले कोश को क्या कहते हैं?
   अ) संदर्भकोश ब) ऐतिहासिक कोश क) साहित्यकारकोश ड) पारिभाषिककोश

10. हिंदी में 'साहित्य संदर्भ कोश' इस नवीनतम कोश का निर्माण किसने किया?

अ) गिरिराज माथुर ब) गिरिराज अगरवाल क) देवेंद्रकुमार ड) श्रवणकुमार

11. प्रत्यय के संयोग से होनेवाले ध्वनिपरिवर्तन का अध्ययन किसमें होता है?

अ) व्युत्पत्तिविज्ञान ब) समाजविज्ञान क) भूगोलविज्ञान ड) भाषाविज्ञान

12. व्युत्पत्तिविज्ञान - Etymology का हिंदी पर्याय है इसका विकास कहाँ हुआ?

अ) पाश्चात्य और पौर्वात्य ब) भारत और युरोपीय

क) भारत और युनान ड) भारत और ब्रिटन

13. प्राचीन ग्रंथ 'निरुक्त' व्युत्पत्तिशास्त्र इस के रचनाकार कौन है?

अ) बेंजामिन ब) यास्क क) यार्क ड) मार्कर

14. भारतीस संघ में राज्यों की रचना किस पर आधारित है?

अ) समाज ब) जनसंख्या क) भाषाओं ड) इतिहास

15. अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान किस प्रकार का क्षेत्र है?

अ) प्रयुक्त ब) प्रायोगिक क) उपयोगी ड) ज्ञानप्रयोगी

16. सन् 1957 ई. में चार्ल्स फर्ग्युसन के द्वारा वाशिंग्टन डी. सी. में किस भाषाविज्ञान का अध्ययन-केंद्र स्थापित किया?

अ) सज्ञानात्मक ब) डेकार्टवादी क) अनुप्रयुक्त ड) संरचनात्मक

17. अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान को उपभोक्ता के रूप में किसने देखा?

अ) एडिनबर्ग ब) स्पोलस्की क) विड्डोसन ड) गुम्पर्ज

18. संगणक-भाषाविज्ञान को किस नाम से पुकारा जाता है?

अ) उपयोगी ब) अभिकलनात्मक क) विवेचनात्मक ड) गणक

19. अभिकलनात्मक भाषाविज्ञान में किस अनुप्रयोगों का उपयोग होता है?

अ) समाजीकरण ब) मानवीकरण क) अध्यापन ड) कोमलांगी

20. मशीनी अनुवाद का प्रयोग कबसे आरंभ हुआ?

अ) 1940 ई. ब) 1950 ई. क) 1960 ई. ड) 1970 ई.

3.4 शब्दार्थ, संदर्भ, टिप्पणियाँ :

Linguistics = भाषाविज्ञान

Comparative Grammar = तुलनात्मक व्याकरण

पठति = पठइ - पढ़इ - पढ़ै (बोलियों में प्रचलित)

उष्ट्र - भैसे के अर्थ में जो उत्तरवर्ती काल में ऊँट वाचक

लुंचित = (सम्मान सूचक शब्द) जो धार्मिक विद्वेष के कारण 'लुच्चा' जिसका अर्थ हुआ चरित्रहीन

एककालिक भाषाविज्ञान = केवल एक भाषा की एक काल बिंदु की इकाइयों का वर्णन करता है।

निरुद्देश्य = बिना उद्देश्य का

तुलनात्मक अध्ययन = (I) स्थानगत, (II) कालगत

स्थानगत = एक ही युग में प्रचलित दो भाषाओं की तुलना जैसे - संस्कृत और हिंदी की तुलना

कालगत = दो विभिन्न युगों की भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है उसे कालगत अध्ययन

इस्कूल = (अशुद्ध)   स्कूल (शुद्ध)

इस्टेशन = (अशुद्ध)   स्टेशन (शुद्ध)

अनभिज्ञ = जिन्हें पता नहीं है।

उलटबासियाँ = ऐसी कविता जिसमें सामान्य रूप से उलटी बात कही गई हो।

तुतलाहट = अस्पष्ट उच्चार करना, अस्पष्ट एवं रुकरुक कर बोलना।

वैयाकरण = व्याकरणकर्ता

निघण्टु = कोशविज्ञान के संदर्भ में प्राचीनतम उपलब्ध ग्रंथ जिसमें वैदिक भाषा के कठिन शब्दों के पर्याय दिए गए है।

Etymology = व्युत्पत्तिविज्ञान

संधिक्षेत्र = पहली भाषा का प्रभाव कम होकर एक बिंदु पर पहुँचकर पूर्णतया समाप्त हो जाता है इस प्रदेश को संधिक्षेत्र कहते हैं।

आर्यपुत्र = पति के प्राचीन संबोधन

Machine Translation = मशीनी अनुवाद

Information Retrievel = सूचना पुन: प्राप्ति सुधार

Man Machine Inferfaces = मनुष्य मशीन अन्तरापृष्ठ

Parsing = वाग्भागीकरण, पदव्याख्या

Descriptive linguistics = वर्णनात्मक भाषाविज्ञान

Philology = भाषाशास्त्र

3D Printer = टेलिप्रिंटर

Syntax = वाक्यविज्ञान

Morphology = रूपविज्ञान

Wordology = शब्दविज्ञान

Phoneties = ध्वनिविज्ञान

Sementics = अर्थविज्ञान

Comparactive Synatax = आपेक्षिक विन्यास तत्त्व

वाक्यपदीय = वाक्यों और पदों के अन्तसंबंध को परिभाषित करता है।

Software = कोमलांगी

Internet = अन्तरतंत्र

Graphies = लेखिमिकी

3.5 सारांश :

भाषाविज्ञान यह शब्द 'भाषा' और 'विज्ञान' इन दो शब्दों के मेल से निर्माण हुआ है। हम सोचते हैं, विचार करते हैं और अपने भाव-भावनाओंको दूसरों के सामने प्रकट करते हैं। वह विचार विनिमय भाषा के माध्यम से करते हैं। विज्ञान का अर्थ होता है 'विशिष्ट ज्ञान' किसी वस्तु की सामान्य जानकारी को हम 'ज्ञान' कहते और वस्तु की समस्त जानकारी हासिल करना 'विशेष ज्ञान' कहलाता है। मानव के द्वारा व्यवस्थित और विश्लेषक पद्धती से सोचने की उपलब्धि विज्ञान है। विविध विद्वानोंने भाषाविज्ञान की व्याख्या, परिभाषा और स्वरूप स्पष्ट करने का प्रयत्न किया गया है।

भाषाविज्ञान के अध्ययन की दिशाएँ - ऐतिहासिक, तुलनात्मक, संरचनात्मक, प्रायोगिक और वर्णनात्मक पद्धति से मिलती है। भाषा की ध्वनियाँ, रूप और अन्य भाषिक इकाइयों का विकासात्मक अध्ययन ऐतिहासिक भाषाविज्ञान से, तुलनात्मक भाषाविज्ञानों में दो या दो से अधिक भाषाओं की तुलना की जाती है। तुलनात्मक अध्ययन का उद्देश्य उन भाषाओं की समानताओं और असमानताओं से रेखांकित करना होता है। तुलनात्मक अध्ययन दो रूपों से होता है स्थानगत और कालगत। तुलनात्मक भाषाविज्ञान एक ही परिवार तक सीमित नहीं होता। वर्णनात्मक भाषाविज्ञान न तो किसी भाषा के अतीत में जाता है और न ही उसकी किसी अन्य भाषा से तुलना करता है। वह तो केवल एक भाषा की एक काल की इकाइयों का वर्णन करता है। इसीलिए इसे एककालीक भाषाविज्ञान भी कहते है।

भाषाविज्ञान की आवश्यकता एवं महत्त्व के बारे में कहा जाता है कि, ज्ञान की उपलब्धि, व्यवहार में प्रयोग के हेतू आवश्यक होता है। व्याकरण, कोशविज्ञान, व्युत्पत्तिविज्ञान, भाषाभूगोल, समाजभाषाविज्ञान, उपयोजित भाषाविज्ञान, अभिकलनात्मक भाषाविज्ञान के सहारे से भाषाविज्ञान की सहयोगी शाखाओं पर प्रकाश डाला जाता है।

3.6 स्वयं अध्ययन प्रश्नों के उत्तर :

(अ)

1) वैज्ञानिक अध्ययन

2) ध्वनियों, शब्दों, पदों

3) भाषाविज्ञान
4) व्याकरण
5) व्याकरण
6) अष्टाध्यायी
7) भट्टोजिदीक्षित
8) वाक्यपदीय
9) सम्यक् और निर्दोष
10) पुलिसमैन
11) भाषा में
12) कला का संबंध
13) कामता प्रसाद गुरू
14) 1000 ई. पू.
15) 18 वीं
16) श्यामसुंदर
17) बाबूराम सक्सेना
18) विवेचन
19) भोलानाथ

(ब)

1) बोलचाल और ग्रामीण
2) ऐतिहासिक भाषाविज्ञान
3) सम्मान सूचक
4) चरित्रहीन
5) सर विलियंम्स जोन्स
6) तुलनात्मक अध्ययन
7) ग्रिम ग्रॉसमेन
8) स्थानगत और भावगत
9) स्थानगत
10) युगों की
11) तुलनात्मक
12) अतीत और तुलना
13) संरचनात्मक
14) व्यावहारिक
15) चिकित्सक
16) हसी-मजाक
17) वेदों का
18) प्रागऐतिहासिक
19) वाक्

(क)

1) अशुभ संकेत
2) व्याकरणिक
3) वर्तमान
4) विश्वकोश
5) निघण्टु
6) भारतीय लोकोक्ति कोश
7) शब्दकोश
8) व्यक्तिकोश
9) संदर्भकोश
10) गिरिराज शरण अग्रवाल
11) व्युत्पत्तिविज्ञान
12) पाश्चात्य और पौर्वात्य
13) यास्क
14) भाषाओं पर
15) प्रायोगिक
16) अनुप्रयुक्त
17) एडिनबर्ग
18) अभिकलनात्मक

19) कोमलांगी 20) 1960 ई.

3.7 स्वाध्याय :

अ) टिप्पणियाँ :

1) भाषाविज्ञान
2) ऐतिहासिक भाषाविज्ञान
3) तुलनात्मक भाषाविज्ञान
4) वर्णनात्मक भाषाविज्ञान
5) भाषाविज्ञान की आवश्यकता
6) भाषाविज्ञान का महत्त्व
7) भाषाविज्ञान की उपलब्धी
8) भाषाविज्ञान और व्याकरण
9) भाषाविज्ञान और कोशविज्ञान
10) व्युत्पत्तिविज्ञान
11) कोशविज्ञान के प्रकार
12) भाषा भूगोल
13) समाजभाषा विज्ञान
14) उपयोजित भाषाविज्ञान
15) अभिकलनात्मक भाषाविज्ञान

आ) दीर्घोत्तरी प्रश्न :

1) भाषाविज्ञान का स्वरूप स्पष्ट करते हुए भाषाविज्ञान के अध्ययन दिशाओंपर प्रकाश डालिए।
2) भाषाविज्ञान की आवश्यकता और महत्त्व को समझाइए।
3) भाषाविज्ञान की सहयोगी शाखाओंपर विस्तार से लिखिए।
4) भाषाविज्ञान और समाज भाषाविज्ञान पर चर्चा कीजिए।
5) उपयोजित भाषाविज्ञान और अभिकलनात्मक भाषाविज्ञान की जानकारी दीजिए।

3.8 क्षेत्रीय कार्य :

1) आपके परिचित ग्रंथालयों में जाकर कोशविज्ञान की जानकारी प्राप्त कीजिए।
2) उपयोजित भाषाविज्ञान का प्रयोग कहा होता है सर्वेक्षण कीजिए।
3) ग्रंथालयों से व्युत्पत्तिविज्ञान की महत्ता संकलित कीजिए।
4) पाश्चात्य व्याकरण कर्ताओं के ग्रंथों की जानकारी प्राप्त कीजिए।

3.9 संदर्भ ग्रंथ सूची :

1) भोलानाथ तिवारी : 'भाषाविज्ञान', 1980 ई.
2) देवेंन्द्रनाथ वर्मा : 'भाषाविज्ञान की भूमिका', 1972 ई.
3) बाबूराम सक्सेना : 'सामान्य भाषाविज्ञान', 1975 ई.
4) डॉ. हरिश शर्मा : 'सामान्य भाषाविज्ञान', 1972 ई.
5) भारतभूषण सरोज : 'भाषाविज्ञान', 1984 ई.

6) उदय नारायण तिवारी : ‘अभिनव भाषाविज्ञान’, 1982 ई.

7) तेजपाल चौधरी : ‘भाषा और भाषाविज्ञान’, 2002 ई.

8) डॉ. लक्ष्मीकांत पांडेय : ‘भाषाविज्ञान एवं हिंदी भाषा’, 2004 ई.

9) भोलानाथ तिवारी : ‘आधुनिक भाषाविज्ञान’, 1978 ई.

10) अंबादास देशमुख : ‘भाषिकी हिंदी भाषा तथा भाषाशिक्षण’, 1999 ई.

11) डॉ. कामिनी : ‘भाषाविज्ञान’, 1996 ई.

3.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए :

1) श्रीवास्तव गरिमा : ‘भाषा और भाषाविज्ञान’, संजय प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2006 ई.

2) सिंह विजयपाल : ‘भाषा विज्ञान’, संजय बुक सेंटर, वाराणसी

3) पाण्डेय शशिभूषण शीतांशु : ‘अद्यतन भाषाविज्ञान’

4) डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना : ‘भाषाविज्ञान के सिद्धान्त और हिंदी भाषा’

5) डॉ. देवेंद्र प्रसाद सिंह : ‘भाषाविज्ञान और हिंदी भाषा का स्वरूप-विकास’, 2006 ई.

❑❑❑

इकाई : 1

ध्वनिविज्ञान

अनुक्रम-रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 विषय विवरण

- ध्वनिविज्ञान
  पाठ्यविषय -

  1.2.1 ध्वनिविज्ञान : स्वरूप

  1.2.2 ध्वनि वर्गीकरण तथा उसके आधार

  1.2.3 ध्वनियों के भेद

  1.2.4 ध्वनि परिवर्तन के कारण, दिशाएँ और प्रकार

1.3 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न

1.4 शब्दार्थ, संदर्भ, टिप्पणियाँ

1.5 सारांश

1.6 स्वयं अध्ययन प्रश्नों के उत्तर

1.7 स्वाध्याय

1.8 क्षेत्रिय कार्य

1.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

1.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए

1.0 उद्‌देश्य :

इस इकाई के अध्ययनोपरान्त,

- ध्वनि क्या है? इसे समझ सकेंगे।
- भाषा में ध्वनि का महत्त्व समझ सकेंगे।
- ध्वनि वर्गीकरण के साथ उसके आधार से परिचित हो जाएँगे।
- ध्वनियों के भेदों से परिचित हो जाएँगे।
- ध्वनि परिवर्तन के कारण, दिशाएँ और प्रकार जान जाएँगे।

1.1 प्रस्तावना :

भाषा और ध्वनि दोनों का अटूट संबंध है। ध्वनि के अभाव में भाषा का आरंभ करना कठिन है। अत: ध्वनि के अभाव में भाषावैज्ञानिक दृष्टि से भाषा की कल्पना नहीं की जा सकती। भाषाविज्ञान का मुख्य विषय ध्वन्यात्मक भाषा ही है। इसीकारण ध्वनि को टालकर भाषाविज्ञान का अध्ययन हम नहीं कर सकते। इसलिए भाषा विज्ञान में ध्वनि अध्ययन सब से महत्त्वपूर्ण है। ध्वनिविज्ञान में ध्वनि कहाँ से, कैसे उत्पन्न होती है उसे कैसे ग्रहण किया जाता है, ध्वनि का वर्गीकरण किन आधारों पर कैसे किया जाता है, उसके भेद कौन से हैं? ध्वनियों में परिवर्तन के कारण उनकी दिशाएँ और प्रकारों का अध्ययन करने से ध्वनि से संबंधित अधिकांश बातों से परिचित होना संभव हो सकता है। यानी भाषा की मूलभूत इकाई के रूप में ध्वनि सामने आती है। इसलिए भाषाविज्ञान में हम ध्वनि विज्ञान के अध्ययन से आरंभ कर रहे हैं। भाषाविज्ञान के प्रमुख अंगों में ध्वनिविज्ञान, पदविज्ञान, वाक्यविज्ञान और अर्थ विज्ञान है। भलेही यह चारों अंग परस्पराश्रित है मगर ध्वनि या ध्वनिविज्ञान के अभाव में अन्य अंगों का कोई महत्त्व नहीं है।

1.2 विषय विवरण :

भाषाविज्ञान में सब से पहले ध्वनिविज्ञान का अध्ययन होना आवश्यक है। ध्वनि, ध्वनिविज्ञान के बिना इस विषय का अध्ययन सहज संभव नहीं है -

• पाठ्यविषय -

पद-परिचय :

1.2.1 ध्वनिविज्ञान स्वरूप :

भाषाविज्ञान की एक महत्त्वपूर्ण शाखा है 'ध्वनिविज्ञान'। ध्वनिविज्ञान शब्द प्रयोग विभिन्न ध्वनियों का सम्यक ज्ञान पाने के लिए किया जाता है। भाषावैज्ञानिक दृष्टि से ध्वनिविज्ञान वह विज्ञान है जिसके अंतर्गत विवेच्य ध्वनियाँ, ध्वनिमूलक उपादनों के साथ विश्लेषित होती है। प्रत्येक भाषा के ध्वनियों का वैज्ञानिक विवेचन विश्लेषण किया जाता है और इसी आधार पर प्रत्येक भाषा की लिपि तैयार की जाती है।

'ध्वनिविज्ञान' शब्द दो शब्दों के योग से बना है 'ध्वनि' और 'विज्ञान'। ध्वनिविज्ञान में ध्वनि से संबंधित विस्तृत जानकारी दी जाती है। ध्वनिविज्ञान के अध्ययन से पाठक के मन में ध्वनि को लेकर जितने सवाल खडे हो सकते हैं उन सभी सवालों का समाधान हो सकता है। ध्वनिविज्ञान के लिए 'स्वनविज्ञान' शब्द का प्रयोग अधिक मात्रा में किया जाता है। ''ध्वनि' शब्द Phonetics, Phonology के अधिक निकट है। दोनों शब्दों की व्युत्पत्ति ग्रीक शब्द 'PHONE' से हुई है।'' (समाधिया, डॉ. नारायणदास: 1985) 'Phonetics' में 'भाषाध्वनि' के सिद्धांत का अध्ययन किया जाता है। 'Phonology' का क्षेत्र किसी भाषा विशेष की ध्वनियों तक सीमित है जिसमें उसभाषा के विशेष की स्वनिमों का भी समावेश किया जाता है। अत: दोनों ध्वनि के विज्ञान है। अंग्रेजी में ध्वनिविज्ञान (स्वनविज्ञान) को फोनेमिक्स (Phonemix) कहा जाता है। 'स्वन' शब्द के लिए अंग्रेजी में 'Phone' शब्द है। इसलिए Phoneme को स्वनिम और Phonemix को स्वनिम विज्ञान कहा जाता है और यही उचित है। स्वनिम ध्वनिसमूह को बताता है।

ध्वनिविज्ञान में 'ध्वनि' प्रमुख है। ध्वनि के तीन पक्ष माने गए है - उत्पादन, संवहन और ग्रहण। इनमें से 'उत्पादन' और 'ग्रहण' शरीर से संबंधित है, तो 'संवहन' का संबंध वायु तरंगों से है। ध्वनि उत्पादन के लिए वक्ता और ग्रहण के लिए श्रोता दोनों की आवश्यकता है। क्योंकि वक्ता के मुख से ध्वनि नि:सृत होती है और नि:सृत ध्वनि, श्रोता के कानों से ग्रहण की जाती है। यह कार्य वायु तरंगों के द्वारा सिद्ध होता है। किंतु वक्ता और श्रोता के बीच ध्वनि के संवहन का कोई माध्यम न हो तो उत्पन्न ध्वनि भी निरर्थक हो जाएगी। इसलिए इन बातों को समझने के लिए शरीर का थोडा-बहुत ज्ञान होना जरूरी होता है। यदि शरीर या शरीरविज्ञान से हम परिचित है तो हम समझ सकते है कि लोग बोलते तो है मगर कैसे बोलते है, ध्वनि कहाँ से और कैसे उत्पन्न होती है? लेकिन इसके लिए शरीरविज्ञानी को ध्वनिविज्ञान की दृष्टि से विचार किए बिना यह संभव नहीं हो सकता। अत:ध्वनि विज्ञान का अध्ययन भाषावैज्ञानिक की दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। भाषा की संरचना को समझना है तो ध्वनिविज्ञान को समझना आवश्यक है। ध्वनिविज्ञान के अभाव में न तो भाषासंबंधी विशेषताओं का निरूपण संभव है और न भाषा का व्यावहारिक अध्ययन। अत: भाषा का सम्यक अध्ययन करना है तो ध्वनिविज्ञान (स्वनविज्ञान) की जानकारी अत्यंत महत्त्वपूर्ण है।

ध्वनिविज्ञान में ध्वनि महत्त्वपूर्ण है। ध्वनिविज्ञान में ध्वनि का विश्लेषण, वर्णन और वर्गीकरण किया जाता है। ध्वनि की सूक्ष्मता के साथ जानकारी प्राप्त करने के लिए ध्वनिविज्ञान के अध्ययन की जरूरत है। ध्वनिविज्ञान में भाषिक ध्वनियों का अध्ययन किया जाता है। 'दो चीजें टकराने के बाद जो आवाज निकलती है उसे ध्वनि कहते हैं।' अर्थात जो सुना जा सके उसे ध्वनि कहा जाता है। ध्वनिविज्ञान, भाषाविज्ञान का अंग है अर्थात ध्वनिविज्ञान में भाषा से संबंधित ध्वनियों का ही अध्ययन किया जाता है। उसमें उच्चारण, उच्चारण में सहायक अवयव, वर्गीकरण एवं ध्वनि के वहन तथा ग्रहण का भी अध्ययन किया जाता है। ध्वनिविज्ञान का सूक्ष्म अध्ययन करना है तो मानवीय वाग्यंत्र का सूक्ष्म ज्ञान अनिवार्य है। श्वासनलिका के उपरिभाग और अभिकाकल के कुछ नीचे ध्वनि उत्पन्न करनेवाला अवयव होता है जिसे ध्वनियंत्र या स्वरयंत्र कहा जाता है।

ध्वनियंत्र

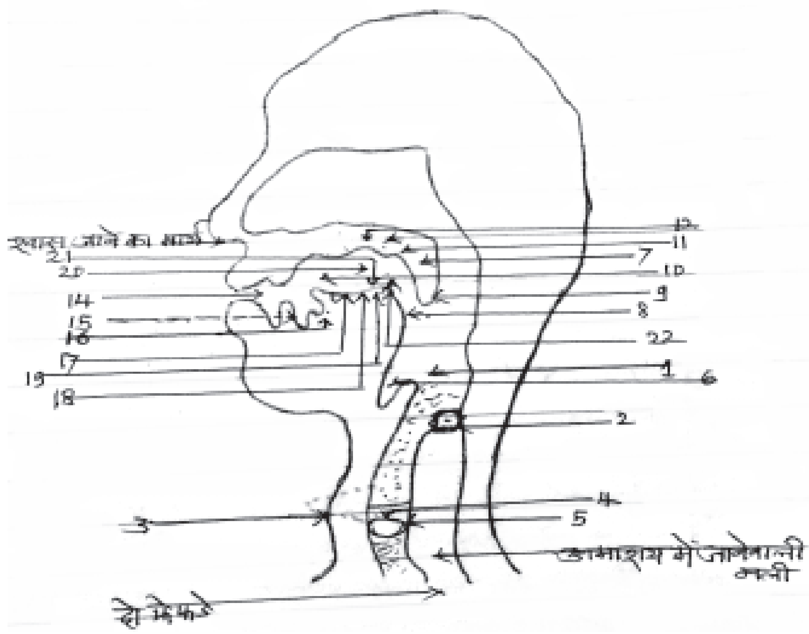

1) उपलिजिह्व / श्वासनली / कंठ / कंठ मार्ग (Pharynx) फेरिंक्स

2) भोजननलिका / ग्रसनी (Gullet) गलेट

3) स्वर-यंत्र कंठ-पिटक / ध्वनि-यंत्र (Larynx) लेरिंक्स

4) स्वरयंत्र मुख / अभिकाकल (Glottis) ग्लॉटिस

5) स्वर-तंत्री / ध्वनि-तंत्री (Vocal Chord) वोकल कॉर्डस

6) स्वर-यंत्र मुख-आवरण / अभिकाकल स्वर-यंत्रावरण (Epiglottis)

7) नासिका-विवर (Nasal Cavity) नसल केविटी

8) मुख-विवर (Mouth Cavity) माऊथ केविटी

9) अलिजिह्व / कौआ / घंटी / शुंडिका (Uvula) यूव्युला

10) कंठ (Gutter) गटेर

11) कोमलतालु (Soft Palate) सॉफ्ट पैलेट

12) मूर्द्धा (Cerebrum) सेरिब्रम

13) कठोरतालु (Hard Palate) हार्ड पैलेट

14) वर्त्स (Alveolas) आलवी अलस

15) दाँत (Teeth) टीथ

16) ओष्ठ (Lips) लिप्स

17) जिह्वा मध्य (Middle of the tongus) मिडल ऑफ दी टंग

18) जिह्वा नोक (Tip of the tongue) टिप ऑफ दी टंग

19) जिह्वाग्र (Front of the tongue) फ्रंट ऑफ दी टंग

20) जिह्वा (Tongue) टंग

21) जिह्वा पश्च (Back of the tongue) बैक ऑफ दी टंग

22) जिह्वा मूल (Root of the tongue) रूट ऑफ दी टंग

इन अवयवों का ध्वनि के उच्चारण में कम अधिक मात्रा में योगदान रहता है। संक्षेप में इनका परिचय इस प्रकार है -

1) श्वासनली / उपलिजिह्व : ध्वनि उच्चारण में सहायता करनेवाला एक प्रमुख अवयव इस रूप में श्वासनलिका की ओर देखा जाता है। श्वासनली बाहर की वायु को अंदर फेफडों तक पहुँचाती है और फेफडों से अंदर की दूषित वायु (हवा) को बाहर निकालती है। इस बाहर आनेवाली वाय से ही ध्वनियाँ उत्पन्न होने में मदद होती है।

2) भोजननलिका / ग्रसनी : यह श्वासनलिका के बहुत करीब होती है। भोजन को अमाशय तक पहुँचाने का काम भोजननलिका करती है। भोजननलिका के द्वार पर एक आवरण होता है। जो भोजन निगलते समय श्वासनली के मुख को बंद कर देता है और भोजन नली खुल जाती है जिससे भोजन सीधा अमाशय में पहुँचता है।

3) स्वर-यंत्र / ध्वनि-यंत्र : अभिकाकल से कुछ नीचे और श्वास नलिका के कुछ ऊपरी भाग में ध्वनि उत्पन्न करने वाला जो प्रधान अवयव होता है उसे स्वरयंत्र या ध्वनियंत्र कहते हैं। गले में जो उभरी घाँटी (टेंटुआ) है वह बाहर से दिखाई देती है, वह यही है।

4) स्वरयंत्र मुख : स्वरयंत्र-मुख वह है जिससे सांस लेते समय या बोलते समय वायु इसी से होकर बाहर-भीतर जाती है। अर्थात स्वर-तंत्रियों के बीच के खुले भाग को स्वरयंत्र-मुख या काकल भी कहते हैं।

5) स्वर-तंत्री : स्वर यंत्र में पतली झिल्ली के बने जो दो लचीले परदे होते हैं जिन्हें स्वरतंत्री या स्वर रज्जू कहते है। इसमें तंत्री का अर्थ तार है, जो मौन के समय तंत्रिया खुली रहती है पर ध्वनि उच्चारण प्रक्रिया में इनमें कंपन होता है। स्वर-तंत्रियों के सहारे अनेक प्रकार की ध्वनियाँ उत्पन्न होती हैं। ये घोष ध्वनियों में एक दूसरे से चिपक जाती है पर अघोष में खुली रहती है।

6) स्वर-यंत्र मुख-आवरण : श्वासनलिका के ऊपर (मुखपर) जो एक मांसल आवरण होता है उसे स्वरयंत्र मुख या अभिकाकल कहते हैं। यह स्वर यंत्र के ऊपर का आवरण होने के कारण जब मुँह के मार्ग से भोजन या पानी भोजननलिका की ओर आता है, तब यह नीचे की ओर झुककर श्वासनली को बंद कर देता है।

7) नासिका-विवर : मुख और नासिका के बीच का रिक्त स्थान नासिका विवर कहलाता है। ध्वनियों के उच्चारण में नासिका विवर का महत्त्व अनुस्वार और अनुनासिक के उच्चारण में होता है।

8) मुख-विवर : ओठों से गले तक का भाग मुख-विवर है। इसमें कोमल तालु, मूर्धा, कठोर तालु, वर्त्स, जिह्वा, दाँत आदि अवयव होते हैं।

9) अलिजिह्व / कौआ : कोमल तालु के पीछे एक छोटासा लटकता हुआ जो मासपिंड दिखाई देता है इसे ही अलिजिह्व या कौआ कहते हैं।

10) कंठ : कोमल तालु के नीचे तथा काकल के ऊपर के अवयव को कंठ कहते हैं। कंठ्य ध्वनियाँ यहीं-से उच्चरित होती है।

11) कोमल तालु : मुख विवर के सर्वोच्च भाग मूदूर्धा से गले की तरफ जाते समय मुखविवर के उपरी गोलाकार भाग को कोमलतालु कहते हैं। जो ध्वनियंत्र का एक प्रमुख हिस्सा है । यह अवयव मुख-विवर और नासिका विवर के मध्य ढक्कन के समान काम करता है। इसके नीचे होने पर मुख मार्ग बंद हो जाता है तो ऊपर होने पर नासिका मार्ग बंद होता है।

12) मूद्‌र्धा : ऊपर की दंत पंक्तियों तथा कठोर तालु के पास स्थित जो मुख का खुरदरा भाग होता है उसे मूद्‌र्धा कहते हैं। यहाँ से उच्चरित ध्वनियों को मूद्‌र्धन्य कहते हैं। 'ट' वर्गीय ध्वनियों के साथ 'र' और 'ष' का उच्चारण स्थान मूद्‌र्धा है।

13) कठोर तालु : मसूढो की जड से मूद्‌र्धा तक का भाग कठोर तालु है। यह अस्थिमय होता है। यह वर्त्स से लेकर कोमल तालु तक मुखविवर के ऊपरी भाग में फैला रहता है। यहाँ से उच्चरित ध्वनियाँ तालव्य कहलाती हैं साथ ही 'य' और 'श' का भी यह उच्चारण स्थान है।

14) वर्त्स्य : यह दाँतों के मूल से लेकर कठोर तालु के प्रारंभ तक का भाग है। दाँतों की जड में उभरा हुआ खुरदरा भाग 'वर्त्स्य' कहलाता है। इस स्थान से उच्चरित ध्वनियों को वर्त्स्य कहते हैं, न, र, ल, स, ज वर्त्स्य ध्वनियाँ हैं।

15) दाँत : दंत मूल के ऊपर दाँतों की पंक्तियाँ निकलती है। दाँत भी महत्त्वपूर्ण अवयव है। ऊपरी दाँतों के स्पर्श से 'त' वर्गीय ध्वनियों का उच्चारण होता है।

16) ओष्ठ : ध्वनियों के उच्चारण में ओष्ठ का विशेष महत्त्व है। मुख विवर के द्‌वार पर सामने के दाँतों को ढँकनेवाला यह अवयव ओष्ठ कहलाता है। यह वाग-यंत्र का सबसे बाहरी अवयव है। ओष्ठ में उत्पन्न ध्वनियों को ओष्ठ ध्वनियाँ कहते हैं।

17) जिह्वा मध्य : यह जिह्वा का मध्य भाग है। यह कठोर तालु और कोमल तालु के संधिस्थल के नीचे का भाग है।

18) जिह्वा नोक : जिह्वा के सब से अग्र के नोकवाला अंश जिह्वा नोक कहलाता है। यह सब से गतिशील भाग होता है।

19) जिह्वाग्र : यह जिह्वा का वह भाग है, जो कठोर तालु के विपरित स्थित रहता है। यह वायु को रोकने का काम कर सकता है।

20) जिह्वा : वागअवयवों में जिह्वा का विशेष महत्त्व है। यह मुखविवर के मध्य निचले भाग में होती है। सारे प्रयास जिह्वा द्वारा होते हैं। इसकी पश्च, मध्य और अग्र स्थितियाँ स्वरों के उच्चारण में अत्यंत महत्त्वपूर्ण है।

21) जिह्वा पश्च : जिह्वा मध्य के डेढ़ इंच के बाद जो भाग शेष है उसे जिह्वा पश्च कहा जाता है। यह कोमल तालु के नीचे पडता है।

22) जिह्वा मूल : जिह्वामूल कंठ से जूडा रहता है। जिह्वा के उस शेष पंचम भाग को जिह्वा मूल कहते हैं।

श्वसन क्रिया के समय हवा का अन्दर जाना या बाहर निकलना शुरू रहता है। मगर इसके साथ दूसरा काम भी शुरू रहता है। भाषाविज्ञान की दृष्टि से श्वसन क्रिया अपने साथ ध्वनिनिर्मिती का काम भी करती है। श्वासनलिका का ऊपरी भाग और अभिकाकल के कुछ नीचे ध्वनि उत्पन्न करनेवाला अवयव होता है उसे ध्वनियंत्र या स्वरयंत्र कहा जाता है। ध्वनियंत्र में पतली झिल्ली के बने लचिले परदे होते हैं, जिन्हें स्वरतंत्री कहते हैं। दो परदों के बीच जो खुला हिस्सा रहता है, उसे स्वरयंत्र मुख या काकल कहा जाता है। श्वसन क्रिया के समय स्वरतंत्रियों के सहारे ध्वनियाँ निर्माण होती है। स्वरतंत्रियों के निकट आने जाने की बाहर स्थितियाँ है मगर केवल सात स्थितियाँ ध्वनिनिर्माण में विशेष महत्त्वपूर्ण होती है।

जब सांस अंदर खींची जाती है तब स्वरतंत्रियाँ एक दूसरे से अधिक दूर हो जाती है। ऐसी स्थिति में स्वरयंत्र चौडा हो जाता है।

दूसरी स्थिति में सांस बाहर निकलती है। इस स्थिति में स्वरतंत्रियाँ एक-दूसरे के निकट आ जाती है जिससे स्वरयंत्र मुख कम हो जाता है। प्राय: उसका आकार त्रिभुजाकार होता है। इस अवस्था में निकली ध्वनियाँ 'अघोष' ध्वनियाँ कही जाती है। सांस के बाहर निकलते समय स्वरतंत्रियों के साथ कोई घर्षन नहीं होता। बिना घर्षन से निकली ध्वनि 'अघोष' होती है।

तीसरी अवस्था में स्वरतंत्रियाँ एक दूसरे के काफी निकट आती है। इन दोनों के बीच से निकलती हुई हवा उन्हें रगडते हुए निकल पडती है। स्वरतंत्रियों के घर्षन से निर्माण होनेवाली ध्वनियाँ 'घोष' ध्वनियाँ कही जाती हैं। घोष ध्वनियों के समय स्वरयंत्र मुख्य बिल्कुल संकीर्ण बन जाता है। तथा इसके ऊपर तथा नीचे के हिस्से भी बंद हो जाते हैं और इसकी लम्बाई कम हो जाती है।

ध्वनिनिर्मिति की चौथी अवस्था में स्वरतंत्रियाँ एक दूसरे से ऐसे मिल जाती है कि जिसमें तीन चौथाई हिस्सा मिलता रहे और एक चौथाई खुला रहे। तात्पर्य इस अवस्था में हवा का मार्ग पूर्णत: बन्द नहीं होता। जो एक चौथाई भाग खुला रहता है वहाँ से हवा बाहर निकल पडती है। इसी स्थिति में 'फुसफुसाहटवाली ध्वनियों का उच्चारण होता है ऐसी ध्वनियों को 'जपित', 'जाप', फुसफुस या उपांशु (Whispered) भी कहते हैं। दो मित्र आपस में धीरे-धीरे बात करते हैं तो इसी प्रकार की ध्वनियों का प्रयोग करते हैं। फुसफुसाहट की सभी ध्वनियाँ अघोष होती है।'[2]

(तिवारी डॉ. भोलानाथ: 2016)

पाँचवी अवस्था में स्वरतंत्रियाँ उस स्थिति में आती है जिस स्थिति में वे घोष ध्वनियाँ निर्माण करती है मगर इसके साथ गले की मांसपेशियाँ बडी हो जाती है उससे स्वरतंत्रियों में इतना तनाव निर्माण हो जाता है, उनसे हवा का घर्षन होने पर भी वे कंपित नहीं होती। ऐसी ध्वनियाँ 'जपित' ध्वनि के अंतर्गत आती है।

छठी अवस्था में मूल स्वरतंत्रियों का आकार छोटा बनता है। स्वरतंत्रियों के ऊपर जो मूल स्वरतंत्रियाँ है वे हवा का रास्ता छोटा कर देती हैं। इस छोटे मार्ग से निकलनेवाली हवा के द्वारा जिन ध्वनियों का निर्माण हो जाता है वे भी जपित ध्वनियाँ ही कही जाती है।

अंतिम स्थिति में स्वरतंत्रियों का न ही अघोष ध्वनि निर्मिती के समान एक दूसरे से बिल्कुल पृथक होना और न ही घोष ध्वनि निर्मिती के समान एक दूसरे के निकट आ जाना। बल्कि उनकी अवस्था कुछ ऐसी रह जाती है, जिससे काकल सँकरा बन जाता है और उससे रगडती हुई जो हवा बाहर निकलती है उनसे निर्माण होनेवाली ध्वनियाँ घोष अघोष के बीच की ध्वनियाँ कही जाती है।

स्वरयंत्र के ऊपर अभिकाकल होता है, उसके ऊपर जो खाली स्थान होता है जहाँ से चार मार्ग निकलते है - श्वास नलिका, भोजन नलिका, मुख विवर और नासिका विवर इन चौराहों के बीच में अभिकाकल होता है मगर उसी के साथ जीभ जैसा एक छोटा-सा मांस का टुकडा होता है जो ठिक उस स्थान पर होता है जहाँ से नासिका विवर और मुखविवर के मार्ग अलग होते हैं। जीभ को अलिजिव्हा भी कहा जाता है। जिसका कार्य है कोमल तालु के सम्पर्क से मुख विवर, नासिका विवर का मार्ग रोक लेना। जब कौआ कोमल तालु के साथ स्वाभाविक अवस्था में होता है तब वह बिल्कुल पीला और लटकता हुआ होता है। इस अवस्था में श्वास के प्रश्वास में कोई रुकावट नहीं आती। कौअे की इस अवस्था में जो ध्वनियाँ उच्चरित होती हैं वे उँ, हाँ, हैं आदि। इन्हें कंठ्य ध्वनियाँ कहा जाता है। कभी-कभी अलिजिह्वा तनकर नासिका विवर को बन्द कर देती है ऐसी स्थिति में श्वास नलिका से आयी हुई हवा नासिका विवर से बाहर निकलने के बजाय मुखविवर से बाहर आती जाती है ऐसी अवस्था में जो ध्वनियाँ निर्माण होती है वह है, स्वर और व्यंजन ध्वनि। कौअे की अगली अवस्था में नासिका विवर और मुखविवर को वह थोडा-सा बन्द कर देता है ऐसी अवस्था में जिन ध्वनियों का निर्माण होता है, वे है अनुनासिक व्यंजन ध्वनि।

कौअे की एक ओर मुखविवर दूसरी ओर नासिका विवर। मुख विवर के ऊपर तालु होते हैं जिसे मुख विवर से लेकर दातों तक चार भागों में विभाजित किया जाता है वह है - i) कोमल तालु, ii) मूर्द्धा, iii) कठोर तालु और iv) वर्त्स्य। मुख में वर्त्स्य जो जीभ रहती है उसके भी पाँच भाग माने गए हैं - i) जिव्हा मूल, ii) जिह्वापश्च, iii) जिह्वामध्य, iv) जिह्वाग्र, v) जिह्वानोक। तालु के ऊपरि चार भागों से जिह्वा के विभिन्न भागों का स्पर्श होने पर कुछ ध्वनियाँ निर्माण होती है जिन्हें तालव्य ध्वनियाँ कहा जाता है। कभी-कभी जीभ का दाँतों से तथा ओंठों से स्पर्श होने पर भी ध्वनियों का निर्माण हो जाता है जिन्हें दन्तव्य ध्वनियाँ, वर्त्स्य ध्वनियाँ कहा जाता है। इसतरह ध्वनि निर्माण में विभिन्न अवयव सहायक बन जाते हैं, मगर ध्वनियों का निर्माण करते समय ध्वनियंत्र हवा के सम्पर्क के बिना ध्वनियों का निर्माण नहीं कर सकता।

ध्वनिविज्ञान में ध्वनि से शुरुवात होती है। ध्वनियंत्र से निकली ध्वनि वायु के साथ एक प्रकार का कंपन पैदा

करती है यह तरंगे श्रोता के कान तक पहुँचकर बाह्य कर्ण की झिल्ली से टकराहट, कंपन उत्पन्न करती है। इस तरह प्राप्त ध्वनि सूचनाओं को मस्तिष्क ग्रहण करके तद्नुसार कार्य शुरू हो जाता है। यानी भाषावैज्ञानिक परिधि में वक्ता, श्रोता तथा वायु का काम प्रमुखता से चलता है। ध्वनि की निर्भरता उन पर है। भाषा में ध्वनि का स्थान महत्त्वपूर्ण है अत: भाषा विज्ञान में ध्वनि के अभाव में शब्द, अर्थ, रूप या वाक्य सबकुछ व्यर्थ है। ध्वनि है तो शब्द है और शब्द, रूप के अभाव में न वाक्य है न अर्थ। इस तरह भाषाविज्ञान में प्राणतत्त्व के रूप में ध्वनि, ध्वनिविज्ञान का महत्त्व है।

ध्वनिविज्ञान का प्राचीन भारतीय नाम शिक्षाशास्त्र है। उस काल में लिखित शिक्षाओं का संबंध ध्वनियों के अध्ययन से है। ध्वनिविज्ञान या स्वनविज्ञान के अंतर्गत भाषा, उसमें पायी जानेवाली ध्वनियों, ध्वनिगुण, बलाघात, सुर, सुरक्रम आदि का सम्यक अध्ययन आता है।

ध्वनिविज्ञान में ध्वनि का अध्ययन तीन पद्धतियों से किया जाता है -

i) ऐतिहासिक

ii) वर्णनात्मक

iii) तुलनात्मक

ऐतिहासिक (Historical) भाषा ध्वनियों की विशेषताओं के कालानुक्रमिक अध्ययन को ऐतिहासिक ध्वनिवैज्ञानिक अध्ययन कहा जाता हैं। इसे द्विकालिक अध्ययन भी कहा जाता है। इसके अन्तर्गत वर्तमानकालिक तथा भूतकालिक ध्वनियों के स्त्रोत और विकास की दिशाओं का तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है।

वर्णनात्मक (Descriptive) भाषाओं की ध्वनियों अथवा ध्वनिमूलक विशिष्टताओं से समकालिक अध्ययन को वर्णनात्मक ध्वनिविज्ञान कहा गया है। इसे सकालिक (Synchronic) अध्ययन भी कहा जाता है। इसके अन्तर्गत भाषाओं में वक्ताओं द्वारा प्रयुक्त ध्वनि अथवा ध्वनिमूलक विशिष्टताओं का अध्ययन होता है।

तुलनात्मक पद्धति में दो या दो से अधिक भाषाओं अथवा अलग-अलग परिवारों की भाषाओं में प्रयुक्त ध्वनियों का तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है। ऐतिहासिक एवं वर्णनात्मक ध्वनिविज्ञानों की उपलब्धियाँ भी इसके अन्तर्गत आती है।[3] (शर्मा डॉ. हरिश : 1972)

ध्वनिनिर्मिती, ध्वनि और भाषा ध्वनि :

मानव की सहज स्वाभाविक क्रिया है नाक या मुख से हवा को शरीर के अंदर खींचना या बाहर छोडना। यह क्रिया निरंतर रूप से चलती रहती है। इसी क्रिया को श्वसन क्रिया कहा जाता है। शरीर विज्ञान की दृष्टि से इस क्रिया में हवा का प्रमुख स्थान है। हवा फेफडों में जाकर फेफडों को स्वच्छ करती है या वहाँ की गंदगी को बाहर निकालती है। इस क्रिया में ध्वनि का कहीं भी कोई संबंध नहीं है। मगर हवा का बाहर निकलने का जो मार्ग है उस मार्ग में स्वरयंत्र, काकल, तालु जीभ, दाँत आदि अनेक अवयव उसके साथ जुट जाते हैं। जिनसे हवा का कभी कम या तीव्र संघर्ष होता रहता है। हवा के इस संघर्ष के कारण उसका बाहर निकलना कभी चुपचाप नहीं होता बल्कि उसमें एक नाद की निर्मिती होती रहती है। भाषाविज्ञान की दृष्टि से यह आवाज या नाद ही ध्वनि है।

नासिका विवर से फेफडों में खींची हुई हवा बाहर निकलते समय ध्वनियों के आन्दोलन से आन्दोलित होकर बाहर निकल जाती है। अपने आन्दोलन से वह वायुमंडल में एक विशिष्ट प्रकार के कंपन से विविध लहरे पैदा करती है। ये वायु लहरे तरंगित होकर जब सुननेवालों के कानों तक पहुँचती है तब हवा के माध्यम से श्रवणेंन्द्रियाँ इन लहरों को ग्रहण कर लेती है इसी समय ध्वनि का निर्माण हो जाता है। इसी समय प्रकृति के किसी भी पदार्थ से सुनने लायक जो कुछ नाद या आवाज निकलती है। भाषाविज्ञान के अन्तर्गत इन सभी को ध्वनि कहा गया है। अत: स्पष्ट है कि मानव मुख से निसृत वायु तरंग केवल ध्वनि नहीं है बल्कि प्रकृति के चराचर वस्तुओं द्वारा निर्मित जो कुछ नाद है वह सब ध्वनि समझे जाते है यानी ध्वनि का क्षेत्र विस्तृत है। मगर यही ध्वनि जब भाषा के क्षेत्र में आ जाती है तब उसका क्षेत्र सीमित हो जाता हैं। क्योंकि हर भाषा का अपना एक सीमित क्षेत्र होता है। इसलिए भाषा के क्षेत्र में आनेवाली ध्वनि मर्यादित होती है।

भाषा ध्वनि के बारे में कहा गया है कि - भाषा ध्वनि, भाषा में प्रयुक्त वह लघुत्तम इकाई है जिसका उच्चारण और श्रोतव्यता की दृष्टि से स्वतंत्र व्यक्तित्त्व हो। भाषा ध्वनि वह है जो किसी भाषा विशेष में अपना स्वतंत्र अस्तित्व रखती है। बोलनेवाला और सुननेवाला अपने-अपने व्यक्तित्त्व के अनुसार श्रवण तथा उच्चारण कर सकते हैं। भाषा के अन्तर्गत सीमित ध्वनियाँ ही प्रयुक्त होती है उन्हें उस भाषा की ध्वनियाँ कहा जाता है।

संक्षेप में देखा तो ध्वनिविज्ञान भाषाविज्ञान की एक प्रधान शाखा है। भाषा का महल ध्वनिविज्ञान पर खडा है। ध्वनिके बिना भाषा का अस्तित्व नहीं है। मौखिक भाषा के बिना मानवीय जीवन निरर्थक है। ध्वनिविज्ञान तीन प्रकार से अपना कार्य करता है। उच्चारण मूलक, संवहनमूलक और श्रवणमूलक। ध्वनिविज्ञान तीनों को समेटकर अपना कार्य कर रहा है।

1.3 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न :

(अ) सही विकल्प चुनकर वाक्य फिर से लिखिए।

1. 'फोनेटिक्स' (Phonetics) शब्द की व्युत्पत्ति किस भाषा से हुई है?

   अ) ग्रीक   ब) रूसी

   क) जापानी   ड) संस्कृत

2. ध्वनि के प्रमुख पक्ष कितने है?

   अ) चार   ब) तीन

   क) पाँच   ड) छह

3. ध्वनि के 'संवहन' पक्ष का संबंध किससे है?

   अ) शरीर   ब) वक्ता

   क) वायु तरंग   ड) भाषा

4. ध्वनि का सूक्ष्म अध्ययन किस विज्ञान से संभव है?

अ) शब्द
ब) ध्वनि
क) अर्थ
ड) वाक्य

5. ध्वनियंत्र कहाँ होता है?
   अ) श्वासनलिका के ऊपर और अभिकाकल के नीचे
   ब) श्वासनलिका के नीचे और अभिकाकल के ऊपर
   क) भोजन नलिका से चिपका हुआ
   ड) अमाशय में जानेवाली नली के पास

6. ध्वनियंत्र में जो लचिले परदे होते हैं उन्हें क्या कहते हैं?
   अ) स्वरयंत्रमुख
   ब) स्वरतंत्री
   क) मुख विवर
   ड) अलिजिव्ह

7. 'ध्वनि' की जानकारी के लिए भाषाविज्ञानी को किस बात का विचार करना पडता है?
   अ) अर्थविज्ञान
   ब) शब्दविज्ञान
   क) ध्वनिविज्ञान
   ड) वाक्यविज्ञान

8. भाषावैज्ञानिक की दृष्टि से किस बात का अध्ययन विशेष महत्त्वपूर्ण है?
   अ) शब्दविज्ञान
   ब) वाक्यविज्ञान
   क) अर्थविज्ञान
   ड) ध्वनिविज्ञान

9. दो चीजें टकराने के बाद जो आवाज निकलती है, उसे क्या कहते हैं?
   अ) शब्द
   ब) ध्वनि
   क) वाक्य
   ड) भाषा

10. जिह्वा के कितने भाग होते हैं?
   अ) पाँच
   ब) चार
   क) तीन
   ड) कुछ भी नहीं।

11. 'ध्वनि' का पर्यायवाची शब्द है -
   अ) स्वम
   ब) धोनी
   क) स्वन
   ड) धुन

12. ध्वनिविज्ञान का प्राचीन नाम था -
   अ) शिक्षा शास्त्र
   ब) तुलनात्मक व्याकरण
   क) ध्वनि शास्त्र
   ड) आवाज शास्त्र

13. सकालिक अध्ययन किसे कहा जाता है?

अ) तुलनात्मक पद्धति | ब) वर्णनात्मक पद्धति
क) ऐतिहासिक पद्धति | ड) चर्चात्मक पद्धति

14.तालु को कितने भागों में विभाजित किया जाता है?

अ) चार | ब) तीन
क) दो | ड) छह

15. किस विज्ञान का प्राचीन नाम शिक्षाशास्त्र है?

अ) रूपविज्ञान | ब) ध्वनिविज्ञान
क) शब्दविज्ञान | ड) वाक्यविज्ञान

16. स्वरयंत्र में पतली झिल्ली के जो लचिले परदे होते हैं उन्हें क्या कहते हैं?

अ) स्वरतंत्री | ब) स्वरयंत्रमुख
क) उपलिजिह्व | ड) कंठ

17. दाँतों के मूल से कठोर तालु तक का भाग किस नाम से जाना जाता है?

अ) मूद्‌र्धा | ब) कंठ
क) वर्त्स | ड) ओष्ठ

18. 'त' वर्गीय ध्वनियों के उच्चारण में कौनसा अवयव काम में आता है?

अ) वर्त्स | ब) कठोर तालु
क) ओष्ठ | ड) दाँत

1.2.2 ध्वनि वर्गीकरण तथा उसके आधार :

भाषा की लघुत्तम इकाई के रूप में ध्वनि को देखा जाता है। भाषा-ध्वनि के अंतर्गत मुख या कंठ से उत्पन्न ध्वनि का अध्ययन किया जाता है। वास्तव में मनुष्य-कंठ से अनंत ध्वनियाँ उत्पन्न होती है। ध्वनि की सूक्ष्मतम भंगिमाओं का पता संगीत से चलता है किंतु हमारा उद्‌देश्य है जो ध्वनियाँ भाषिक इकाई की दृष्टि से उपयोगी है केवल उन्हीं ध्वनियों पर विचार करना है। मुख से उच्चरित ध्वनियों को दूसरे सून लेते हैं अर्थात उच्चरित ध्वनि, लहरों या तरंगो द्‌वारा गमन करती है, दूसरे तक पहुँचती है इसी के आधार पर ध्वनियों का वर्गीकरण करना सहज संभव होता है। ध्वनि वर्गीकरण में उत्पत्ति, ध्वनि लहरें, श्रवण शक्ति और प्रयोग ध्वनि वर्गीकरण की दृष्टि से विशेष महत्त्वपूर्ण माने जा सकते हैं। किंतु इनमें प्रयोग को आधार मानकर वर्गीकरण सबसे प्रचलित एवं पुरातन है। उत्पत्ति, ध्वनि लहरें और श्रवणशक्ति बोली भाषा से संबंध रखनेवाले हैं। बोलनेवाला जिस तरह बोलता है सुननेवाले की क्षमता पर यह वर्गीकरण आधारित रह सकता है।

बोलते समय ध्वनियंत्र की सहायता से जो-जो ध्वनियाँ निर्माण हो जाती है उनका आधार उत्पत्ति होने के कारण उनका वर्गीकरण उत्पत्ति के आधारपर किया जाता है।

ध्वनि लहरों के आधार पर किए गए वर्गीकरण में सुननेवाले का संबंध अधिक रहता है।

श्रवणशक्ती के आधार पर यदि वर्गीकरण किया गया तो मुख से निकली ध्वनि दूसरे के कानों तक पहुँचने के लिए जो अवधि लग जाता है उस अवधि में शायद ध्वनि परिवर्तन हो सकता है। फिर परिवर्तित रूप के आधार पर ध्वनियों का वर्गीकरण किया जाता है।

प्रयोग के आधार पर वर्गीकरण किया गया तो भाषाविज्ञान की दृष्टि से वैज्ञानिक एवं सुव्यवस्थित आधार माना जा सकता है।

भाषा में दो प्रकार की ध्वनियाँ पायी जाती है, स्वर और व्यंजन। स्वनों या ध्वनियों का वर्गीकरण 'स्वर' और 'व्यंजन' इन दो रूपों में प्राचीन काल से चल रहा है। ध्वनि और स्वन दोनों एक दूसरे के पर्यायवाची है। 'ध्वनि' शब्द का बहुत व्यापक अर्थ है। ध्वनियाँ कई प्रकार की है। स्कूल की घंटी की आवाज, शेर के दहाडने की आवाज, खेलते समय बच्चों की आवाजे, रेल की पटरी पर से चलने की आवाज सब ध्वनियाँ है। ध्वनि विज्ञान में स्वन (ध्वनि) या वाक् स्वन (वाकध्वनि) केवल उच्चरित ध्वनि है। भाषाविज्ञान में ध्वनि या स्वन को दो रुपों में ही ग्रहण किया गया है। अत: स्वर और व्यंजन ध्वनियों के आधार पर वर्गीकरण कर सकते है।

स्वर ध्वनियों के वर्गीकरण के आधार :

स्वर-ध्वनियों की गूँज मुख-विवर में होती है तथा अनुनासिक स्वरों की गूँज मुख-विवर और नासिका-विवर दोनों में होती है। होनेवाली गूँज मुख-विवर के स्वरूप पर निर्भर करती है। यदि मुख-विवर चौडा होगा तो एक प्रकार की गूँज होगी तथा सँकरा होगा तो दूसरे प्रकार की। अर्थात भाषा में जितने प्रकार के स्वर होंगे-उच्चारण में उतने ही प्रकार के स्वरूप मुख-विवर को देने पडते हैं। यह स्वरूप जबड़ा, जीभ, कौआ, ओष्ठों की स्थिति आदि पर अधिकतर निर्भर करता हैं। इसके अतिरिक्त स्वर की मात्रा इस बात पर निर्भर करती है कि गूँज कब तक हो रही है। इन्हीं बातों पर गौर करके स्वरों का वर्गीकरण निम्नांकित आधारों पर करना सहज संभव होता है :

1) जीभ के आधार पर : स्वरों के उच्चारण के लिए जीभ का कौन-सा हिस्सा कार्य करता है इस पर स्वर वर्गीकर आधारित है। मुख-विवर से जब हवा बाहर निकलती है, तब उसमें कोई खास रूकावट नहीं आती फिर भी जीभ का अग्र, मध्य या पश्च इनमें से कोई एक हिस्सा ऊपर उठकर स्वर निर्मिती में सहायता कर देता है। ऐसी स्थिति में जिन स्वरों की निर्मिती हो जाती है उन्हें अग्र, मध्य या पश्च स्वर कहा जाता है। (अग्रस्वर, मध्यस्वर, पश्चस्वर) हिंदी में इ, ई, ए अग्रस्वर है। उ, ऊ, ओ, औ पश्चस्वर है तो अ, आ मध्यस्वर है। इसीकारण स्वरों के तीन प्रकार माने गए हैं - अग्रस्वर, मध्यस्वर तथा पश्चस्वर।

2) जीभ के व्यवहृत भाग की स्थितिपर (मुखविवर की स्थिति पर) : जीभ का व्यवहृत भाग यानी अग्र, मध्य या पश्च कभी ऊपर तालु के पास चला जाता है (संवृत्त) तो कभी बिल्कुल नीचे रहता है (विवृत्त) और कभी

संवृत्त के पास रहता है। तब अर्धसंवृत्त और जब विवृत्त के पास रहता है तब अर्धविवृत्त। इस तरह उनके चार भेद स्वीकृत किए जा सकते हैं - i) संवृत्तस्वर - जैसे इ, ई, उ, ऊ। ii) अर्धसंवृत्त स्वर - जैसे ए, ओ, iii) अर्धविवृत्त स्वर- जैसे ऐ, अ, औ, ऑ और iv) विवृत्त स्वर जैसे आ। सब स्वर हिंदी भाषा में पाए जाते हैं।

3) जीभ के अचल या चल होने के आधार पर : अचल या चल के आधार पर स्वर दो प्रकार के होते हैं- (अ) मूलस्वर, (आ) संयुक्त स्वर।

(अ) मूलस्वर - इस प्रकार के स्वरों के उच्चारण में जीभ अचल रहती है यानी उसकी हलचल नहीं होती। वह किसी एक ही स्थिति में रहती है हिंदी के मानक रूप में सामान्यत: सभी स्वर ऐसे ही हैं। ऊपर के स्वर चतुर्भुज में (X) के चिह्न द्वारा जीभ की अचल स्थिति ही सामने आती है।

(आ) संयुक्त स्वर - संयुक्त स्वरों के उच्चारण में जीभ एक स्वर स्थिति से चलकर दूसरी स्वर स्थिति में जाती है। 'ऐ' के उच्चारण में जीभ 'अ' की स्थिति से 'इ' की स्थिति की ओर जाती है। 'औ' में 'अ' से 'उ', की ओर जाती है - यानी वैयाकरण में 'ऐ' से 'अ' और आगे 'इ' की ओर जाती है, तथा कौवा के 'औ' में 'अ' से 'ऊ' की ओर जाती है।

4) ओष्ठों की स्थिति के आधारपर : जिस प्रकार मुखविवर, जीभ इनकी सहायता से स्वर-ध्वनियाँ निर्माण होती है उसी प्रकार ओष्ठों की सहायता से स्वर-ध्वनियों का उच्चारण होता है, इसी के आधर पर स्वर के दो भेद माने गए हैं -

i) वृत्तमुखी स्वर, ii) आवृत्तमुखी स्वर।

''जिन स्वरों के उच्चारण समय, ओष्ठों को वृत्ताकार करके उच्चारण होता है वे वृत्तमुखी स्वर हैं।'' हिंदी में उ, ऊ, औ, ओ, ऑ आदि।

''जिन स्वरों के उच्चारण समय, ओष्ठों को वृत्ताकार किए बिना उच्चारण होता है उन्हें आवृत्तमुखी स्वर कहते हैं।'' जैसे हिंदी में अ, आ, इ, ई, ए, ऐ आदि।

5) मात्रा के आधार पर वर्गीकरण : मात्रा से तात्पर्य है, स्वर के उच्चारण में लगनेवाले समय की मात्रा है। स्वरों का स्वरूप इन्हीं मात्राओं पर निर्भर रहता है। मात्रा के दो भेद किए गए हैं - i) ह्रस्व स्वर, ii) दीर्घ स्वर।

i) ह्रस्व स्वर - जिस स्वर की मात्राएँ अल्प, लघु हो वह ह्रस्व स्वर माना गया है। जैसे हिंदी में अ, इ, उ आदि ह्रस्व स्वर है। ह्रस्व स्वर की एक मात्रा होती है।

ii) दीर्घ स्वर - जिस स्वर की मात्राएँ अधिक हो वह दीर्घ स्वर होता है। हिंदी में आ, ई, ऊ, ऐ, ओ, औ आदि दीर्घ स्वर है। दीर्घ स्वर की दो मात्राएँ मानी गयी हैं।

मात्रा के गौण भेद भी किए जा सकते हैं जिनकी संख्या दो है - ह्रस्वार्ध स्वर, प्लुत स्वर। ह्रस्वार्ध स्वर के उच्चारण के लिए ह्रस्व स्वर के उच्चारण से कम समय लगता है। उदा. ब्रह्म, सभ्य, विश्व इनके अन्त में सुनाई

पडनेवाला 'अ' बिल्कुल अल्प समयवाला है। तो प्लुत स्वर के उच्चारण में दीर्घ स्वर से अधिक समय लगता है। उदा. 'ओऽम्' में 'ओ' प्लुत स्वर है।

6) कौअे की स्थिति पर आधारित वर्गीकरण : इसके आधार पर स्वरों के दो भेद होते हैं - (क) मौखिक स्वर, (ख) अनुनासिक स्वर।

(क) मौखिक स्वर - जिन स्वरों के उच्चारण के समय कौआ ऊपर उठकर नासिका-विवर को बन्द कर लेता है जिससे सारी की सारी हवा मुँह से ही निकलती है उन्हें मौखिक स्वर कहते हैं। हिंदी के अ, आ, इ, ई आदि इस प्रकार के स्वर हैं।

(ख) अनुनासिक स्वर - जिनके उच्चारण में कौआ बीच में ही लटकता रहता है अत: हवा का कुछ अंश नासिका-विवर से निकलता है उन्हें अनुनासिक स्वर कहते हैं। हिंदी के ऑ, अं, इँ, उँ, ऊँ, एँ आदि इसी प्रकार के स्वर हैं।

7) मुँह की मांस पेशियों पर आधारित वर्गीकरण : स्वरों के उच्चारण के समय कभी मांस पेशियाँ शिथिल हो जाती है तो कभी दृढ हो जाती है अर्थात मांस पेशियों की शिथिलता और दृढता के आधार पर स्वरों के दो भेद होते हैं। i) शिथिल और ii) दृढ।

शिथिल स्वरों में अ, इ, ड आदि है तो दृढ में ई, ऊ आदि स्वर आते हैं।

8) स्वर तंत्रियों की स्थिति पर आधारित : स्वर-तंत्रियों के आधार पर भी स्वरों का वर्गीकरण किया जा सकता है। इस आधार पर स्वरों के दो भेद होते हैं - (क) घोष स्वर, (ख) अघोष स्वर।

(क) घोष स्वर - अधिकतर भाषाओं में सभी स्वर घोष स्वर होते हैं। घोष स्वरों के उच्चारण में स्वर-तंत्रियाँ एक-दूसरे के प्रति बहुत निकट होती है।

(ख) अघोष स्वर - अघोष स्वर अपवादात्मक स्थिति में ही पाएँ जाते हैं। जिनके उच्चारण के समय स्वर-तंत्रियाँ एक दूसरी से इतनी निकट नहीं होती जितनी घोष के समय होती है। उनके बीच से निकलनेवाली हवा स्वर-तंत्रियों के किनारों से टकराकर घर्षण करती हुई निकले। ऐसे स्वरों को फुसफुसाहट वाला स्वर या जपित स्वर भी कहते हैं। अवधी में 'जाति', 'होथु' के 'इ', 'उ' ऐसे ही स्वर है।

व्यंजनों का वर्गीकरण :

व्यंजनों का वर्गीकरण प्राय: दो प्रकार से किया जाता है। i) प्रयत्न के आधार पर वर्गीकरण, ii) स्थान के आधार पर वर्गीकरण।

(1) प्रयत्न के आधार पर वर्गीकरण :

हर ध्वनि के उच्चारण के लिए कोई न कोई प्रयत्न करना पडता है। कभी हवा को रोकना पड़ता है या और कई प्रकार से विकृत करना पड़ता है इसी क्रिया को प्रयत्न कहते हैं। इसका प्राचीन संस्कृत साहित्य (आरण्यक, प्रातिशाख्य,

शिक्षा, व्याकरण) में बडे विस्तार से विचार किया गया है।

प्रयत्न के आधार पर स्फोट तथा अस्फोट व्यंजन ध्वनि, ध्वनि उच्चारण के समय वाक्‌यंत्र (ध्वनि-यंत्र) से संबंधित जो अंग रहे हैं उनमें से एकाद या अनेक अंगों के स्पर्श से हवा का रूकना तथा बाहर निकलना चलता रहता है। ऐसी स्थिति में जो ध्वनियाँ निर्माण हो जाती है उन्हें स्फोट ध्वनि या स्पर्श ध्वनियाँ कहा जाता है। ध्वनियंत्र के विभिन्न अवयवों ओष्ठ, दाँत, जीभ, कोमल तालु, अलि जिह्वा आदि से हवा का बाहर निकलते समय अवरोध या रूकावट इन अंगों के स्पर्श से निरन्तर होती रहती है। उस समय निर्माण होनेवाली ध्वनियाँ स्फोटित या स्पर्शित ध्वनियाँ कही जाती है। उदा. क, ख, ग, घ, त, थ, ड, प, फ, ब, भ ये सब स्फोट या स्पर्श ध्वनियाँ है।

जब ध्वनि उच्चारण के समय बिना अवरोध या बिना रूकावट से हो जाता है तब निर्माण होनेवाली ध्वनियों को अस्फोटित ध्वनियाँ या अस्पर्शी ध्वनियाँ कहा जाता है । उदा. म, च, छ, ज, य, न ये सब अस्पर्शी या अस्फोटित ध्वनियाँ है।

2) संघर्षी ध्वनियाँ : हवा का मुख विवर या नासिका-विवर से बाहर आना न तो स्पर्श ध्वनि के समान पूर्ण अवरोध से होता है और न ही स्वरों के समान इसमें हवा अबाध गति से बाहर निकलते समय ध्वनि-यंत्र के किन्हीं दो अंगों से संघर्ष करके बाहर निकलना पडता है। कभी जीभ और दाँत तो कभी ओष्ठ और दाँत, कभी वर्त्स्य और जीभ। इन अंगों में से किसी से भी संघर्ष करते समय हवा बाहर निकलती है ऐसी स्थिति में कुछ ध्वनियों का निर्माण हो जाता है। इन्हें भी संघर्षी व्यंजन ध्वनियाँ कहा जाता है। जैसे स, श, ह, ख, ग, ज, प, फ आदि।

3) स्पर्श संघर्षी ध्वनियाँ : स्पर्श संघर्षी ध्वनियों के उच्चारण में प्रारंभ में हवा का किसी अवयव से स्पर्श होता है मगर अन्त में हवा का बाहर निकलना घर्षन के साथ होता है तब उसे स्पर्श संघर्षी ध्वनियाँ कहा जाता है। अत: इसका प्रारंभिक चरण स्पर्श का होता है और अन्तिम चरण संघर्ष का। जैसे च, छ, ज, झ आदि।

4) नासिक्य व्यंजन ध्वनि : जिसके उच्चारण के समय दोनों ओष्ठ, जीभ, दाँत, पश्य जीभ, कोमल तालु आदि में से किसी न किसी से स्पर्श होकर हवा नासिका विवर से बाहर निकलती है उसे नासिक्य व्यंजन ध्वनि कहा जाता है। हर वर्ग के अन्त में आनेवाला व्यंजन नासिक्य व्यंजन कहा जाता है। जैसे ङ, त्र, ण, न, व आदि। इनके उच्चारण में हवा अबाध गति से नाक से निकलती रहती है।

5) पार्श्विक व्यंजन : मुख-विवर से हवा के बाहर निकलते समय उसका मार्ग मुख की मध्य रेखा पर कहीं भी ध्वनि-यंत्र के दो अंगों या अवयवों के सहारे रोका जाता है। ऐसी स्थिति में रूकी हुई हवा मुख-विवर के पिछले भाग से बाहर निकल जाती है तब जिस ध्वनि का उच्चारण होता है उसे पार्श्विक या विभक्त व्यंजन ध्वनि कहा जाता है। इसमें अवयव हवा को अवरूद्‌ध कर देते है। किंतु हवा एक या दोनों पार्श्वों से निकल जाती है। जैसे ल, छ आदि। पार्श्विक के दो भेद होते हैं, एक पार्श्विक, द्‌विपार्श्विक। 'ल' दोनों प्रकारों में गिना जाता है।

6) लुंठित व्यंजन ध्वनि : जिन ध्वनियों के उच्चारण के समय जीभ की नोक को लपेटकर तालु को स्पर्श करना पडता है उसे लुंठित व्यंजन ध्वनि कहा जाता है। ल, ळ लुंठित व्यंजन ध्वनियाँ हैं।

7) उत्क्षिप्त व्यंजन ध्वनि : जिस ध्वनि के उच्चारण में जीभ के नोक को उलटकर तालु को झटके से मार दिया जाता है और फिर जीभ को सीधा किया जाता है, उस समय उच्चरित होनेवाली ध्वनि उत्क्षिप्त ध्वनि कहलाई जाती है। यानी उत्क्षिप्त ध्वनि के समय जीभ ऊपर उठकर झटके से नीचे आती है। जैसे ट, ठ, ड, ढ।

8) संघर्षहीन सप्रवाह ध्वनियाँ : इसके उच्चारण में हवा का प्रवाह तो चलता रहता है, किंतु संघर्ष नहीं होता। 'य', 'व' ऐसी ही ध्वनियाँ है। इनकी स्थिति स्वर और व्यंजन के बीच की है। इसीकारण इन व्यंजनों को अर्धस्वर भी कहते हैं। वास्तव में ये स्वर से अधिक व्यंजन ही है।

(2) स्थान के आधारपर व्यंजन वर्गीकरण :

1) स्वर-यंत्रमुखी व्यंजन : स्वर-यंत्रमुखी व्यंजनों को अंग्रेजी में 'Laryneal' या glottl भी कहते हैं। उन व्यंजनों को स्वर-यंत्रमुखी व्यंजन कहा जाता है जिसका उच्चारण स्वर-यंत्रमुख से होता है। ऐसे व्यंजन भारतीय भाषाओं में कम रहे हैं। इन्हें स्वर-यंत्र स्थानीय, काकल्य, या उरस्य भी कहते हैं। जैसे 'ह', जर्मन भाषा में इसके उदाहरण मिलते हैं।

2) उपलिजिह्वीय व्यंजन : स्वर-यंत्र और अलिजिह्वा के बीच में उपलिजिह्वा होती है। उससे संघर्ष करते हुए उच्चरित हो जानेवाली ध्वनियों को उपलिजिह्वा व्यंजन ध्वनि कहा जाता है। इसके लिए जिह्वामूल को पीछे हटाकर गलबिल को संकीर्ण कर लिया जाता है। उपलिजिह्वीय ध्वनियाँ अफ्रीका के आसपास बोली जानेवाली भाषाओं में ऐसे व्यंजन ज्यादा मिलते हैं।

3) अलिजिह्वीय व्यंजन : कौअे या अलिजिह्व से इन व्यंजन ध्वनियों का उच्चारण किया जाता है। इसके लिए जिह्वामूल या जिह्वापश्च को या तो निकट ले जाकर वायुमार्ग सँकरा किया जाता है या उस समय जिह्वा पश्च और अलिजिह्व से संघर्षी होकर हवा निकलती है तब निर्माण होनेवाली ध्वनियों को अलिजिह्वीय ध्वनि कहा जाता है। इन्हें जिह्वामूलीय या जिह्वापश्चीय व्यंजन ध्वनि भी कहा जाता है। 'क' इस प्रकार की है।

4) कोमल तालव्य व्यंजन ध्वनि : जीभ के पिछले भाग के सहारे इन ध्वनियों को उत्पन्न करते हैं। यानी जीभ के पिछले भाग के सहारे निकली हुई ध्वनियाँ जब कोमल तालु को स्पर्श करती है तब उसे कोमल तालव्य ध्वनियाँ कहा जाता है। क वर्ग के क, ख, ग, घ, ङ इसमें आ जाते हैं।

5) मूर्धन्य व्यंजन : उन ध्वनियों को मूर्धन्य व्यंजन ध्वनि कहते हैं जिनके उच्चारण में मूर्द्धा से सहायता ली जाती है। मूर्धन्य ध्वनियों के उच्चारण में जीभ की नोक को उलटकर मूर्द्धा से उसका स्पर्श कराते हैं। इसीलिए इसे प्रतिवेष्ठित भी कहते हैं। संस्कृत में ट वर्ग, ऋ, प मूर्धन्य थे।

6) तालव्य व्यंजन : हवा का तालु या कठोर तालु से स्पर्श होकर निर्माण होनेवाली ध्वनियों को तालव्य ध्वनियाँ कहा जाता है। 'च' वर्ग की ध्वनियाँ इसमें आ जाती है। इनमें कोमल तालव्य और कठोर तालव्य ध्वनि व्यंजन आते हैं।

7) वर्त्स्य ध्वनियाँ : मसूडे या वर्त्स्य की सहायता से निर्माण होनेवाली ध्वनियों को वर्त्स्य ध्वनियाँ कहा जाता है। इन ध्वनियों के उच्चारण में जिह्वा की नोक दन्त-पंक्तियों के उपरिभाग को स्पर्श करती है। न, ल, र, श, ज इसी प्रकार की ध्वनियाँ है।

8) दन्त्य ध्वनियाँ : जिन ध्वनियों के उच्चारण में दाँत का स्पर्श होता है उन ध्वनियों को दन्त्य व्यंजन ध्वनियाँ कहते हैं। त, थ, द, ध यह दन्त्य ध्वनियाँ है।

9) दंतोष्ठ्य ध्वनियाँ : जब दोनें ओष्ठ एक दूसरे को स्पर्श करते हैं तब निर्माण होनेवाली ध्वनियों को दंत्योष्ठ ध्वनियाँ कहा जाता है इनमें दाँत और ओष्ठ का स्पर्श रहता है। प, फ, ब, भ इसी प्रकार की ध्वनियाँ है।

(3) स्वर-तंत्रियों के आधार पर व्यंजनों का वर्गीकरण :

स्वर-तंत्रियों के आधारपर दो भेद किए जा सकते हैं - i) घोष ध्वनि, ii) अघोष ध्वनि।

i) घोष ध्वनि - घोष वे ध्वनियाँ हैं जिनके उच्चारण में स्वर-तंत्रियों के निकट आ जाने से उसके बीच निकलती हवा से उनमें कंपन होता है। इस कंपन के कारण निर्माण होनेवाली ध्वनियाँ घोष है। हिंदी में सभी वर्ग के अंतिम तीन वर्ण घोष ध्वनियों के अन्तर्गत आते हैं। 'क' वर्ग आदि पाँचो वर्गो की अन्तिम तीन (अर्थात ग, घ, ङ, ज, झ, त्र आदि) ध्वनियाँ य, र, ल, व, ज, ग, ह, ड, ढ आदि घोष हैं।

ii) अघोष ध्वनि - जब स्वर-तंत्रियाँ एक-दूसरे से बिल्कुल अलग हो जाती है तब हवा बिना किसी रूकावट से बाहर निकल पडती है। इस समय स्वर-तंत्रियों में कोई कंपन नहीं होता। अर्थात बिना कंपन की अवस्था में उच्चरित होकर निर्माण होनेवाली ध्वनियों को अघोष ध्वनि कहा जाता है हिंदी में पाँचों वर्गों की प्रथम दो ध्वनियाँ, क, ख, फ, स, श आदि अघोष ध्वनियाँ है।

(4) प्राणत्व के आधार पर वर्गीकरण :

प्राणत्व से तात्पर्य है 'प्राण', उसका अर्थ है हवा की शक्ति। ध्वनि उच्चारण के लिए लगाई गई हवा की शक्ति। जब किसी ध्वनि उच्चारण के लिए हवा की अधिक शक्ति लग जाती है तब उच्चरित होनेवाली ध्वनि को 'महाप्राण' ध्वनि कहा जाता है। तथा जिन ध्वनि व्यंजनों के उच्चारण में हवा का आधिक्य न हो या हवा की शक्ति कम लग जाती है उसे अल्पप्राण ध्वनि कहा जाता है। क, ग, ङ, च, त्र, ट, ड, ण, त, द, न, प, ब, म, य, ल, र, ड़ आदि अल्पप्राण ध्वनियाँ है। तो ख, घ, छ, झ, ठ, ढ, थ, ध, न्ह, फ, म्ह, ल्ह, र्‍ह, ढ़ आदि महाप्राण ध्वनियाँ है। रोमन लिपि में 'H' (th, kh), उर्दू में 'हे' जोड़ना पड़ता है वे महाप्राण है, शेष अल्पप्राण है।

(5) उच्चारण - शक्ति के आधार पर :

इस आधार पर व्यंजनों के सशक्त और अशक्त तथा मध्यम ये तीन भेद किए जा सकते हैं। सशक्त व्यंजनों में 'स्', 'ट्' आदि है। इनके उच्चारण के समय मुँह की मांस पेशिया दृढ होती है। तो अशक्त में मांस पेशिया शिथिल होती है, जैसे - 'इ', 'ल'। कुछ ध्वनियाँ दोनों के मध्य आती है।

इस तरह ध्वनि वर्गीकरण तथा उनका आधार देखते हुए स्पष्ट हुआ है कि ध्वनियंत्र के विभिन्न अवयवों की सहायता से स्वर और व्यंजन ध्वनियाँ निर्माण होती है। जीभ का अग्र, मध्य या पश्च भाग, तालु, ओष्ठ आदि के आधार पर स्वरों का वर्गीकरण करना सहज संभव हो गया है। व्यंजन वर्गीकरण में प्रयत्न, स्थान, स्वर-तंत्री, प्राणत्व आदि आधार मानकर वर्गीकरण किया गया है। किंतु प्रयत्न के अंतर्गत स्फोट-अस्फोट, संघर्षी, स्पर्श संघर्षी, नासिक्य, पार्श्विक, लुंठित, उत्क्षिप्त आदि। तो स्थान के अंतर्गत स्वर-यंत्रमुखी, उपलिजिह्वीय, अलिजिह्वीय कोमल तालव्य, मूर्धन्य, तालव्य, वर्त्स्य, दंत्य, दंत्योष्ठ्य आदि व्यंजनों के आधार विशेष महत्त्वपूर्ण है। अंत में स्वर-तंत्रियों के आधार पर घोष, अघोष और प्राणत्व तथा उच्चारण शक्ति के आधार पर ध्वनि वर्गीकरण किया गया है। इससे ध्वनि वर्गीकरण तथा आधार पर प्रकाश पड सकता है।

1.3 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न :

(ब) सही विकल्प चुनकर वाक्य फिर से लिखिए।

1. अ, आ किस प्रकार के स्वर है?

   अ) अग्रस्वर — ब) पश्चस्वर

   क) मध्यस्वर — ड) अलग प्रकार

2. संवृत्त स्वर कौन से हैं?

   अ) ए, ओ — ब) इ, ई, उ, ऊ

   क) ऐ, अ, औ, ऑ — ड) अं, आ

3. वृत्तमुखी स्वर हैं -

   अ) उ, ऊ, औ, ओ. ऑ — ब) अ, आ, इ, ई, ए, ऐ

   क) अ, ए, ऐ — ड) आ, इ, ई

4. हृस्व स्वर पहचानिए -

   अ) आ, ई — ब) ऊ ऐ

   क) अ, इ, उ — ड) ए, ओ, औ

5. 'ओऽम' का 'ओ' किस प्रकार का स्वर है?

   अ) प्लुत स्वर — ब) हृस्व स्वर

   क) हृस्वार्ध स्वर — ड) दीर्घ स्वर

6. कौनसी व्यंजन ध्वनि स्फोट (स्पर्श) है?

   अ) क — ब) छ

   क) ज — ड) न

7. कौन से नासिक्य व्यंजन हैं -

अ) ङ, त्र, ण, न, व — ब) क, ख, ग, घ

क) च, छ, ज, झ — ड) ट, ठ, ड, ढ

8. जिस ध्वनि के उच्चारण में जीभ ऊपर उठकर झटके से नीचे आती है वह किस प्रकार की व्यंजन ध्वनि है?

अ) लुंठित — ब) उत्क्षिप्त

क) पार्श्विक — ड) तालव्य

9. स्वर-यंत्रमुखी व्यंजन किस भाषा में प्राप्त होते हैं?

अ) चीनी — ब) अंग्रेजी

क) जर्मन — ड) संस्कृत

10. किस वर्ग के व्यंजन कोमल तालव्य हैं?

अ) 'त' वर्ग — ब) 'ट' वर्ग

क) 'य' वर्ग — ड) 'क' वर्ग

11. कौनसी उत्क्षिप्त व्यंजन ध्वनियाँ हैं?

अ) ट, ठ, ड, ढ — ब) ल, ळ

क) य, व — ड) त्र, ण, न, व

12. दंत्योष्ठ ध्वनियाँ पहचानिएँ -

अ) व, त, थ, द — ब) प, फ, ब, भ

क) म, य, र, थ — ड) ध, द, न, त

13. ऋ, प किस प्रकार की व्यंजन ध्वनियाँ है?

अ) तालव्य — ब) कोमल तालव्य

क) मूर्धन्य — ड) उत्क्षिप्त

14. अल्पप्राण ध्वनियाँ कौनसी हैं?

अ) क, ग, ङ — ब) ख, ग, छ

क) झ, ठ, ढ — ड) थ, ध, न्ह

15. स्वर-तंत्रियों के आधार पर व्यंजनों के प्रमुख भेद कितने हैं?

अ) तीन — ब) चार

क) दो — ड) पाँच

16. कौनसी अघोष ध्वनि है?

अ) य ब) र

क) ल ड) क

1.2.3 ध्वनियों के भेद :

भाषा की लघुत्तम इकाई के रूप में ध्वनि को देखा जाता है। भाषा-ध्वनि के अंतर्गत मुख या कंठ से उत्पन्न ध्वनि का अध्ययन किया जाता है। मनुष्य-कंठ से अनंत ध्वनियाँ उत्पन्न होती हैं। उनकी सूक्ष्मतम भंगीमाओं का पता संगीत से चलता है, किंतु हमारा उद्देश्य है जो ध्वनियाँ भाषिक इकाई की दृष्टि से उपयोगी हैं उनपर विचार करना। यदि भाषा के लिए ध्वनि आवश्यक है तो यह देखना जरूरी है कि उनके प्रकार, उनके भेद। उनके भेद कैसे किए जाते हैं। ध्वनियों के प्रसिद्ध भेद दो हैं -

1) स्वर, 2) व्यंजन।

स्वर वह ध्वनियाँ है जिनका उच्चारण बिना किसी अन्य ध्वनि की सहायता से किया जाता है। भारतीय साहित्य में स्वर शब्द का प्रयोग वैदिक काल से चल रहा है। ऋग्वेद में उसका प्रयोग एक ध्वनि के अर्थ में किया जाता था। स्वर का अर्थ है ध्वनि करना। इसी कारण महाभाष्यकार पतंजलि स्वर के बारे में कहते हैं, ''जो ध्वनियाँ उच्चारण की दृष्टि से स्वतंत्र हो। अर्थात जिनका उच्चारण बिना किसी अन्य किसी ध्वनि की सहायता से किया जा सके, उन्हें स्वर कहते है।''[4] (चौधरी तेजपाल : 2017) हिंदी में अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ आदि। और जो ध्वनियाँ पराश्रित हो अर्थात जिनका उच्चारण किसी की सहायता से किया जा सके उन्हें व्यंजन कहते हैं। उदा. क, ख, ग, घ, ङ, च आदि।

भारत में स्वर तथा व्यंजन के अंतर के संकेत पहले भी (ब्राह्मणों और अरण्यकों में) मिलते हैं भारतीय परम्परा में माना जाता है कि, स्वर उन ध्वनियों को कहते हैं जो स्वयं उच्चरित होते हैं और व्यंजन उन ध्वनियों को कहते हैं जो स्वर की सहायता से उच्चरित होते हैं। यूरोप में ई. पू. दूसरी सदी में प्रसिद्ध वैयाकरण थ्रैक्स ने भी स्वर-व्यंजन को ठीक इसी रूप में परिभाषित किया है। अत: स्पष्ट हो जाता है कि स्वर स्वतंत्र है तो व्यंजन उन पर आधारित है। भारत और यूरोप में स्वर और व्यंजन की परिभाषा को मान्यता मिली है किंतु संसार की कई भाषाओं में पूरे शब्द ऐसे भी है जिनमें एक भी स्वर नहीं है। पूरे शब्द स्वर की सहायता के बिना उच्चरित हो सकते हैं। रूमानिया तथा अफ्रीका की भाषाओं में ऐसे शब्द हैं, उदा. अफ्रीका की इबो भाषा में डग्‌डग्‌ड्‌गड्‌ (पार्सल) चैक भाषा का तो एक पूरा वाक्य ऐसा है जिसमें एक भी स्वर नहीं है। इसीकारण स्वर-व्यंजन को पारिभाषित किया गया है। ''स्वर वह ध्वनि है जिसके उच्चारण में हवा अबाध गति से मुखविवर से निकल जाती है।''

''व्यंजन वह ध्वनि है जिसके उच्चारण में हवा अबाध गति से नहीं निकलने पाती या तो इसे पूर्ण अवरूद्ध होकर फिर आगे बढना पडता है या संकीर्ण मार्ग से घर्षण खाते हुए निकलना पडता है। या मध्य रेखा से हटकर एक या दोनों पार्श्वो से निकलना पडता है या किसी भाग को कंपित करते हुए निकलना पडता है। इस प्रकार वायुमार्ग में पूर्ण या अपूर्ण अवरोध उपस्थित होता है।''[5] (तिवारी डॉ भोलानाथ : 2016)

स्वर और व्यंजन की अलग-अलग परिभाषाएँ हैं किंतु आज तक ऐसी परिभाषाएँ प्राप्त नहीं है, जिन्हें सारे संसार की भाषाओं में पाए जानेवाले स्वरों और व्यंजनों पर ज्यों कि त्यों लागू किया जा सके। फिर भी परिभाषाओं के आधार पर दोनों के भीतर अन्तर स्थापित किया जा सकता है। भेद किया जाता है। स्वर और व्यंजन में भेद -

स्वर और व्यंजन में अंतर दिखाते समय निम्नांकित बाते बताना आवश्यक लगता है -

1) स्वरों का अकेले उच्चारण किया जा सकता है, किंतु व्यंजनों में केवल संघर्षी व्यंजनों के शेष के पहले या बाद में स्वर होने पर ही उच्चारण संभव है। (पहले - अब, बाद मे - जा)

2) स्वरों का उच्चारण देर तक किया जा सकता है व्यंजनों में केवल संघर्षी व्यंजन ही ऐसे होते हैं। शेष का उच्चारण ऐसा नहीं है।

3) ई, ऊ जैसे स्वरों के अपवादों को छोडकर अधिकांश स्वरों के उच्चारण में मुखविवर में हवा गूँजती हुई बिना किसी अवरोध के निकल जाती है। व्यंजन इसके विरोधी है पूर्ण या अपूर्ण अवरोध हवा के मार्ग में व्यवधान उपस्थित करता है।

4) स्वर आक्षरिक (syllabic) होते हैं। संध्यक्षरों (diphthong) में निश्चित रूप से कुछ स्वरों का अनाक्षरिक स्वरूप दिखाई पडता है किंतु यह अपवाद जैसा है। दूसरी ओर प्राय: सभी व्यंजन अनाक्षरिक (non-syllabic) होते हैं। अपवाद स्वरूप न्, र्, ल् आदि चार पाँच व्यंजन ही कभी-कभी कुछ भाषाओं में आक्षरिक रूप में दृष्टिगत होते हैं। इस अंतर का आधार भाषा है।

5) मुखरता की दृष्टि से भी स्वर-व्यंजन में अंतर है। स्वर में अधिक मुखरता होती है व्यंजनों में कम। कुछ अपवाद छोडकर स्वरों और व्यंजनों के अलग-अलग स्वर बनाए जा सकते हैं इसमें श्रवणीयता का आधार है।

6) कुछ यंत्रों में जैसे ऑसिलोग्राफ आदि में स्वर और प्रमुख व्यंजनों की लहरों में भी अंतर मिलता है। किंतु र्, म् जैसे व्यंजनों की लहरे प्रकृति की दृष्टि से स्वर और व्यंजन के बीच आती है।

7) स्वरों का उच्चारण यानी मुखविवर में होनेवाली एक प्रकार की गूँज होती है। किंतु व्यंजनों का उच्चारण मुख में स्थान विशेष से होता है। स्वरों में ऐसी स्थिति नहीं होती।

8) ध्वन्यात्मक (Phonetic) दृष्टि से स्वर व्यंजन में भेद करना कठिन है किंतु भाषा विशेष में स्वनिमिक (Phonemic) दृष्टि से उनमें भेद दिखाया जा सकता है।[6] (तिवारी डॉ. भोलानाथ : 2016)

स्वरों के भेदों में जिव्हा और ओष्ठ दोनों की भूमिका प्रधान रहती है। जिसमें जिह्वा की ऊँचाई, उत्थापित भाग और ओठों की स्थिति पर भेद किए जाते हैं। जिह्वा की ऊँचाई के अनुसार चार भेद माने जाते हैं। i) विवृत्त, ii) अर्धविवृत, iii) अर्धसंवृत्त, iv) संवृत्त।

जिह्वा के उत्थापित भाग के अनुसार अग्र, मध्य और पश्च स्वरों के भेद निर्माण होते हैं। इन भागों के अनुसार स्वरों के भेद किए गए हैं इसपर स्वरों के वर्गीकरण में विस्तृत विवेचन किया गया है।

ओष्ठों की स्थिति के अनुसार प्रसृत स्वर, वर्तुल स्वर, अर्धवर्तुल स्वर भेद किए जा सकते है। प्रसृत स्वरों में इ, ई, ए, ऐ आदि है। वर्तुल में उ, ऊ, ओ, औ आदि तो अर्धवर्तुल में आ स्वर आ जाता है।

व्यंजन ध्वनियों में स्पर्श, स्पर्श-संघर्षी, संघर्षी, पार्श्विक, लोडित, उत्क्षिप्त, अन्त:स्थ और अनुनासिक ध्वनियों के रूप में भेद किए जाते हैं।

स्पर्श व्यंजनों में क वर्ग, च वर्ग, ट वर्ग, त वर्ग, प वर्ग, ध्वनियाँ आती है।

स्पर्श-संघर्षी में उच्चारण के समय स्पर्श के साथ निश्वास वायु के निर्गम में हल्का-सा संघर्षण होता है। हिंदी में च, छ, ज, झ आदि स्पर्श-संघर्षी मानी गई है।

संघर्षी, पार्श्विक, लोडित,अन्त:स्थ और अनुनासिक व्यंजन ध्वनि भेदों पर ध्वनि वर्गीकरण में विवेचन किया गया है, उसे देखकर ध्वनियों के भेदों पर विस्तृत विवेचन किया जा सकता है।

ध्वनियों के भेदों में स्वर और व्यंजन प्रमुख दो भेद है। स्वर वे ध्वनियाँ हैं जिनके उच्चारण में किसी प्रकार की बाधा उत्पन्न नहीं होती। हवा अबाध गति से निकल जाती है। मगर व्यंजन ध्वनियों के उच्चारण में हवा अबाध गति से नहीं निकल पाती। दोनों की उच्चारण स्थिति पर निर्भर भी ध्वनिभेद किए जाते हैं।

स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न :

(क) सही विकल्प चुनकर वाक्य फिर से लिखिए।

1. ध्वनियों के प्रसिद्ध भेद कितने हैं?

   अ) तीन   ब) चार

   क) दो   ड) पाँच

2. भारतीय साहित्य में 'स्वर' शब्द का प्रयोग कब से चल रहा है?

   अ) वैदिक काल   ब) पुराणकाल

   क) महाभारत   ड) रामायण

3. स्वर की सहायता से उच्चरित होनेवाली ध्वनि है -

   अ) आ   ब) ए

   क) उ   ड) क

4. ई. स. पूर्व दूसरी सदी में स्वर और व्यंजन ध्वनि को भारतीय परम्परा के अनुसार किसने परिभाषित किया था?

   अ) थ्रेक्स   ब) कॉडवेल

   क) होर्नले   ड) ट्रम्प

5. अफ्रीका की किस भाषा का शब्द 'डगूडगूड्गड्' है?

अ) चैक | ब) कांगो
क) इबो | ड) जुलू

6. स्पर्श-संघर्षी व्यंजन कौनसे हैं?

अ) क, ख, ग, घ | ब) च, छ, ज, झ
क) य, र, ल, व | ड) प, फ, ब, भ, म

7. जिह्वा की ऊँचाई के अनुसार स्वर भेद है -

अ) विवृत्त | ब) उत्क्षिप्त
क) स्पर्श | ड) संघर्षी

8. अर्धवर्तुल स्वर कौनसा है?

अ) अ | ब) आ
क) ई | ड) ए

9. जिह्वा के उत्थापित भाग के अनुसार स्वरों के कितने भेद है?

अ) तीन | ब) पाँच
क) छह | ड) सात

10. व्यंजन ध्वनियों का भेद बताइए।

अ) संवृत्त | ब) विवृत्त
क) पश्च | ड) पार्श्विक

1.2.4 ध्वनि परिवर्तन के कारण, दिशाएँ और प्रकार :

भाषा का सम्बन्ध जीवित मानव समाज से होता है, यानी भाषा भी जीवित मानी जाती है। जो जीवित है वह परिवर्तनशील होता है। भाषा मानव समाज से सम्बन्धित होने के कारण सहज ही उसमें भी परिवर्तन आ जाता है। हम ने अब तक देखा है कि भाषा का मूल, ध्वनि है। इसीलिए भाषा परिवर्तन के पहले ध्वनि परिवर्तन जानना आवश्यक है। इन ध्वनियों-शब्द की ध्वनियों में सदैव परिवर्तन होते रहते हैं। उदाहरण के लिए कल का 'कृष्ण' आज 'किशन' या 'कान्हा' है। ये परिवर्तन धीरे-धीरे होते रहते हैं जो अपने पूरे क्षेत्र में व्यापक रहता है। जिस प्रकार तालाब में पत्थर या ढ़ेले से लहर उत्पन्न होकर सारे तालाब में फैल जाती है उसी प्रकार ध्वनियों का यह परिवर्तन भी फैलता है। परिवर्तन के विषय में प्रश्न उठता है कि ये परिवर्तन किन कारणों से होते हैं। ध्वनि विज्ञान के ध्वनि परिवर्तन दो कारणों से होता है -

i) बाह्य कारण ii) आंतरिक कारण।

बाह्य कारण का मतलब है भाषा का प्रयोग जिस समाज में किया जाता है उस समाज से सम्बन्धित सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक तथा भौगोलिक आदि के कारण ध्वनियों में परिवर्तन हो जाता है। यह परिवर्तन धीरे-धीरे हो जाता है। इसीलिए इनसे संबंधित जो ध्वनियाँ होती है वे अपना परिवर्तन इन कारणों के गति से करते रहते है। जैसे 'ॐ नम: सिद्धम' धर्म सम्बन्धित है जिसका आगे चलकर 'ओनाम सीधम' ऐसा कर दिया गया है। ध्वनिविज्ञान में इसीलिए बाह्य कारणों से परिवर्तित होनेवाली ध्वनियों का जिस गहराई से विचार होना जरूरी था वह हो नहीं पाया है।

आंतरिक परिवर्तन ध्वनि परिवर्तन का प्रमुख कारण है। जिसका तात्पर्य है - स्वराघात, बलाघात, अनुकरण की क्षमता, मानसिक स्तर, प्रयोगाधिक्य, घिसना, अर्थबोध की दृष्टि आदि बातें आती है। इसमें एक से अधिक कारण, ध्वनि परिवर्तन में एक साथ कार्य करते रहते हैं। केवल कुछ कारण ही परिवर्तन लाते हैं यह कहना भी कठीण है। कुछ ध्वनि परिवर्तन के कारण अन्यत्र ज्यों कि त्यों नहीं हो सकते। उसकी मात्रा कम अधिक हो सकती है। पहले हम उन कारणों पर प्रकाश डालेंगे जो बाह्य और आंतरिक में भी है।

1) वाक्-यंत्र की विभिन्नता : सभी मानव प्राणियों को प्रकृति ने सभी अवयव एक जैसे दिए हैं - हाथ, पैर, आँखे, कान, नाक आदि। लेकिन रंग रूप अलग-अलग है। प्रदेश विशेष के अनुसार समानताएँ भी है। किन्हीं दो व्यक्तियों के वाक्-यंत्र ठीक-ठीक एक जैसे नहीं होते । बोलने की क्रिया हम इसी यंत्र से करते हैं। मगर हर व्यक्ति का स्वरयंत्र बोलने का काम एक ही जैसा करता है ऐसा नहीं होता। और न ही एक ध्वनि का उच्चारण लोग ठीक एक जैसा ही कर सकते हैं। ध्वनियंत्र की सुवधिा के लिए हर एक का ध्वनि उच्चारण अलग-अलग होता है। मानव की अलग-अलग दशाएँ होती है। बचपन, युवावस्था, बुढ़ापा इन अवस्थाओं में जिस भाषा का उच्चारण किया जाता है इसमें आनेवाली ध्वनियाँ एक जैसी नहीं होती। बढ़ती उम्र के साथ उनमें परिवर्तन होता जाता है। ध्वनियंत्र की क्षमता के अनुसार ध्वनियों का उच्चारण अलग-अलग होता है। दो व्यक्तियों के ध्वनि उच्चारण अलग-अलग होते है, क्योंकि दोनों के वाक्यंत्र की विभिन्नता ।

2) श्रवणेन्द्रिय की विभिन्नता : भाषा सुनकर सीखी जाती है। पहले हमें श्रवण करना है हर व्यक्ति की श्रवणेंन्द्रिय दूसरे से भिन्न होती है। अत: उसे ध्वनि कुछ भिन्न सुनाई पड़ती है। अपने सुनने के अनुरूप ही वह कुछ भिन्न रूप में बोलता है और ध्वनि परिवर्तन हो जाता है। कभी-कभी सुननेवाले के श्रवणेन्द्रिय अकार्यक्षम होते हैं जिससे वे कुछ विपरित सुन लेते हैं और किसी अन्य के सामने इस विपरित ध्वनि को पेश करते हैं। अत: जब उन ध्वनियों को असली रूप में नहीं प्रकट किया जाता तब तक वे विपरित रूप में प्रकट होती रहती हैं।

3) अनुकरण की अपूर्णता : मनुष्य अनुकरण प्रिय प्राणी है। भाषा को भी वह अनुकरण के द्वारा सीख लेता है। दूसरों का या बडों का सुनकर बाद में वैसे ही बोलने का प्रयत्न किया जाता है। भाषा सीखने की यह पहली सीढी होती है। मगर इस प्रथम सोपान पर ही अनुकरण में पूर्णता नहीं होती तो कभी ऐसा होता है कि जिसका अनुकरण किया जा रहा है वही भाषा की दृष्टि से अपूर्ण रहा है। परिणामत: कुछ ध्वनियाँ अपूर्णता के कारण अलग रूप में प्रयुक्त हो जाती है। बहुत से शब्द ऐसे हैं, जो अंग्रेजी का हिंदीकरण कर आए हैं। अंग्रेजी का सही उच्चारण ज्ञात न

होने के कारण हिंदीकरण करते समय उसका बिगडा हुआ रूप ही सामने आ जाता है, जैसे 'डॉक्टर' का 'डाक्टर'। बच्चा सुनता है रूपया, किंतु अपूर्ण अनुकरण से 'लुपया' अथवा 'नुपया' कह पाता है। 'सिगनल' का 'सिंगल' है। इस प्रकार का अनुकरण अज्ञानी लोगों से अधिक होता है।

4) अज्ञान के कारण ध्वनि परिर्वन : भाषा में केवल अपनी भाषा के ही शब्द होते है ऐसा नहीं है। भाषा में किसी भी अन्य देशी विदेशी भाषाओं के शब्द आ ही जाते हैं जिनके उच्चारण का निश्चित ज्ञान हमारे पास नहीं होता। ऐसी स्थिति में अधिकतर यही हो जाता है कि ऐसे पराए, अपरिचित शब्दों का उच्चारण अशुद्ध रूप में ही किया जाता है। अशुद्ध उच्चारण होने से ध्वनि में परितर्वन आ जाता है, उदा. 'इंजीनियर' का 'इंजीयर', 'हू कम्स देअर का' 'हुकुम सदर', 'कॉलेज' का 'कालेज' आदि इसमें अज्ञान और अनुकरण की अपूर्णता दोनों भी कारण रखे जा सकते हैं।

5) लौकिक व्युत्पत्ति के कारण : लौकिक या भ्रामक कारण में भी अज्ञान एवं अशिक्षा कार्यरत होती है। एक तो अन्य भाषा के शब्द का सही ज्ञान हमें नहीं होता। दूसरे मूल भाषा में उस शब्द का जो सही अर्थ रहा है उससे मिलता जुलता कोई शब्द यदि अपनी भाषा में होगा तो उस शब्द को ही सही मानकर उसी का प्रयोग किया जाता है। उदा. अरबी का शब्द है 'इन्तिकाल' और हिंदी का है 'अन्तकाल' दोनों में साधर्म्य है मगर अर्थ की दृष्टि से दोनों भिन्न है - इन्तिकाल का अर्थ है आखरी समय और अन्तकाल का है - मर जाना। मगर अन्तकाल को हिंदी में इन्तिकाल भी कहा जाता है। इसी तरह 'मार्केट' का 'मर्कट' (मर्कट बाजार कटक में), 'चार्ज शीट' का 'चार सीट'। 'बनर्जी' का 'वानरजी', माउंट आबू में एक स्थान का नाम अंग्रेजों ने 'Sunset Point' रखा था लोग उसे 'सैंसठ-पैंसठ' कहते हैं, 'लायब्रेरी' के लिए 'रायबरेली'। इस तरह ध्वनि परिवर्तन के साथ-साथ शब्द में अर्थपरिवर्तन भी आता है।

6) बोलने में शीघ्रता : अधिकतर लोगों की आदत होती है, बोलते समय जल्दबाजी करते है परिणामत: शब्दों का सही उच्चारण वे कर नहीं पाते। कभी-कभी तीन-चार अक्षरोवाला शब्द एक दो अक्षरों का ही बना देते हैं, जिससे धवनि परिवर्तन आ जाता है। उदा. 'उन्होंने' के लिए 'उन्ने' या 'पंडितजी' के लिए पंडिजी, इक हत्तर का हरियाणी में 'खत्तर', 'दूध दो का 'दूद्दो', 'मार डाला' का 'माड्डाला', 'थैंक्यू' का केवल 'क्यू' रहा गया है।

7) उच्चारण की सुविधा या प्रयत्न लाघव : मनुष्य की यह स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि उसे जो-जो कठिन लगता है वह उसे सरल बना देता है। मुख को सुख देने के प्रयास में कभी-कभी हम किसी ध्वनि का कठिण होने के कारण शब्द विशेष में उच्चारण करना ही छोड देते हैं। अंग्रेजी में talk, walk, know, Psychology आदि में कुछ ध्वनियों का उच्चारण इसलिए नहीं कया जाता। वहाँ उनके उच्चारण में जीभ को द्रविड प्राणायम करना पडता है। यानी कठिनता से सरलता की ओर जाने की प्रवृत्ति ध्वनि परिवर्तन में प्रयत्न लाघव बन जाती है। जिस ध्वनि का उच्चारण मुख को कष्टदायक होता है उस ध्वनि को नया रूप दिया जाता है। जिससे ध्वनियों में परिवर्तन आ जाता है। 'स्कूल' तथा 'स्टेशन' को कुछ लोग तो 'इस्कूल', तथा 'इस्टेशन' और कुछ लोग 'सकूल' तथा 'सटेशन' कहते हैं 'गोपेन्द्र' से 'गोबिन', 'सपत्नी' से 'सौत' आदि। कभी कभी प्रयत्न लाघव के प्रयास में शब्दों को काट-छाँट कर छोटा बनाने से पहचानना भी कठिन हो जाता है।

8) विदेशी ध्वनि या विदेशी भाषा : जब कोई भाषा-भाषी किसी दूसरी भाषा के संपर्क में आता है और उस विदेशी भाषा में यदि कुछ ऐसी ध्वनियाँ रहती है जो उनकी अपनी भाषा में नहीं रहती तब वह अपनी भाषा की उनसे मिलती-जुलती या निकटतम ध्वनियों का प्रयोग करता है और इस प्रकार ध्वनि परिवर्तन हो जाता है। भारतीय भाषाओं में यूनानी, पुर्तगाली, जापानी, चीनी आदि भाषाओं का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है। हिंदी में अंग्रेजी के प्रभाव से कई नामों तथा उपनामों के उच्चारण का प्रभाव 'अ' के बजाय 'आ' किया जाता है। 'ऑगस्ट' का 'अगस्त', 'डेसंबर' से 'दिसम्बर', 'रिपोर्ट' से 'रपट' आदि। इसमें विदेशी ध्वनि और विभाषा का प्रभाव देखा जा सकता है।

9) भौगोलिक प्रभाव : भौगोलिक परिवर्तन के कारण ध्वनियों में भी परिवर्तन हो जाता है। जैसे शीत प्रदेश में रहनेवाले लोगों का ध्वनि-यंत्र संकुचित रहता है इसीलिए वे प्राय: कोमल ध्वनियों का प्रयोग करते है। कुछ लोगों का कहना है कि ठंड़ी या शीत जलवायु में ध्वनियाँ संवृत्त होती है तथा गर्म में विकृत। मगर इस प्रकार से होनेवाला ध्वनिपरिवर्तन अध्ययन की दृष्टि से विशेष लाभकारी नहीं होता। क्योंकि आदत से मजबूर लोग प्राय: अपनी आदतें नहीं बदलते जिसकी वजह से ध्वनि परिवर्तन होता ही है।

10) सामाजिक और राजनीतिक प्रभाव : राजनीति और समाजा दोनों परस्पराश्रित है। समाज की विशेषता यह है कि वह परिवर्तनशील है। परिवर्तनशील समाज मे राजनीति भी बदलती जाती है। यदि समाज में सुख-शांति है तो उसपर आधारित राजनीति भी दृढ और स्थिर रहती है, जब दोनों परिस्थितियों में स्थिरता रहती है तब वहाँ ज्ञान का प्रसार अधिक होता है। जिससे भाषा भी परिष्कृत हो जाती है। कभी-कभी लिखने की सुविधा की दृष्टि से ध्वनियों में परिवर्तन किया जाता है। तो कभी-कभी लंबे शब्दों को छोटा बनाकर लिखने से ध्वनियों में परिवर्तन हो जाता है। उदा. 'जयरामजी' का जे रामजी।

11) बलहीन व्यंजनों की अधिकता : व्यंजन दो प्रकार के होते हैं - बली व्यंजन और बलहीन व्यंजन। जिन शब्दों में बलहीन व्यंजन अधिक होते हैं उनमें ध्वनि परिवर्तन जल्दी हो जाता है। कभी-कभी शब्द के अतर्गत हर अक्षर का स्थान विशेष होता है किंतु जब इनमें स्थानांतर हो जाता है तब ध्वनियाँ बलहीन हो जाती है और उनमें परिवर्तन आ जाता है।

कभी-कभी तुकबंदी के लिए कवियों द्वारा ध्वनि परिवर्तन कर लिया जाता है। मात्रा ठिक करने के लिए भी वे इस प्रकार की हरकत करते हैं। जिससे भी ध्वनियों में परिवर्तन होता है। रीतिकालीन कवियों में इस प्रकार के काफी प्रयोग मिलते है भक्तिकालीन संतों ने भी ऐसे प्रयोग किए हैं।

12) बलाघात के कारण : बलाघात के कारण भी ध्वनि-परिवर्तन हो जाता है। किसी ध्वनि पर अधिक बल देने से या किसी ध्वनि का बलहीन प्रयोग करने से ध्वनि परिवर्तन हो जाता है। किसी शब्द के उच्चारण में किसी विरोधी ध्वनि पर अधिक बल पडता है तो वहाँ कुछ ध्वनियों का लोप हो जाता है और नई ध्वनि विकसित हो जाती है। इसमें बलाघात के निकट समीपवर्ती ध्वनियाँ प्रभावित होती हैं। 'अभ्यंतर' शब्द का 'भीतर', 'स्थाली' से 'थाली', 'बाजार' का 'बजार' ये सारे शब्द रूप बलाघात के कारण बने हुए हैं। पंजाबी लोगों के मुँह से ऐसे उदाहरण सुनने मिलते हैं - बरीक (बारीक), सहित्य (साहित्य) आदि।

13) अंध:विश्वास : भारतीय संस्कृति में अंधविश्वास दिखाई देता है। बहुत से शब्द ऐसे हैं जिनका सही उच्चारण नहीं होता परिणामत: उन शब्दों के गलत उच्चारण से ध्वनि परिवर्तन हो जाता है। अंधविश्वास के कारण हमारे भीतर डर पैदा होता है और हम 'साँप' के लिए 'रस्सी', 'बिच्छु' के लिए 'कीड़ा' कहते रहते हैं।

14) सहजीकरण : दूसरी भाषाओं के अज्ञात शब्दों को कभी-कभी जानबूझकर भी परिवर्तित कर लिया जाता है। उस शब्द को भाषा में सहज करने के लिए ऐसा करते हैं उदा. 'एकेड़मी' को हिन्दी में 'अकादमी', 'टेकनीक' को 'तकनीक', 'कॉमेडी' के लिए 'कामदी' आदि सहजीकरण का प्रभाव है। स्वतंत्रता के बाद स्वीकार किए गए तकनीकी शब्दों में इस प्रकार के काफी शब्द हैं।

ध्वनि में परिवर्तन लानेवाले विवेचित कारणों से शब्द, अर्थ और वाक्य परिवर्तन भी हो सकता है। इन कारणों के अलावा, ध्वनि परिवर्तन के अन्य बाह्य कारण भी कार्यरत हो सकते हैं। जिन्हें भी हम इसमें समाविष्ट कर सकते हैं।

ध्वनिपरिवर्तन की दिशाएँ और प्रकार :

ध्वनिपरिवर्तन के कारणों पर विचार करने के बाद उनके कार्यपर विचार करना आवश्यक है। कार्य से यहाँ आशय है, ध्वनि-परिवर्तन से। ध्वनि परिवर्तन मुख्यत: दो प्रकार के होते हैं एक तो 'स्वयंभू' ध्वनि परिवर्तन। इसके अंतर्गत वे परिवर्तन आते हैं जिनके विषय में कुछ अधिक कह सकना असंभव है अत: इसमें तो कोई खास कारण नहीं होता। दूसरे प्रकार के परिवर्तनों को 'परोद्भूत' कहा जाता है। इसमें बोलने में शीघ्रता, मुख-सुख, स्वराघात आदि अनेक प्रभावों से ध्वनियों में परिवर्तन होता जाता है। यहाँ प्रमुख रूप से उनपर ही विचार किया जाएगा। ध्वनि परिवर्तन की दिशाएँ और प्रकार इस प्रकार है -

1) लोप	5) विषमीकरण	9) मात्रा भेद
2) आगम	6) संधि	10) घोषीकरण
3) विपर्यय	7) उष्मीकरण	11) अघोषीकरण
4) समीकरण	8) स्वत:अनुनासिकता	12) महाप्राणीकरण।

1) लोप (Elision) **:**

कभी-कभी बोलते समय कथन में से स्वर, व्यंजन या अक्षर का लोप हो जाता है। ऐसा मुख-सुख, स्वराघात या शीघ्रता के कारण होता है। भाषाओं में सब से अधिक प्रवृत्ति इसी की मिलती है। लोप के कारण होनेवाले ध्वनि परिवर्तन के तीन भेद है - (क) स्वरलोप, (ख) व्यंजन लोप, (ग) स्वर व्यंजन लोप।

(क) स्वरलोप : स्वर लोप के तीन भेद है - i) आदि स्वरलोप, ii) मध्य स्वरलोप, iii) अन्त्य स्वरलोप।

i) आदि स्वरलोप - किसी शब्द के प्रारंभिक शब्द का लोप होता है; तब शब्द का रूप और ध्वनि में परिवर्तन हो जाता है, वह स्वर-लोप है। जैसे अनाज का नाज, अगर का गर, अतिसी का तीसी तथा अफसाना का फसाना।

ii) मध्य स्वरलोप - जब शब्द के मध्य का स्वर नष्ट हो जाता है और उससे बननेवाले नए शब्द में ध्वनिपरिवर्तन

आ जाता है। जैसे शाबास का भोजपुरी में साबस होता है। बलदेव = बल्देव, लगभग = लग्भग, कपडा = कप्डा। इन लुप्त हो जानेवाले स्वरों को मध्य स्वरलोप कहते है। अंग्रेजी में Do Not = don't में भी यह बात मिलती है।

iii) अन्त्य स्वरलोप - मध्य स्वरलोप की भाँति बोलने में अकारांत शब्दों का 'अ' लुप्त हो जाता है और नया शब्द बन जाता है जिसे अन्त्य स्वरलोप कहा जाता है। किंतु इस प्रकार के शब्द मौखिक भाषा तक ही सीमित रहते हैं। उदा. आप = आप्, आम = आम्, राम = राम्, दाम = दाम्, हम = हम्, चल = चल्। हिंदी में प्राय: आकारांत शब्द व्यंजनार्थ हो जाता है।

(ख) व्यंजन लोप : उच्चारण की कठिनाई से बोलने में कुछ व्यंजनों को उच्चरित नहीं करते तब यह लोप होता है। अंग्रेजी में इसके काफी उदाहरण मिलते हैं। व्यंजन लोप भी तीन प्रकार का है - i) आदि व्यंजनलोप, ii) मध्य व्यंजनलोप, iii) अंत्य व्यंजनलोप।

i) आदि व्यंजनलोप - इसमें शब्द के प्रारंभ में आए हुए व्यंजन का लोप हो जाता है। उच्चारण की कठिनाई से विशेष कर अंग्रेजी भाषा में आदि व्यंजनलोप की प्रवृत्ति दिखाई देती है। हिंदी में स्थान का थान, स्मशान = मशा, स्टेशन = टेशन। अंग्रेजी में Kinfe = nife, gnow = now, आदि।

ii) मध्य व्यंजनलोप - बोलने की सुविधा की दृष्टि से कभी-कभी शब्द के मध्य का व्यंजन लुप्त होकर शब्द का रूप बदलता है और उच्चारण में भी परिवर्तन आता रहता है। उदा. घरद्वार का घरबार, कर्म = काम, कोलिक = कोयल, कार्तिक = कातिक, उपवास = उपास। अंग्रेजी में walk = वाक, talk = टाक, daughter = डॉटर आदि।

iii) अंत्य व्यंजनलोप - भारतीय भाषाओं में अन्त्य व्यंजन लोप के उदाहरण बहुत कम मिलते है। क्योंकि बोलते समय अंतिम व्यंजन का लोप आम तौर पर होता नहीं है। अंग्रेजी भाषा में इसके उदाहरण प्राप्त होते हैं जैसे अंग्रेजी में अंत्य 'r' का उच्चारण प्राय: नहीं होता। उदा. Father = फादअ, water = वाटअ, command = कमान, ऐसा हिंदी में होता है।

(ग) स्वर व्यंजन लोप (अक्षर-लोप) : पाँच-छह वर्णोवाला कोई अक्षर होगा तो मुख- सुख की दृष्टि से या बोलने में सरलता के उद्‌देश्य से उसमें से अक्षरों का लोप किया जाता है। इसके भी तीन भेद हैं - i) आदि अक्षरलोप, ii) मध्य अक्षरलोप, iii) अन्त्य अक्षरलोप।

i) आदि अक्षरलोप - जब किसी शब्द के प्रारंभिक अक्षरों का लोप होता है तब शब्द रूप और ध्वनि में परिवर्तन हो जाता है। इसे ही आदि अक्षरलोप कहा जाता है। इसके उदाहरण भी कम मिलते हैं जैसे आदित्यवार का इतवार, अध्यापक का 'झा' नेकटाई से टाई।

ii) मध्य अक्षरलोप - जहाँ किसी प्रचलित शब्द के मध्य से कालांतर में कई स्वर और व्यंजन लुप्त हो जाते है वहाँ मध्य अक्षर लोप होता है। जैसे फलाहार का फलार (ब्रज) अग्रहायण का अगहन, भाण्डागार का भंडार, राजकुल्य = राउर (भोजपुरी का उदाहरण)।

iii) अन्त्य अक्षरलोप - यदि किसी शब्द में एक ही ध्वनि या ध्वनिसमूह के अंतिम अक्षर का लोप हो जाता है तब उसे अंत्य अक्षरलोप कहते हैं। जैसे माता का माँ, वैसे नीलमणि = नीलम्, भ्रातृजाया = भावज, आम्र = आम, निम्बुक = नींबू, मौक्तिक = मोती, कतरिका = कटारी आदि।

2) आगम :

जब कोई ध्वनि किसी शब्द के प्रारंभ, मध्य या अन्त में आकार अपना स्थाई स्थान बना लेती है उसे आगम कहते हैं।जिससे शब्द और ध्वनि में भी परिवर्तन हो जाता है। इसके भी तीन प्रकार है - (क) स्वरागम, (ख) व्यंजनागम, (ग) अक्षरागम।

(क) स्वरागम : जब कोई नया स्वर आ जाता है तब उसे स्वरागम की संज्ञा दी जाती है। इसके भी कई भेद होते हैं - i) आदि स्वरागम, ii) मध्य स्वरागम, iii) अन्त्य स्वरागम।

i) आदि स्वरागम - प्राय: अंग्रेजी का हिंदीकरण करते समय आदि स्वरागम की प्रवृत्ति पायी जाती है जिससे ध्वनि परिवर्तन हो गया है। इसमें किसी शब्द के प्रारंभ में कोई स्वर आ जाता है जैसे स्टूल का इस्टूल, स्कूल = ईस्कूल, स्त्री = इस्त्री, स्फोट = इस्फोट आदि।

ii) मध्य स्वरागम - संयुक्त व्यंजन के उच्चारण में जब कठिनाई होती है तब बोलने में सुविधा इस दृष्टि से कभी-कभी शब्द के बीच में नया स्वर जोडा जाता है इसे मध्य स्वरागम कहते हैं। पंजाबियों के बोलने में मध्य स्वरागम की प्रवृत्ति मिलती है। मध्य स्वरागम के कारण ध्वनि परिवर्तन आ जाता है। जैसे - पूर्व का पूरब, दवा = दवाई, पत्र = पतई, स्कूल = सकूल, जन्म = जनम, भक्त = भगत (भोजपुरी) दुइज = दूज या बेईल = बेला।

iii) अन्त्य स्वरागम - अन्त्य स्वरागम की प्रवृत्ति भी बहुत कम मिलती है। जहाँ किसी शब्द के अंत में किसी स्वर का उच्चारण होने लगता है वहाँ अन्त्य स्वरागम होता है। उदा. जर्मन agon से अंग्रेजी agony, 'सन्देश' से सन्देशा, पुरवा से पुरवाई आदि।

इन तीनों के अलावा समस्वरागम भी एक भेद स्वीकृत किया है। इसमें एक स्वर विद्यमान होता है उसी के सादृश्य पर अन्य स्वर भी आता है। उदा. भरद्‌वाज से भारद्‌वाज में 'भ' के साथ 'आ' का आगम समस्वर है।

(ख) व्यंजनागम : इसमें किसी शब्द में व्यंजन का आगम होता है। तीन भेद - i) आदि व्यंजनागम, ii) मध्य व्यंजनागम, iii) अन्त्य व्यंजनागम।

i) आदि व्यंजनागम - आगम का कारण मुख-सुख ही है और व्यंजन से असुविधा ही होती है। इसके बहुत कम उदाहरण मिलते हैं। अस्थि का 'हड्डी', उल्लास का 'उलास', ओष्ठ-'ओंठ' आदि।

ii) मध्य व्यंजनागम - जब किसी शब्द के मध्य में किसी व्यंजन का आगमन हो जाता है तब मध्य व्यंजनागम होता हैं। इसके उदाहरण काफी मिलते है - टालटूल का टालमटोल, शाप का श्राप, सुनरी का सुन्दरी, पण का प्रण आदि।

iii) अन्त्य व्यंजनागम - अन्त्य व्यंजनागम के उदाहरण कम मिलते है भोजपुरी में इसके उदाहरण मिलते हैं- चील = चील्ह्, भौं = भौंह, उमरा = उमराव, कल = कल्ल, परवा = परवाह आदि।

(ग) अक्षरागम : अक्षरागम के उदाहरण बहुत कम मिलते है। इसके तीन भेद है - i) आदि अक्षरागम, ii) मध्य अक्षरागम, iii) अन्त्य अक्षरागम।

i) आदि अक्षरागम - गुंजा = घुँगुची (भोजपुरी), फजूल = बेफजूल।

ii) मध्य अक्षरागम - आलसी = अलकसी, आलस = आलकस (भोजपुरी), कमी = कमताई आदि।

iii) अन्त्य अक्षरागम - आँख = आँखड़ी, मुख = मुखड़ा, जीभ = जीभड़ी आदि।

3) विपर्यय (Metathesis) :

विपर्यय को परस्पर विनिमय या वर्ण व्यत्यय भी कहा जाता है। इसमें किसी शब्द के अक्षर अपने स्थान बदल देते हैं उसमें स्वर व्यंजन सभी आते है। जैसे पहले स्थान का व्यंजन दूसरे स्थानपर दूसरे स्थान का पहले स्थानपर। स्थान बदलने से शब्द का रूप और अर्थ भी बदलता है इसके तीन भेद है -

(क) स्वर विपर्यय, (ख) व्यंजन विपर्यय, (ग) अक्षर विपर्यय।

(क) स्वर विपर्यय : जब किसी शब्द में से कोई शब्द आगे से पीछे से आगे बोला जाता है तब स्वर विपर्यय होता है। इसके दो भेद है। i) पार्श्ववर्ती स्वर विपर्यय, ii) दूरवर्ती स्वर विपर्यय।

i) पार्श्ववर्ती स्वर विपर्यय - दिए = देई, लिए = लेई, अमरुद = अरमूद। अर्थात इसमें पास-पास की ध्वनियाँ अपना स्थान बदल देती है।

ii) दूरवर्ती स्वर विपर्यय - अमली = इमली, पागल = पगला, अनुमान = उनमान, कुछ = कछु। अर्थात दूर-दूर की ध्वनियाँ अपना स्थान बदल देती है।

(ख) व्यंजन विपर्यय : इसमें कोई व्यंजन आगे से पीछे या पीछे से आगे बोला जाने लगता है। इसके दो भेद हैं - i) पार्श्ववर्ती व्यंजन विपर्यय, ii) दूरवर्ती व्यंजन विपर्यय।

i) पार्श्ववर्ती व्यंजन विपर्यय - ब्राह्मण का बामन, ब्रह्म का बम्म, चिह्न का चिन्ह। अर्थात पास-पास के व्यंजन अपना स्थान बदल देते हैं।

ii) दूरवर्ती व्यंजन विपर्यय - महाराष्ट्र का मरहठा, वाराणसी का बनारस, मुकलचा का मुचलका। अर्थात अलग-अलग (दूर) स्थान के व्यंजन अपना स्थान बदल देते है।

(ग) अक्षर विपर्यय : जब किसी शब्द के कई स्वर और व्यंजन अपना स्थान परिवर्तित करके उच्चरित होने लगता है तब अक्षर विपर्यय होता है। इसके दो भेद हैं - i) पार्श्ववर्ती अक्षर विपर्यय, ii) दूरवर्ती अक्षर विपर्यय। किन्तु अक्षर विपर्यय को उतनी मान्यता नहीं मिली।

i) पार्श्ववर्ती अक्षर विपर्यय - अजरक का 'अर्जक', मतलब का 'मतबल' आदि।

ii) दूरवर्ती अक्षर विपर्यय - लखनौ का 'नखलौ', पहुँचना का 'चहुँकना', आदि।

अक्षर विपर्यय में एकांगी विपर्यय और आद्य शब्दार्थ विपर्यय दोनों को स्वीकृति दी गई है।

एकांगी विपर्यय को वेन्द्रिये महोदय ने स्वीकृत किया है। जिसमें कोई एक स्वर या व्यंजन अपनी जगह छोडकर अन्यत्र जाता है। किंतु उसके स्थान पर दूसरा नहीं आता। वहाँ एकांगी विपर्यय होता है। उदा. पुर्तगाली भाषा में Festra का Fresta (खिडकी) ब्रिटेन की बोली में Debri (खाना) का Drebi, बिन्दु = बूँद आदि।

आद्य शब्दार्थ विपर्यय में शब्दों के आरंभ के अंशों में विपर्यय हो जाता है। इसी कारण उसे आद्यशब्दार्थ विपर्यय कहते है। ऑक्सफर्ड के डॉ. डब्लू. ए. स्पूनर से यह विपर्यय अधिक हो जाता था। उन्हीं के नाम पर इसे स्पूनरिज्म कहते हैं। उनका एक उदाहरण यहाँ देते हैं - Two bags and a rug के स्थान पर Two rags and a bug एक बार तो उन्होंने बिगडकर कहा था - You have tasted a whole worm वे कहना चाहते थे You have wasted a whole term हिंदी में किसी ने पूछा, 'आपकी बडी (घडी) में क्या वजा (बजा) है?' उत्तर था - चौ - नौ बजकर ना (चा) लिस मिनट। स्वर विपर्यय में - चूल्हा-चौका से चौल्हा - चूका या नून-तेल का नेन-तूल आदि।

4) समीकरण (Assmilation) :

इसे सारूप्य, सावर्ण्य या अनुरूपता भी कहते हैं। जहाँ कोई ध्वनि, समीपवर्ती ध्वनि को प्रभावित करती है वहाँ समीकरण होता है। समीकरण लेखन की अपेक्षा मौखिक भाषा में अधिक होता है। इसके तीन भेद होते है -

(क) व्यंजन, (ख) स्वर, (ग) अपूर्ण समीकरण।

(क) व्यंजन : व्यंजन के कई भेद है - i) दूरवर्ती पुरोगामी समीकरण, ii) पार्श्ववर्ती पुरोगामी समीकरण, iii) दूरवर्ती पश्चगामी समीकरण, iv) पार्श्ववर्ती पश्चगामी समीकरण।

i) दूरवर्ती पुरोगामी व्यंजन समीकरण - इसमें दो व्यंजन पास-पास न रहकर दूर-दूर रहते हैं। पहला दूसरे को प्रभावित करता है। इसके उदाहरण बहुत कम मिलते हैं। खटपट् = खटखट, भ्रष्ट = भरभट।

ii) पार्श्ववर्ती पुरोगामी व्यंजन समीकरण - इसमें दो व्यंजन पास-पास होते हैं। प्रथम दूसरे को प्रभावित कर अपने जैसा बना देता है वहाँ पार्श्ववर्ती पुरोगामी व्यंजन समीकरण होता है। प्राकृतों में इसके उदाहरण मिलते हैं - चक्र = चक्क, पद्म = पद्द, लग्न = लग्ग, यस्य = जस्य हिंदी में चक्रिका से चक्की आदि।

iii) दूरवर्ती पश्चगामी व्यंजन समीकरण - इसमें दो व्यंजन दूर-दूर होकर भी पहला दूसरे को प्रभावित करता है। इसके बहुत कम उदाहरण मिलते हैं - लैटिन में Pequo = Quequo, Pipue = Quique, नील = लील (भोजपुरी)।

iv) पार्श्ववर्ती पश्चगामी व्यंजन समीकरण - इसमें शब्द के भीतर पास-पास दो व्यंजन होते है और दूसरा

प्रथम को प्रभावित करता है। प्राकृत में इसके अधिक उदाहरण मिलते हैं - कर्म = कम्म, भक्त = भत्त, दुर्गा = दुग्गा। हिंदी में शर्करा = शक्कर, कलकटर = कलट्टर आदि।

(ख) स्वर : स्वर समीकरण में भी व्यंजन समीकरण की तरह स्थिति है। i) दूरवर्ती पुरोगामी स्वर समीकरण, ii) पार्श्ववर्ती पुरोगामी स्वर समीकरण, iii) दूरवर्ती पश्चगामी स्वर समीकरण, iv) पार्श्ववर्ती पश्चगामी स्वर समीकरण।

i) दूरवर्ती पुरोगामी स्वर समीकरण में दूर-दूर के स्वरों में से प्रथम स्वर दूसरे को प्रभावित करता है। उदा. खुरपा= खुरूपा, जुल्म = जुलम = जुलूम आदि।

ii) पार्श्ववर्ती पुरोगामी स्वर समीकरण में निकट-निकट के स्वरों में से प्रथम स्वर दूसरे को प्रभावित करता है जिससे यह परिवर्तन होता है किंतु स्वरों के निकट होने के उदाहरण नहीं मिलते।

iii) दूरवर्ती पश्चगामी स्वर समीकरण में दूर-दूर के दो स्वरों में से दूसरा स्वर प्रथम को प्रभावित करता है उदा. अंगुली = उंगल, उक्षु = उक्खु आदि।

iv) पार्श्ववर्ती पश्चगामी स्वर समीकरण स्वर समीकरण के भेद नाममात्र है।

5) विषमीकरण (dissimilation) :

जब निकटवर्ती दो समान ध्वनियाँ अपना रूप छोडकर दूसरा रूप धारण कर लेती है तब विषमीकरण होता है। अर्थात यह समीकरण के बिल्कुल उलटा है। इसका प्रमुख कारण है, सुननेवाला ध्यान से सुने। इसके भी दो भेद है - (क) स्वर विषमीकरण, (ख) व्यंजन विषमीकरण।

(क) स्वर विषमीकरण : इसके दो भेद है - i) पुरोगामी विषमीकरण, ii) पश्चगामी विषमीकरण।

i) पुरोगामी विषमीकरण - जब समीपवर्ती दो समान स्वरों में से प्रथम स्वर ज्यों कि त्यों रहता है किंन्तु दूसरे स्वर का रूप बदलता है वहाँ पुरोगामी स्वर विषमीकरण होता हे उदा. संस्कृत पुरूष = प्राकृत पुरिस, या पुलिस, भित्ति = भीत आदि।

ii) पश्चगामी विषमीकरण - जब समीपवर्ती दो समान स्वरों में से प्रथम स्वर बदल जाता है और दूसरा स्वर (ध्वनि) ज्यों कि त्यो बना रहता है तब पश्चगामी स्वर विषमीकरण होता है। उदा. नूपुर = नेउर, मुकुल = मऊल, मुकुट = मउर (भोजपुरी) आदि।

(ख) व्यंजन विषमीकरण : इसके दो भेद हैं, जों बिल्कुल स्वर विषमीकरण की तरह है। स्वरों की जगह व्यंजन आते हैं। i) पुरोगामी विषमीकरण, ii) पश्चगामी विषमीकरण।

i) पुरोगामी विषमीकरण - प्रथम व्यंजन ज्यों का त्यों रहता है मगर दूसरा व्यंजन परिवर्तित हो जाता है तो उसे पुरोगामी व्यंजन विषमीकरण कहते हैं। उदा. काक = काग, पिपासा = प्यास, कंकण = कंगण आदि।

ii) पश्चगामी विषमीकरण - दो समान व्यंजनों में से दूसरा व्यंजन ज्यों कि त्यों रहता है मगर प्रथम व्यंजन का

रूप बदलता है तो पश्चगामी व्यंजन विषमीकरण होता है। उदा. नवनीत = लयनू (भोजपुरी), साबस (शाबास) = चाबस (भोजपुरी), पुर्तगाली Lelloo = नीला आदि।

6) संधि :

कुछ व्यंजन (प, व, म, य आदि) उच्चारण में स्वर के निकट होने के कारण स्वर में परिवर्तित हो जाते हैं और अपने से पहले व्यंजन में मिल जाते हैं जिससे ध्वनियों में खूब परिवर्तन होता है। संधि के संबंधी जो नियम है वे स्वर-व्यंजनों को केंद्र में रखकर ही बनाए गए है। संधियों की प्रवृत्ति मौखिक भाषा में ही नजर आती है। उदा. नयन = नइन, नैन, भ्रमर = भँवर, भौंरा आदि।

7) उष्मीकरण (Assibilation) :

कभी-कभी कुछ ध्वनियों का उष्मीकरण हो जाता है। अर्थात वे उष्म में परिवर्तित हो जाती है। मूल 'क' ध्वनि सतम् वर्ग में उष्मीकृत है। भारतीय भाषाओं में इसी के आधार पर ही केन्तुम और सतम् दो वर्ग बनाए गए है।

8) स्वत:अनुनासिकता (Spontaneous Nazalization) :

शब्दों के विकास में यह दो प्रकार से कार्यकरती है - i) सकारण और ii) अकारण।

i) सकारण के उदाहरण हैं - भंग = भाँग, कंपन = काँपना, चन्द्र = चाँद।

ii) अकारण में बिना किसी कारण के अनुनासिकता आ जाती है। उदा. सर्प से साँप यानी यहाँ मूल शब्द में अनुनासिकता नहीं भी किंतु 'साँप' में है। इसी को स्वत: अनुनासिकता कहते हैं। इसके बारे में विवादात्मक स्थिति है, फिर भी कहा जा सकता है कि अनुनासिक स्वरवाले शब्द में उच्चारण के कम प्रयास का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। इसी कारण ही इसका विकास हो गया है।

9) मात्रा भेद :

मात्राभेद में किसी शब्द में स्वर कभी ह्रस्व से दीर्घ और कभी दीर्घ से ह्रस्व हो जाता है। ऐसे परिवर्तन स्वराघात के कारण होते हैं। इसके दो भेद हैं - i) ह्रस्व से दीर्घ (दीर्घीकरण), ii) दीर्घ से ह्रस्व (ह्रस्वीकरण)।

i) ह्रस्व से दीर्घ में ह्रस्व से दीर्घ की प्रवृत्ति पायी जाती है। किसी शब्द का कोई स्वर (मात्रा) दीर्घ हो जाता है। उदा. कंटक = काँटा, लज्जा = लाज, दुग्ध = दूध, भिक्षा = भीख आदि।

ii) दीर्घ से ह्रस्व में दीर्घ से ह्रस्व बनने की प्रवृत्ति पायी जाती है। किसी शब्द में स्वर (मात्रा) दीर्घ से ह्रस्व हो जाता है। उदा. शून्य = सुन्न, वानर = बन्दर, आगस्ट = अगस्त, ऑफिसर = अफसर आदि।

10) घोषीकरण (Vocalization) :

उच्चारण में सुविधा के कारण कुछ अघोष ध्वनियाँ घोष हो जाती है। इसे सघोषीकरण भी कहते हैं। उदा. साक = साग, कंकण = कंगन, घोटक = घोड़ा, मकर = मगर आदि।

11) अघोषीकरण (Devocalization) :

अघोषीकरण में घोषीकरण के बिल्कुल उलटा है। इसमें सघोष ध्वनि, अघोष ध्वनि के रूप में परिवर्तित होती है। इसके उदाहरण बहुत कम मिलते है। यह प्रवृत्ति पैशाची प्राकृत, भोजपुरी, आदि भाषाओं में देखी जा सकती हैं। उदा. अदद = अदत्, मदद = मदत् (भोजपुरी), नगर = नकर, गगन = गकन (पैशाची प्राकृत)।

12) महाप्राणीकरण (Asplration - Deaspiration) :

महाप्राणीकरण में अल्पप्राण ध्वनियाँ कालांतर में महाप्राण बन जाती है। दोनों बातों पर विचार करना जरूरी है कि महाप्राण से अल्पप्राण और अल्पप्राण से महाप्राण में परिवर्तित होती है। इसीकारण इसे दोनों नामों से अर्थात महाप्राणीकरण अल्पप्राणीकरण से भी संबोधित किया जाता है। दोनों के क्रमश: उदाहरण है - हस्त = हाथ, शुष्क = सुखा। भगिनी = बहिन, वसिष्ठ = वसिष्ट आदि।

ध्वनि परिवर्तन की दिशाएँ और प्रकार पर प्रकाश डालने से स्पष्ट होता है कि ध्वनि परिवर्तन की कई दिशाएँ है इनके अलावा भी अन्य दिशाओं से ध्वनिपरिवर्तन होता रहता है। किंतु विवेचित दिशाएँ और प्रकारों से किस तरह से ध्वनि परिवर्तन होता है यह बात अधिक निखरती है।

स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न :

(ड) सही विकल्प चुनकर वाक्य फिर से लिखिए।

1. बचपन या बुढ़ापे में ध्वनि उच्चारण किस कारण से अलग होता है?
   अ) वाक्-यंत्र की विभिन्नता   ब) श्रवणेन्द्रिय की विभिन्नता
   क) अनुकरण की अपूर्णता   ड) भौगोलिक प्रभाव

2. 'इन्तिकाल' अरबी शब्द को हिंदी में 'अन्तकाल' कहने में कौनसा ध्वनिपरिवर्तन है?
   अ) बोलने में शीघ्रता   ब) लौकिक व्युत्पत्ति - कारण
   क) अज्ञान के कारण   ड) विदेशी ध्वनि

3. 'साँप' को रस्सी कहने में ध्वनिपरिवर्तन का कौनसा कारण कार्यरत है?
   अ) सहजीकरण   ब) बलाघात
   क) अंधविश्वास   ड) बलहीन व्यंजन की अधिकता

4. तुकबंदी के लिए ध्वनि परिवर्तन कौन करता है?
   अ) राजनीतिज्ञ   ब) भाषावैज्ञानिक
   क) वैज्ञानिक   ड) कवि

5. लोप के कारण कितने प्रकार के ध्वनिपरिवर्तन होते हैं?
   अ) दो   ब) तीन
   क) चार   ड) पाँच

6. अकारांत शब्दों का 'अ' लुप्त होने से किस प्रकार का स्वर लोप होता है?

अ) आदि स्वरलोप | ब) मध्य स्वरलोप

क) अन्त्य स्वरलोप | ड) अन्त्य व्यंजन लोप

7. स्थान का 'थान' होने में कौनसा व्यंजन लोप है?

अ) मध्य व्यंजनलोप | ब) आदि व्यंजनलोप

क) अन्त्य व्यंजनलोप | ड) लोप का कोई अन्य कारण

8. आद्य शब्दार्थ विपर्यय को किसके नाम पर 'स्पूनरिज्म' कहते हैं?

अ) ब्लॉक और टर्नर | ब) जॉर्ज ग्रियर्सन

क) डब्लू ए स्पूनर | ड) डॉ. चटर्जी

9. किसी शब्द में स्वर कभी ह्रस्व से दीर्घ और दीर्घ से ह्रस्व होने में कौनसा कार्य कार्यरत है?

अ) उष्मीकरण | ब) संधि

क) घोषीकरण | ड) मात्रा भेद

10. जब निकटवर्ती दो समान ध्वनियाँ अपना रूप छोडकर दूसरा रूप धारण कर लेती है तब क्या होता है?

अ) समीकरण | ब) विषमीकरण

क) उष्मीकरण | ड) घोषीकरण

11. ध्वनि परिवर्तन के किस दिशा की प्रवृत्ति भाषाओं में अधिक प्राप्त होती है?

अ) विषमीकरण | ब) समीकरण

क) लोप | ड) घोषीकरण

12. 'इंजीनिअर' का 'इंजीयर' करने में ध्वनि परिवर्तन का कौनसा कारण जड में है?

अ) अज्ञान | ब) लौकिक व्युत्पत्ति

क) बोलने की शीघ्रता | ड) अंधविश्वास

13. 'उन्होंने' के लिए 'उन्ने' कहने में ध्वनि परिवर्तन का कौनसा कारण है?

अ) अनुकरण की अपूर्णता | ब) बोलने की शीघ्रता

क) वाक-यंत्र की विभिन्नता | ड) अंधविश्वास

14. ध्वनि परिवर्तन मुख्यत: कितने प्रकार के होते हैं?

अ) पाँच | ब) चार

क) तीन | ड) दो

15. शब्द के प्रारंभ, मध्य या अन्त में जब कोई ध्वनि अपना स्थायी स्थान बना लेती है, तब ध्वनि परिवर्तन की कौनसी स्थिति होती है?

अ) लोप　　ब) विपर्यय

क) आगम　　ड) समीकरण

16. आगम ध्वनि परिवर्तन के प्रमुख भेद कितने है?

अ) तीन　　ब) चार

क) पाँच　　ड) छह

17. 'वर्णव्यत्यत' शब्द किस का पर्यायवाची है?

अ) विपर्यय　　ब) लोप

क) आगम　　ड) उष्मीकरण

18. 'उमरा' शब्द जब 'उमराव' रूप धारण करता है तब किस प्रकार का आगम होना है?

अ) आदि व्यंजनागम　　ब) मध्य व्यंजनागम

क) अन्त्य व्यंजनागम　　ड) अलग उत्तर है।

1.4 शब्दार्थ, संदर्भ, टिप्पणियाँ :

संवहन = (संस्कृत) ले जाना, नेतृत्त्व करना; दिखलाना, प्रदर्शित करना।

कौआ = गले की भीतर की घाँटी; धूर्त मनुष्य; काले रंग का एक पक्षी धूर्तता आदि के लिए प्रसिद्ध होता है।

उपांशु = (संस्कृत) मौन; मंद स्वर में मंत्र का जप।

व्यवहृत = (संस्कृत) आचरित, अनुष्ठित, व्यवहार या प्रयोग में लाया हुआ। व्यापार; संपर्क।

विवृत्त = (संस्कृत) व्यक्त, स्पष्ट, प्रत्यक्ष, अनावृत्त, खुला हुआ, घोषित, फैला हुआ, विस्तृत।

संवृत्त = (संस्कृत) ढ़का हुआ, छिपा हुआ, गुप्त, बंद, घिरा हुआ। उच्चारण का एक प्रकार।

पार्श्विक = (संस्कृत) पार्श्व-संबंधी, किसी एक पार्श्व में होने या रहनेवाला।

उत्क्षिप्त = (संस्कृत) ऊपर फेंका हुआ, उछाला हुआ, दूर फेंका हुआ।

व्यवधान = (संस्कृत) बीच में पड़नेवाली वस्तु, परदा करनेवाला।

पुरोगामी = आगे-आगे चलनेवाला, अगुआ, प्रधान।

आगम = (संस्कृत) आना, अवाई, समगम।

विपर्यय = (संस्कृत) व्यतिक्रम, विपरीतता, प्रतिकूलता।

1.5 सारांश :

भाषाविज्ञान में ध्वनिविज्ञान सब से महत्त्वपूर्ण और प्रधान विज्ञान माना जाता है। भाषा, मानव के लिए आवश्यक है। बिना भाषा के मानव का विकास ही असंभव है। लेकिन भाषा का आधार है ध्वनि। ध्वनि से अक्षर, शब्द, वाक्य और अर्थ। इस तरह भाषा की यात्रा ही ध्वनि से शुरू होती है। ध्वनि और ध्वनि से संबंधित ध्वनि विश्लेषण, वर्णन और वर्गीकरण करने का काम ध्वनिविज्ञान करता है। ध्वनिविज्ञान में भाषावैज्ञानिक दृष्टि से जो ध्वनियाँ आवश्यक है उन्हीं भाषा ध्वनियों का अध्ययन किया जाता है।

ध्वनि, वक्ता के मुँह से नि:सृत होती है और नि:सृत ध्वनि श्रोता के कानों से ग्रहण की जाती है। वायु तरंगो से वह श्रोता तक पहुँचती है। इसीकारण भाषावैज्ञानिक को ध्वनिविज्ञान की जानकारी हेतु ध्वनियंत्र और उसके अवयवों से भी वाकिफ होना जरूरी है तभी वह ध्वनिविज्ञान पर विस्तृत बात कर सकता है। जैसे शरीर चिकित्सक को शरीरविज्ञान का पूरा ज्ञान होना चाहिए उसी प्रकार भाषावैज्ञानिक को ध्वनिविज्ञान का। ध्वनियंत्र अपना कार्य किस प्रकार करता है ध्वनि के उच्चारण में ध्वनियंत्र के कौनसे अवयव सक्रिय होकर सहायता करते हैं इसपर भी प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है। श्वसन क्रिया के समय जो ध्वनिनिर्मिती का काम चलता है उस समय किस प्रकार ध्वनियाँ निकलती है इसपर भी विचार किया गया है। निकली हुई ध्वनियों के अध्ययन में ऐतिहासिक, वर्णनात्मक और तुलनात्मक पद्धतियों की भूमिका को चित्रित किया है।

ध्वनियंत्र के अवयवों की सहायता से भाषावैज्ञानिक दृष्टि से अपेक्षित ध्वनि के वर्गीकरण और आधार पर विचार किया गया है। स्वरों के उच्चारण के आधारों में जिह्वा, ओष्ठ आदि किस प्रकार काम आते हैं, उनके आधारों पर ध्वनियों का वर्गीकरण जिसमें अग्र, मध्य, पश्च के रूप में जिह्वा की भूमिका और वृत्तमुखी स्वर आवृत्तमुखी स्वर भेदों में ओष्ठ किस प्रकार काम आता है इस पर प्रकाश डाला गया है। व्यंजनों के वर्गीकरण में प्रयत्न, स्थान के साथ स्वरतंत्रियाँ, प्राणत्व और उच्चारण शक्ति भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण है।

ध्वनियों के भेदों में स्वर और व्यंजन को ही प्रमुख माना है। स्वर ध्वनि के उच्चारण में हवा अबाध गति से मुख विवर से निकल जाती है तो व्यंजन के उच्चारण में हवा को अवरूद्ध होकर या घर्षण खाते हुए ही निकलना पडता है। उसके बगैर व्यंजनों का उच्चारण असंभव है। इस पर विद्वानों में एक मत नहीं हो सकता किंतु स्वरों के उच्चारण में और व्यंजनों के उच्चारण में अंतर होने की बात तो स्पष्ट होती ही है। इसीकारण स्वर और व्यंजन में जो भेद है उसे भी स्पष्ट किया है।

ध्वनिविज्ञान में भाषा के लिए जो आवश्यक ध्वनियाँ है। उन ध्वनियों में परिवर्तन क्यों आता है। बाह्य कारण, आंतरिक कारण किस प्रकार सक्रिय होते हैं, साथ ही ध्वनि परिवर्तन होने में जितने कारण हैं अधिकतर उनपर ही प्रकाश डालने का प्रयास किया है। अज्ञान, सादृश्यता, विदेशी ध्वनियाँ, अपूर्ण अनुकरण, श्रवणेन्द्रिय, बलाघात, तथा सहजीकरण आदि कई ऐसी दिशाएँ और कारण हैं, जिससे निश्चित रूप से ध्वनियों में परिवर्तन आता है। ध्वनि परिवर्तन से भाषा में प्रयुक्त शब्दों के अर्थोपर भी असर हो सकता है। ध्वनि परिवर्तन के कारण दिशाएँ और प्रकारों से विस्तृत रूप से शब्द ज्ञान होने में मदद होती है। इसतरह स्पष्ट होता है कि ध्वनि विज्ञान के बारे में विस्तृत न सही लेकिन आवश्यक ज्ञान की प्राप्ति होती है।

1.6 स्वयं अध्ययन प्रश्नों के उत्तर :

(अ)

1) अ - ग्रीक
2) ब - तीन
3) क - वायुतरंग
4) ब - ध्वनि
5) अ - श्वासनलिका के ऊपर और अभिककल के नीचे
6) ब - स्वरतंत्री
7) क - ध्वनिविज्ञान
8) ड - ध्वनिविज्ञान
9) ब - ध्वनि
10) अ - पाँच
11) क - स्वन
12) अ - शिक्षाशास्त्र
13) ब - वर्णनात्मक पद्धति
14) अ - चार
15) ब - ध्वनिविज्ञान
16) अ - स्वरतंत्री
17) क - वर्त्स
18) ड - दाँत

(ब)

1) क - मध्यस्वर
2) ब - इ, ई, उ, ऊ
3) अ - उ, ऊ, औ, ओ, ऑ
4) क - अ, इ, उ,
5) अ - प्लुत स्वर
6) अ - क
7) अ - ङ, त्र, ण, न, व
8) ब - उत्क्षिप्त
9) क - जर्मन
10) ड - 'क' वर्ग
11) अ - ट, ठ, ड, ढ
12) ब - प, फ, ब, भ
13) क - मूर्धन्य
14) अ - क, ग, ङ
15) क - दो
16) ड - क

(क)

1) क - दो
2) अ - वैदिक काल
3) ड - क
4) अ - थ्रैक्स
5) ड - इबो
6) ब - च, छ, ज, झ
7) अ - विवृत्त
8) ब - आ
9) अ - तीन
10) ड - पार्श्विक

(ड)

1) अ - वाक्‌यंत्र की विभिन्नता
2) ब - लौकिक व्युत्पत्ति-कारण
3) क - अंधविश्वास
4) क - कवि
5) ब - तीन
6) क - अन्त्य स्वर-लोप
7) ब - आदि व्यंजन-लोप
8) क - डब्लू. ए. स्पूनर
9) ड - मात्रा भेद
10) ब - विषमीकरण
11) ड - लोप
12) अ - अज्ञान
13) ब - बोलने की शीघ्रता
14) ड - दो
15) क - आगम
16) अ - तीन
17) अ - विपर्यय
18) क - अन्त्य व्यंजनागम

1.7 स्वाध्याय :

(अ) दीर्घोत्तरी प्रश्न।

1) ध्वनिविज्ञान का स्वरूप बताकर ध्वनियंत्र का सामान्य परिचय दीजिए।
2) ध्वनियंत्र का परिचय देकर ध्वनिनिर्माण पर प्रकाश डालिए।
3) स्वर ध्वनियों के वर्गीकरण को स्पष्ट कीजिए।
4) व्यंजन ध्वनियों के वर्गीकरण पर प्रकाश डालिए।
5) ध्वनियों के भेद बताकर अंतर को स्पष्ट कीजिए।
6) ध्वनि परिवर्तन के कारणों को स्पष्ट कीजिए।
7) ध्वनि परिवर्तन की दिशाओं और प्रकारों को विशद कीजिए।
8) ध्वनि परिवर्तन का स्वरूप बताकर कारणों पर प्रकाश डालिए।

(आ) टिप्पणियाँ ।

1) ध्वनियंत्र के अवयव।
2) ध्वनिनिर्मिती और भाषाध्वनि।
3) ध्वनिनिर्मिती की अवस्थाएँ।
4) जीभ और ओष्ठ के आधार पर स्वरों का वर्गीकरण।
5) स्थान के आधार पर व्यंजनों का वर्गीकरण।
6) प्रयत्न के आधार पर व्यंजनों का वर्गीकरण।
7) ध्वनि परिवर्तन में लोप का महत्त्व।
8) ध्वनिपरिवर्तन में विपर्यय।
9) ध्वनिपरिवर्तन में आगम का महत्त्व।
10) ध्वनिपरिवर्तन में समीकरण।

1.8 क्षेत्रीय कार्य :

- ध्वनिविज्ञान और शब्दविज्ञान का तुलनात्मक वर्णन कीजिए।
- आंतर्राष्ट्रीय ध्वन्यात्मक लिपिचिह्नों का अध्ययन कीजिए।
- ध्वनिनियमों का अध्ययन कीजिए।
- ध्वनिविज्ञान पर लिखे पृथक ग्रंथों का अध्ययन कीजिए।

1.9 संदर्भ ग्रंथ सूची :

1) समाधिया डॉ. नारायणदास : 'भाषाविज्ञान और हिंदी भाषा', परिचय खुरजा संस्करण 1985 ई. पृ. सं. 47

2) तिवारी डॉ. भोलानाथ : 'भाषाविज्ञान', किताब महल, 224 सरोजिनी नायडू मार्ग, इलाहाबाद. संस्करण 2016 ई. पृ. सं. 299

3) शर्मा डॉ. हरिश : 'सामान्य भाषाविज्ञान', अमित प्रकाशन, गाजियाबाद (उ. प्र.), प्रथम संस्करण 1972 ई. पृ. सं. 99-100

4) चौधरी तेजपाल : 'भाषा और भाषाविज्ञान' विकास प्रकाशन, 311 सी, विश्वबैंक बर्रा, कानपुर 208021, तृ. संस्करण 2017, पृ. सं. 55

5) तिवारी डॉ. भोलानाथ : 'भाषाविज्ञान', संस्करण 2016, ई. पृ. सं. 307

6) तिवारी डॉ. भोलानाथ : 'भाषाविज्ञान', संस्करण 2016, ई. पृ. सं. 308

1.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए :

1) देवेन्द्रनाथ शर्मा/ दीप्ति शर्मा : भाषाविज्ञान की भूमिका

2) डॉ. हणमंतराव पाटील : भाषाविज्ञान एवं हिंदी भाषा

3) डॉ. रूपाली चौधरी : भाषाविज्ञान एवं हिंदी भाषा

4) डॉ. कृष्णा पोतदार, डॉ. मधु खराटे : भाषाविज्ञान एवं भाषाविचार

❑❑❑

इकाई : 2

पदविज्ञान

अनुक्रम-रूपरेखा

2.0 उद्‌देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 विषय विवरण

- पदविज्ञान

  पाठ्यविषय

  2.2.1 पद विज्ञान : स्वरूप

  2.2.2 शब्द, पद तथा संबंधतत्त्व

  2.2.3 संबंधतत्त्व के भेद

  2.2.4 पद परिवर्तन के कारण और दिशाएँ

2.3 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न

2.4 शब्दार्थ

2.5 सारांश

2.6 स्वयं अध्ययन प्रश्नों के उत्तर

2.7 स्वाध्याय

2.8 क्षेत्रिय कार्य

2.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

2.10 अतिरिक्त अध्ययन

2.0 उद्देश्य :

पदविज्ञान के अध्ययन के उपरांत आप,

- पदविज्ञान की अवधारणा को समझ सकेंगे।
- भाषाविज्ञान में 'पद' का महत्त्वपूर्ण स्थान समझ सकेंगे।
- पदविज्ञान में अध्ययन की विषयवस्तु को जान सकेंगे।
- शब्द, रूप तथा पद का अंतर समझ सकेंगे।
- संबंधतत्त्व तथा अर्थतत्त्व को समझ सकेंगे।
- संबंधतत्त्व के प्रकार जान पायेंगे।
- संबंधतत्त्व के भेद समझ सकेंगे।
- संबंधतत्त्व के कार्यो को समझ सकेंगे।
- 'पद' परिवर्तन के कारण और दिशाएँ समझ सकेंगे।
- वाक्य और पद के संबंध जान पायेंगे।

2.1 प्रस्तावना :

भाषाविज्ञान विषय में हमें भाषा का पूरा ज्ञान प्राप्त होता है। यह भले ही निरस माना जाता हो किंतु यह सरस है। 'पदविज्ञान' के अध्ययन के लिए भाषाविज्ञान से परिचित होना आवश्यक है। सभी यह जानते ही है कि भाषा यूँही नहीं बनती। संसार की प्रत्येक वस्तु के लिए एक रूप, आकार या उसकी अपनी एक संरचना होती है। उसी प्रकार 'भाषा' की भी एक संरचना होती है। भाषिक संरचना के महत्त्वपूर्ण अंग है - ध्वनि, शब्द, पद या रूप, वाक्य, प्रोक्ति तथा अर्थ। अर्थहीन ध्वनियों को सामान्य ध्वनि कहते हैं और अर्थपूर्ण ध्वनियों को भाषिक ध्वनियाँ कहते हैं। जब ये ध्वनियाँ किसी भाषा विशेष की ध्वनि व्यवस्था को गठित करते हैं, तो 'स्वनिम' कहलाते हैं। स्वनिमों द्वारा ही विभिन्न स्तरों पर अर्थपूर्ण इकाइयों की रचना की जाती हैं। इसमें प्रथम स्तरपर रूप (Morph) आता है। इसके पश्चात क्रमश: शब्द, पद, पदबंध, वाक्य और प्रोक्ति आदि आते हैं।

अत: पाठ्यक्रम की दूसरी इकाई में हम 'पदविज्ञान' के विषय में अध्ययन करेंगे। पदविज्ञान में हम पदविज्ञान का स्वरूप, शब्द, पद तथा संबंधतत्त्व, संबंध तत्त्व के भेद, पद परिवर्तन के कारण, दिशाएँ और पदविज्ञान से संबंधित अन्य मुद्दों की जानकारी भी प्राप्त करेंगे। पदविज्ञान को समझने के लिए उपरोक्त सभी मुद्दों पर विस्तृत विश्लेषण किया जाएगा। पदविज्ञान को भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से समझेंगे तो और अधिक अच्छा रहेगा। इसलिए कुछ उद्देश्य सामने रखकर ही इसका विवरण दिया जा रहा है।

2.2 विषय विवरण :

जैसा कि हम सभी जानते है कि कोई भी बात पहले से नहीं होती तो उसकी निर्मिती के लिए उसकी सरंचना करना आवश्यक होता है। संरचना के लिए विविध घटकों की आवश्यकता होती है। इन विभिन्न घटकों के एकत्रित

आ जाने से ही संरचना होती है। भाषाविज्ञान में हम जिस भाषा को पढते हैं, समझते हैं तथा आत्मसात करने की कोशिश करते हैं उसका भी एक ढाँचा होता है जिसमें ध्वनि, शब्द, रूप या पद, वाक्य, प्रेषित अर्थ आदि को समाविष्ट करना पडता है। भाषा में इन्हें स्थान देते समय हमें सैद्धांतिक या वैज्ञानिक दृष्टिकोण रखना अनिवार्य होता है। भाषाविज्ञान एक ऐसा विषय है जिसमें केवल दृष्टि पर्याप्त नहीं तो सूक्ष्म दृष्टि रखकर ही समझना आवश्यक है। इसलिए छात्रों से भाषाविज्ञान के अंतर्गत आनेवाले 'पदविज्ञान' का गहराई से अध्ययन करवाना आवश्यक जान पडता है। प्रस्तुत इकाई में पदविज्ञान का स्वरूप, पदविज्ञान का परिचय, परिभाषा, पदभेद, संबंधतत्त्व, अर्थतत्त्व, संबंध तत्त्व के प्रकार, पद और वाक्य का संबंध आदि अनेक मुद्दों से परिचित होने का प्रयास करेंगे।

• पदविज्ञान :

पदविज्ञान का स्वरूप जानने से पूर्व हम पद-परिचय तथा पद की परिभाषा पर नजर डालेंगे।

पद-परिचय :

वाक्य के प्रत्येक अथवा किसी एक पद की व्याकरण संबंधी पूरी-पूरी जानकारी कराने को 'पद परिचय' कहते हैं। 'पद-परिचय' प्राप्त करने के लिए पद-भेदों पर दृष्टि डालना आवश्यक है। पद-भेद आठ प्रकारों में प्राप्त होते हैं - संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया, क्रिया-विशेषण, अव्यय, समुच्चय बोधक अव्यय, सम्बन्धसूचक अव्यय तथा विस्मयादिबोधक अव्यय।

पद-परिचय के अंतर्गत वाक्य में प्रयुक्त पद किस प्रकार है तथा वाक्य में उसका अन्य शब्दों के साथ क्या संबंध है इसका विस्तृत विवरण होता है। जैसे -

◆ **संज्ञा शब्द :** i) संज्ञा का प्रकार, ii) लिंग, iii) वचन, iv) कारक, v) अन्य शब्दों से संबंध।

◆ **सर्वनाम शब्द :** i) सर्वनाम का प्रकार, ii) किस संज्ञा का स्थानापन्न है, iii) लिंग, iv) पुरुष, v) वचन, vi) कारक, vii) वाक्यगत अन्य किसी शब्द से संबंध।

◆ **विशेषण शब्द :** i) प्रकार, ii) उसका विशेष्य, iii) लिंग, iv) वचन, v) विकार, vi) सम्बन्ध।

◆ **क्रियापद :** i) प्रकार, ii) वाच्य, iii) प्रयोग, iv) काल, v) पुरूष, vi) लिंग, vii) वचन, viii) क्रिया का कर्ता, ix) सकर्मक है या अकर्मक, x) कर्म कौन-सा है।

◆ **क्रिया-विशेषण अव्यय :** i) प्रकार, ii) किस क्रिया का विशेषण है।

◆ **समुच्चयबोधक अव्यय :** i) प्रकार, ii) किस पद, वाक्य या वाक्यांश में प्रयुक्त हुआ है।

◆ **सम्बन्धसूचक अव्यय :** i) प्रकार, ii) सम्बन्ध।

◆ **विस्मयादिबोधक अव्यय :** i) प्रकार, ii) सम्बन्ध।

यहाँ हम एक उदाहरण देख सकते हैं।

वाक्य : 'श्याम आम लाया।' इस वाक्य में - पद-परिचय।

श्याम - संज्ञा, व्यक्तिवाचक, पुंल्लिंग एकवचन, कर्ताकारक, 'लाया' क्रिया का कर्ता है।

आम - संज्ञा, जातिवाचक, पुल्लिंग, एकवचन, कर्मकारक, 'लाया' क्रिया का कर्म है।

लाया - क्रिया, कर्तृत्वाच्य, भूतकाल (सामान्यभूत), अन्यपुरूष, पुल्लिंग, एकवचन, 'श्याम' इस क्रिया का कर्ता है, आम इस क्रिया का कर्म है, अत: यह एककर्मक क्रिया है।

वाक्य : 'वह पुस्तक क्यों नहीं पढता?' इस वाक्य में - पद-परिचय।

वह - सर्वनाम, पुरुषवाचक, अन्यपुरुष, एकवचन, पुल्लिंग, कर्ताकारक 'पढता' क्रिया से सम्बद्ध।

पुस्तक - संज्ञा, जातिवाचक, स्त्रीलिंग, एकवचन, कर्मकारक, 'पढता' क्रिया का कर्म।

क्यों - अव्यय, क्रिया-विश्लेषण, प्रश्नवाचक, 'पढता' क्रिया से सम्बद्‌ध।

नहीं - अव्यय, क्रिया-विशेषण, निषेधवाचक, 'पढता' क्रिया का क्रिया-विशेषण।

पढता - क्रिया, कर्तृवाच्य, वर्तमानकाल (सामान्य वर्तमान), अन्यपुरुष, पुल्लिंग, एकवचन, 'वह' इस क्रिया का कर्ता है, 'पुस्तक' इस क्रिया का कर्म है, अत: यह वाक्य एककर्मक क्रिया है।

(सुगम हिन्दी व्याकरण, प्रो. वंशीधर तथा धर्मपाल शास्त्री)

इस प्रकार के अनेक उदाहरण देखें जा सकते हैं। 'पद-परिचय' का अर्थ होता है पदों का अन्वय, अर्थात् विश्लेषण। हिंदी व्याकरण में इसके विभिन्न नाम दिये गये है। इसे पदान्वय, पदनिर्देश, पदनिर्णय, पद-विन्यास, पदच्छेद आदि भी कहते हैं। पद-परिचय में वाक्यों में प्रयुक्त शब्दों की व्याकरणसम्मत विशेषताएँ बतायी जाती हैं। इस प्रकार का अध्ययन छात्रों को आवश्यक है क्योंकि इसमें छात्रों के समस्त व्याकरणिक ज्ञान की परीक्षा हो जाती है।

पद परिभाषा :

पद के लिए 'रूप' शब्द का भी प्रयोग किया जाता है। कभी-कभी शब्द और पद समान प्रतीत होते हैं लेकिन इनमें अंतर होता है। भाषा की महत्त्वपूर्ण और लघुत्तम, स्वतंत्र, सार्थक इकाई 'शब्द' है।

परिभाषा :

''भाषा की व्याकरणिक योग्यता प्राप्त इकाई पद है।'' व्याकरणिक योग्यता का अर्थ है कि पद में वाक्य-रचना की शक्ति होती है। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि जब शब्द में वाक्य रचना की क्षमता आ जाती है, तो वह पद बन जाता है।

डॉ. भोलानाथ तिवारी ने पद को परिभाषित करते हुए लिखा है, ''शब्द को वाक्य में प्रयुक्त होने के योग्य बना

लेने पर उसे पद की संज्ञा दी जाती है।'' (भाषाविज्ञान एवं हिंदी, डॉ. नरेश मिश्र : पृ. 85)

डॉ. कपिलदेव द्विवेदी ने शब्द में व्याकरणिक योग्यता आने से पद-रचना को रेखांकित करते हुए कहा है, ''कोई भी शब्द जब तक पद नहीं बन जाता तब तक उसका प्रयोग नहीं हो सकता है। पद बनने के लिए शब्द में कुछ विशेष अर्थों के बोधक प्रत्यय लगाए जाते हैं। इनके लगाने पर वह शब्द प्रयोग के योग्य होता है।'' (उपरोक्त; पृ. 86)

यदि ध्यानपूर्वक अध्ययन करे तो ज्ञान होता है कि एक शब्द के अनेक अर्थों में विभिन्न 'पद' बन सकते हैं। जैसे 'पढ़ना' एक शब्द है। इससे अनेक पदों की रचना कर सकते हैं जैसे - पढता है, पढ़ रहा है, पढ़ता था, पढ़ रहा था, पढ़ेगा, पढ़ रहा होगा। पढ़ती है, पढ़ रही है, पढती थी, पढ़ रही थी, पढ़ेगी, पढ़ रही होगी आदि।

पद रचना में शब्द के साथ-साथ संबंध तत्त्व का भी योग होता है। पद के मूलतत्त्व या शब्द को 'अर्थतत्त्व' और व्याकरणिक योग्यता प्रदान करनेवाले तत्त्व को 'संबंध तत्त्व' कहते हैं।

अब हम पदविज्ञान स्वरूप का अध्ययन करेंगे -

2.2.1 पदविज्ञान - स्वरूप :

रूपविज्ञान को 'पदविज्ञान' या रूप - प्रक्रिया भी कहते हैं। अंग्रेजी में 'Morphology' शब्दप्रयोग किया जाता है। भाषा विज्ञान की वह शाखा जिसमें रूप या पद का अध्ययन किया जाता है । रूपविज्ञान व्याकरणिक इकाइयों का अध्ययन है। इसमें प्रकृति और प्रत्यय या सम्बन्ध तत्त्व और अर्थतत्त्व का अध्ययन किया जाता है। इसे व्याकरणिक इकाइयाँ भी कहते हैं। पदविज्ञान के लिए हिंदी में रूपविज्ञान, रूपविचार, रचनाविचार, आकृतीविज्ञान आदि कहते हैं किंतु अनेक विद्वानों ने इसे 'पदविज्ञान' एवं 'रूपविज्ञान' शब्द का ही प्रयोग किया है। पदविज्ञान में 'पद' का विभिन्न दृष्टियों से अध्ययन किया जाता है। विभक्ति सहित शब्द को 'पद' कहा जाता है। उदा. के लिए 'राम' एक शब्द है और रामः, रामौ, रामाः आदि पद हैं। इसी प्रकार 'राम' एक शब्द है और 'राम ने, राम को, राम से आदि 'पद' या 'रूप' हैं वाक्य में प्रयुक्त किए गये शब्द मूल रूप न होकर पद या रूप होते है। इसीलिए यह कहना ठीक ही है कि शब्द दो प्रकार के होते हैं। (अ) विभक्तिहीन और (ब) विभक्तियुक्त। विभक्तिहीन रूप ही शब्द होता है। विभक्ति सहित शब्द के लिए 'पद' या 'रूप' नाम है। विभक्ति या प्रत्ययों को कुछ विद्वान सम्बन्धतत्त्व के रूप में मानते हैं अर्थात जो पदों या रूपों का संबंध निश्चित करें। इस दृष्टि से 'शब्द' उस सार्थक ध्वनि समूह को कहेंगे जो संबंधतत्त्व या विभक्ति या प्रत्यय से रहित हो और 'पद' या 'रूप' उस सार्थक ध्वनिसमूह अथवा शब्द को कहेंगे, जिसमें संबंध तत्त्व या विभक्ति जोड़ दी जाए। 'पत्र', 'पढ़ना' शब्द है किंतु वाक्य में प्रयुक्त होने पर वे 'पद' या 'रूप' बनते हैं। जैसे - 'पत्र पढ़ता है' इस वाक्य में 'पत्र', 'पढ़ता है, आदि शब्द 'पद' कहलाते हैं।

सार्थक शब्दों में विभक्तियाँ जोडकर भी 'पद' या 'रूप' बनाये जाते हैं। कभी-कभी विशेषता लाने हेतू उपसर्ग या पूर्व प्रत्यय जोडकर एक शब्द को दूसरा शब्द बना लेते हैं, जैसे - प्र + हार = प्रहार। अर्थतत्त्व में 'संबंधतत्त्व' के जुड जाने पर 'रूप' या 'पद' बनते हैं। इसलिए 'बालक' पद (Morph) और बालक शब्द है। हिंदी में कहा जाय तो 'लडके ने रोटी खायी।' इसमें 'लड़के ने' एक पद या रूप है, लेकिन स्वतंत्र एकाकी 'लड़का' शब्द है। 'लड़के ने'

के अन्तिम - 'ए' और 'ने' संबंध तत्त्व या प्रत्यय है। प्रत्यय या संबंधतत्त्व कई प्रकार के होते हैं, विभक्तियाँ या कारकचिह्न भी प्रत्यय ही है। ने, को, से आदि विभक्तियाँ हैं। इन्हें जोडकर तुमने, बालक को, पेड से आदि पद निष्पन्न होते हैं। व्यापक दृष्टि से देखा जाय तो विभक्ति भी प्रत्यय है और उपसर्ग भी प्रत्यय है, उपसर्ग को पूर्व प्रत्यय कहा जाता है। तात्पर्य यह हैं कि विभक्ति (प्रत्यय) जोडकर 'पद' या 'रूप' बनाए जाते हैं। पतंजलि ने लिखा है - ''नापि केवल प्रकृति: प्रयोक्तव्या नापि केवल प्रत्यय:।'' अर्थात वाक्य में न तो केवल प्रकृति का प्रयोग हो सकता है न केवल प्रत्यय का। दोनों के मिलने से जो बनता है वही पद या रूप है।

(भाषा विज्ञान एवं हिन्दी भाषा : राम छबीला त्रिपाठी, पृ. 83)

शब्द और रूप या पद का अंतर :

'विभक्ति' शब्द और रूप या पद का भेदक तत्त्व है। जिन शब्दों में 'विभक्ति' नहीं होती वे शब्द होते हैं और जिन शब्दों में विभक्ति होती है उन्हें 'पद' कहते हैं। अर्थात 'पद' या रूप' बनाने के लिए शब्दों में विभक्ति या प्रत्यय जोडना आवश्यक होता है। उदा. 'श्याम' एक शब्द है उसमें (:) जोडकर श्याम: बनाने से यह पद कहलाता है उसी प्रकार श्यामौ भी कहने से वह पद बनता है। श्याम एक शब्द में ने, को, से आदि जोडने पर वे पद बन जाते हैं। बहुदा वाक्य में शब्द ज्यों का त्यों प्रयुक्त नहीं होता। सही अर्थप्राप्ति के लिए मूल रूप को परिवर्तित करना पडता है। यह मूल शब्दों का बदला हुआ रूप ही 'रूप' या 'पद' कहलाते हैं। शब्द दो प्रकार के है (१) विभक्तिहीन, (२) विभक्तियुक्त। विभक्ति या प्रत्ययों को कुछ विद्वान संबंधतत्त्व के रूप में मानते हैं जो पदों या रूपों का संबंध निश्चित करें।

सार्थक ध्वनियों के समूह को शब्द कहते हैं जो विभक्ति या प्रत्यय से रहित हो और 'पद' या 'रूप' उस ध्वनिसमूह को कहेंगे जिसमें संबंधतत्त्व या विभक्ति जोड दी जाए। 'खेलना' एक शब्द है किंतु वाक्य में प्रयुक्त होने पर 'पद' या 'रूप' बनता है जैसे - राम खेलता है, राम खेल रहा है आदि। इस वाक्य में खेलता, खेल रहा है आदि शब्द है। इन्हें पद बनाकर वाक्य में प्रयुक्त करना पडता है।

शब्द बनाने की प्रक्रिया मात्र से ज्ञात होता है कि शब्द निर्माण के लिए सार्थक ध्वनियों की आवश्यकता है। जैसे- अ, क, च, ट, त, प आदि ध्वनियाँ तो है किंतु इनमें सार्थकता नहीं है लेकिन अब, कब, चल, टल, तल आदि शब्द है क्योंकि इनमें सार्थकता है, इनमें अर्थ देने की क्षमता है। ध्यान देना होगा कि केवल सार्थक होने मात्र से इन्हें वाक्य में प्रयुक्त नहीं कर सकते, तो उनमें कुछ अन्य तत्त्व जोडकर नया रूप या पद बनाना पडता है। शब्दों की निष्पत्ति प्रकृति और प्रत्यय के संयोग से होती है। प्रकृति को अर्थतत्त्व और प्रत्यय को संबंधतत्त्व नाम दिया गया है। प्रकृति का अर्थ है 'प्रतिपादिक'। प्रतिपादिक उसे कहते हैं जो शब्द अर्थवान होते हैं। 'प्रत्यय' प्रकृति के काव्यव्यापार की सूचक है। वाक्य में विशेषता लाने के लिए कभी-कभी उपसर्ग या पूर्ण प्रत्यय जोडकर एक शब्द को दूसरा शब्द बना लेते हैं। - जैसे प्र + हार = प्रहार। इसलिए प्रकृति के लिए अर्थतत्त्व का भी प्रयोग करते हैं।

प्रकृति या अर्थतत्त्व में जुडनेवाले ऐसे प्रत्यय या संबंधतत्त्व केवल पीछे ही नहीं जुडते, अपितु आगे और बीच में भी जुडते हैं। संस्कृत में 'पठ्' धातु है अर्थात पठ् प्रकृति या अर्थतत्त्व है। इससे भूतकाल में 'अपठ्त्' (वह पढा)

रूप बनता है। इसमें 'पठ' से पहले 'अ' और पीछे 'अत्' जुडा है। अ + पठ् + अत् । यहाँ अ पूर्व प्रत्यय और अत् पश्च प्रत्यय है। इस प्रकार संबंधतत्व या प्रत्यय अर्थतत्त्व या प्रकृति के आदि मध्य और अन्त में लगा करते हैं।

हिंदी में कुछ शब्द ऐसे हैं जिनके शब्द और पद एक ही रहते है, जैसे फूल, आलू आदि।

(अ) मैं एक फूल सूंघता हूँ।
(ब) मैं दस फूल सूंघता हूँ।
(क) वे फूल अच्छे हैं।

उपरोक्त वाक्यों में आए हुए पद 'फूल' अपने रूप में शब्द जैसे ही है। एकवचन और बहुवचन में भी वह वैसे ही है।

स्पष्ट है कि वाक्य में अर्थतत्त्व और संबंधतत्त्व जिसे प्रकृति और प्रत्यय भी कहा गया है यही दो तत्त्व प्रधान होते हैं। आजकल कुछ भाषाविदों ने 'शब्दविज्ञान' को अलग शाखा नहीं माना है इसलिए रूपविज्ञान में ही शब्द साधक प्रत्ययों का उल्लेख कर दिया जाता है।

2.2.2 शब्द, पद तथा संबंधतत्त्व :

शब्द या पद :

भाषा वाक्यों का समूह है। वाक्य सार्थक शब्दों का समूह है। शब्द, सार्थक ध्वनियों का समूह है। उच्चारण की दृष्टि से भाषा की लघुत्तम इकाई ध्वनि है और सार्थकता की दृष्टि से शब्द। जब शब्द वाक्य में प्रयुक्त होने लायक बन जाते हैं तब वे पद कहलाते हैं। शब्द और पद में अंतर है यह तो हमने देखा ही है। सार्थक ध्वनि समूहों को शब्द कहा जाता हैं तो वाक्य में प्रयुक्त मूल अथवा विकृत शब्दों को पद कहते हैं। शब्दकोश के अंतर्गत हम उनका प्रयोग भाषा में वैसे ही नहीं करते। प्रसंगानुसार तथा वाक्य में प्रयुक्त योग्यतानुसार उन शब्दों में परिवर्तन करते हैं। उदा. कोश का शब्द, सोचता, सोचती, सोचते, सोचा, सोची, सोचे, सोचूँगा, सोचूंगी, सोचेंगे आदि का प्रयोग करते हैं। मूल शब्द के परिवर्तित रूप ही 'पद' कहलाते हैं। शब्द और पद का भेदक तत्त्व प्रत्यय या विभक्तियाँ हैं।

अत: कहा जा सकता है कि शब्द प्रत्यय रहित होते हैं और पद प्रत्यय सहित होते हैं। या प्रत्यय युक्त होते हैं। संस्कृत में शब्द के मूल रूप को प्रकृति कहा जाता है और शब्दों का आपस में संबध दिखानेवाले तत्त्व को प्रत्यय। प्रत्यय योग से ही शब्दों में प्रयोग क्षमता आती है और वाक्य का अर्थ भी स्पष्ट होता है। केवल शब्दों से वाक्य का अर्थ स्पष्ट नहीं हो सकता। एकाद वाक्य में कर्ता, कर्म, क्रिया सभी विद्यमान होते हैं किंतु उनमें संबंध तत्त्व नहीं हो तो वाक्य का अर्थ स्पष्ट नहीं होता। उदा. राम रावण मारना। वाक्य की आवश्यकतानुसार यहाँ कर्ता, कर्म, क्रिया सभी विद्यमान हैं लेकिन इससे कोई अर्थ प्रकट नहीं होता। यदि इस वाक्य को राम ने रावण को मारा इस प्रकार लिखा जाए तो अर्थ अपने आप स्पष्ट हो जाता है। इस वाक्य में प्रयुक्त शब्द राम, रावण, मारना अर्थतत्त्व हैं और ने, को, आ यह संबंधतत्त्व है इन्हें ही प्रत्यय भी कहते हैं। यहाँ राम, रावण, मारना यह केवल शब्द मात्र है। उसी प्रकार राम ने, रावण को, मारा यह प्रत्यय युक्त शब्द 'पद' हैं।

संक्षेप में हम कह सकते हैं अर्थतत्त्व में संबंध तत्त्व के योग से पद की निष्पत्ति होती है।

पदविज्ञान या रूपविज्ञान की शाखाएँ :

इसकी चार शाखाएँ बताई जाती हैं जो निम्नानुसार है -

i) वर्णनात्मक रूपविज्ञान

ii) संरचनात्मक रूपविज्ञान

iii) ऐतिहासिक रूपविज्ञान

iv) तुलनात्मक रूपविज्ञान।

i) वर्णनात्मक रूपविज्ञान : वर्णनात्मक रूपविज्ञान की शाखा में वाक्य के अंतर्गत पदों या रूपों का विवरण प्रस्तुत कर दिया जाता है। जैसे - 'लडका' का ऋजु अवस्था में 'लडके' होता है। तिर्यक अवस्था में एकवचनीय रूप 'लडके और बहुवचनीय रूप 'लडकों' होता है। जैसे -

1) 'लडका' पढता है। लडके पढते हैं। (ऋजु अवस्था)

2) 'लडके' ने रोटी खायी। 'लडकों' ने रोटी खायी। (तिर्यक अवस्था)

ii) संरचनात्मक रूपविज्ञान : इस शाखा के अंतर्गत वाक्य के अन्तर्गत रूपों का संगठनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत करते हुए उसका अध्ययन किया जाता है। रूपिम विज्ञान और रूपस्वनिम विज्ञान जैसे अध्ययन भी संरचनात्मक रूप विज्ञान में समाविष्ट हो जाते हैं। आजकल यह शाखा पर्याप्त उत्कर्ष प्राप्त कर रही है।

'लडके पढते हैं' वाक्य में 'लडके पद की संरचना इस प्रकार है-

लडके = युक्त पद लडक + आबद्ध पद - 'ए'।

iii) ऐतिहासिक रूपविज्ञान : यह अध्ययन बहुत कुछ ऐतिहासिक व्याकरण की भाँति है। संरचनात्मक विज्ञान के प्रस्तुत तत्त्वों की ऐतिहासिक खोज हमारे सामने ऐतिहसिक रूपविज्ञान रखता है।

संरचनात्मक रूपविज्ञान तो 'लडके' पद का विश्लेषण करके बता देता है कि इसमें 'लडक' प्रतिपादित और - 'ए' ऋजु अवस्था का बहुवचनीय पूंसूचक विभक्ति प्रत्यय है किंतु ऐतिहासिक रूप विज्ञान इस-ए के मूल और विकास का भी पता लगता है जैसे - संस्कृत में एमि: हिंदी में ए अथवा

संस्कृत ए (सर्वे), हिंदी में ए।

इसी प्रकार संरचनात्मक रूप विज्ञान सर्वनाम मैं का गठनात्मक विश्लेषण कर बता देता है कि - मैं में म + ऐं है। किंतु ऐतिहासिक रूपविज्ञान 'मैं' के मूल और विकास का ऐतिहासिक अध्ययन कर यह बताता है कि संस्कृत मया, प्रा. मइँ और हिंदी में 'मैं' का विकास हुआ।

(भाषा विज्ञान एवं हिंदी भाषा, राम छबीला त्रिपाठी, पृ. 86)

iv) तुलनात्मक रूपविज्ञान : इस शाखा में दो या दो से अधिक भाषाओं के रूपों या पदों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया जाता है। इसमें यह बताया जाता है कि खडी बोली में ऋतु अवस्था में एकवचनीय रूप 'घोडा' और बहुवचनीय रूप 'घोडे' होता है, लेकिन ब्रजभाषा में इसके समानान्तर 'घोडा' 'घोडा' ही रहा है। यही स्थिति लडका और 'छोरा' पदों की है -

खडी बोली (अवस्था)		**ब्रजभाषा** (ऋजु अवस्था)
1) घोडा दौडा	-	घोडा दौड्यौ
2) घोडे दौडे	-	घोडा दौडे
3) लडका दौडा	-	छोरा दौडयौ
4) लडके दौडे	-	छोरा दौडे

इस प्रकार संरचनात्मक और ऐतिहासिक रूपविज्ञान भी अपने क्षेत्र में अपनी-अपनी तुलनाएँ प्रस्तुत करते हैं।

पदविज्ञान की शाखाओं का अध्ययन करने के बाद हम संबंध तत्त्व पर चर्चा करेंगे और संबंध तत्त्व के विविध प्रकारों का भी अध्ययन करेंगे।

शब्द और पद के साथ-साथ हम संबंध तत्त्व पर दृष्टि डालेंगे।

संबंध तत्त्व :

हिंदी में संबंध तत्त्व विभिन्न प्रकार के मिलते हैं। वाक्य में सामान्यतया कर्ता, कर्म, क्रिया आदि के स्थान प्राय: निश्चित होते है, अत: स्थान द्वारा प्रकट होनेवाला संबंध तत्त्व भी मिलता है। संभाषण में काकु वक्रोक्ति से सुराछात संबंध तत्त्व, मनुष्य + ओं, बालिका + ओं में अपूर्ण संयोग संबंध तत्त्व, दे से दिया, कर, किया, जा, गया में पूर्ण संयोग वाले संबंध तत्त्व उपसर्ग लगाकर नये शब्द बनाने में 'अपश्रुति' के उदाहरण पाये जाते हैं। सामान्यतया हिंदी में स्वतंत्र शब्द का, के, की, ने, से, में, पर आदि रिक्त शब्दों से संबंधतत्त्व का निर्धारण होता है।

वाक्य में प्रयुक्त मूल शब्द ही अर्थतत्त्व होते हैं और शब्दों का वाक्य में एक-दूसरे से संबंध दर्शानेवाले तत्त्व को संबंध तत्त्व कहते हैं। अर्थात संबंध तत्त्व विभिन्न अर्थतत्त्वों का आपस में संबंध दिखाता है। उदा. सोहन ने पेड की छाया में बिस्तर बिछा दिया। इस वाक्य में सोहन, पेड, छाया, बिस्तर, दिया यह पाँच अर्थतत्त्व हैं। उसी तरह ने, की, मैं, दिया यह संबंध तत्त्व है। अर्थात् मूलशब्द + संबंधतत्त्व = पद या रूप।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि संबंधतत्त्व के योग से ही अर्थतत्त्व में विहित अर्थ की स्पष्ट रूप से प्रतीति होती है। दूसरी बात यह भी स्पष्ट है कि उपर्युक्त वाक्य में दो प्रकार के संबंधतत्त्व प्राप्त होते हैं। जैसे (सोहन ने) यहाँ 'ने' यह संबंध अर्थतत्त्व से अलग है वही दूसरी ओर ऐसा भी संबंधतत्त्व है जो अर्थतत्त्व में ही समाविष्ट है। जैसे (बिछा) यह है। इसका तात्पर्य है संबंध तत्त्व भिन्न भिन्न प्रकार के होते हैं। हम आगे इनके प्रकारों के विषय पर चर्चा, विचार विनिमय करेंगे।

संबंधतत्त्व के प्रकार :

जैसा कि अब हम सभी यह जान चूके हैं या जानते ही है कि वाक्य में दो तत्त्व (संबंध और अर्थ) होते हैं। दोनों में प्रधान अर्थतत्त्व (Semanteme) है। दूसरे को संबंध तत्त्व कहते हैं। संबंधतत्त्व का कार्य है विभिन्न तत्त्वों का आपस में संबंध दिखलाना। उदा. राम ने रावण को बाण से मारा। इस वाक्य में चार अर्थतत्त्व हैं - राम, रावण, बाण, मारना। अर्थपूर्ण वाक्य बनाने के लिए इन चारों अर्थतत्त्वों में संबंधतत्त्व की आवश्यकता है। अत: यहाँ चार संबंधतत्त्व भी प्रयुक्त हुए हैं। 'ने' वाक्य में राम का संबंध दिखलाता है इसी प्रकार 'को' और 'से' क्रम से रावण और बाण का संबंध बतलाते हैं। 'मारना' से 'मारा' पद बनाने में संबंधतत्त्व इसी में मिल गया है।

अब हम संबंधतत्त्व के निम्नलिखित प्रकारों पर नजर डालते हैं।

a) शब्द स्थान

b) शब्दों का ज्यों का त्यों छोड देना, या शून्य संबंध तत्त्व जोडना।

c) स्वतंत्र शब्द

d) ध्वनि - प्रति स्थापन (Replacing)

e) ध्वनि - द्विरावृत्ति (Reduplicating)

f) ध्वनि - नियोजन (Subtracting)

g) आदिसर्ग, पूर्वसर्ग या पूर्वप्रत्यय

h) मध्यसर्ग (infix) मध्य प्रत्यय

i) अंतसर्ग, विभक्ति प्रत्यय या अंत्य प्रत्यय

j) ध्वनिगुण (बलाघात या सुर)

a) शब्द स्थान : प्राय: कई भाषाओं में शब्दों का स्थान संबंध तत्त्वों का कार्य करता है। संस्कृत के समासों में यह बात प्राय: देखी जाती है। जैसे - राजसदन = राजा का घर, सदन राज = घरों का राजा, अर्थात बहुत अच्छा सा बडा घर, ग्राममल्ल = गाँव का पहलवान, मल्लग्राम = पहलवानों का ग्राम, धनपति = धन का पति, पतिधन = पति का धन आदि। यहाँ स्थान परिवर्तन से संबंधतत्त्व में अंतर आ गया है और अर्थ बदल गया। अंग्रेजी में भी 'स्थान' कभी-कभी संबंधतत्त्व का काम करता है, जैसे - 'गोल्डमेडल'। इसमें यदि दोनों का स्थान उलट दें तो यह भाव नहीं व्यक्त होगा। संस्कृत तथा अंग्रेजी की भाँति हिंदी में भी अधिकारी के बाद अधिकृत वस्तु रखी जाती है। जैसे - राजमहल, डाकघर आदि, किंतु वेल्श में शब्दस्थान इसके बिलकुल उलटा है। वहाँ ब्रेनहीन = राजा और ती = घर पर यदि 'राजा का घर' कहना होगा तो हिंदी या चीनी आदि की भाँति 'ब्रेनहीन ती' कहकर 'ती ब्रेनहीन' कहेंगे।

वाक्यों में भी स्थान से संबंधतत्त्व स्पष्ट हो जाता है। यह बात चीनी आदि स्थान - प्रधान भाषाओं में विशेष रूप से पाई जाती है। जैसे - न्गो - त - नि = 'मैं तुम्हें मारता हूँ, 'नि-त-न्गो' = तुम मुझे मारते हो।

b) शब्दों का ज्यों का त्यों छोड देना, या शून्य संबंध तत्त्व जोडना : इसमें शब्दों को उसके मूल रूप में

'पद' का रूप प्राप्त हो जाता है, किसी भी प्रकार के संबंधतत्त्व की आवश्यकता नहीं रहती। हिंदी की बहुत-सी क्रियाएँ आज्ञासूचक अर्थ में (एकवचन में) अपने धातु रूप से ही पद बन जाती है। जैसे - कर, हँस, रो, चल, पढ आदि। अंग्रेजी में सामान्य वर्तमान में प्रथम पुरुष एकवचन (I go) तथा सभी बहुवचनों (we go, you go, they go) में क्रिया को ज्यों-का-त्यों छोड देते हैं। अंग्रेजी में (sheep) का बहुवचन शीप ही है। संस्कृत में भी ऐसी संज्ञाएँ हैं, जिनका अविकृत रूप ही प्रथमा एकवचन का बोध कराता है, जैसे वणिक, भूभृत, मरून, सरित्, विद्युत, वारि, दधि, नारि आदि। ऐसे शब्दों को 'पद' मानने पर उनमें शून्य संबंधी तत्त्व की कल्पना की जाती है। आधुनिक भाषा विज्ञानवेत्ताओं ने स्पष्टता के लिए ऐसे रूपों को शून्य संबंधतत्त्वयुक्त रूप कहा है।

c) स्वतंत्र शब्द : संसार की अधिकांश भाषाओं में स्वतंत्र शब्द भी संबंधतत्त्व का कार्य करते हैं। अपभ्रंश में यह प्रवृत्ति बहुत अधिक थी। यहाँ कारकों के लिए स्वतंत्र शब्द भी प्रयुक्त किये जाते थे। हिंदी के सारे परसर्ग या कारक-चिह्न (ने, को, से, पर, में, की, के) इसी वर्ग के हैं और उनका कार्य दो या अधिक शब्दों का वाक्य या वाक्यांश या शब्द-समूह में संबंध दिखलाना ही है। राजस्थानी में अब भी पूरे शब्द कारक चिह्नों के रूप में प्रयुक्त होते हैं, जैसे - रूँखडा माथै = पेड के ऊपर। अंग्रेजी में भी to, from, in, on, of, for आदि विभक्ति चिह्न प्रयुक्त होते हैं। संस्कृत के इति, आदि एवं तथाच आदि भी ऐसे ही शब्द हैं। चीनी में रिक्त (emty) और पूर्ण (full) दो प्रकार के शब्द होते हैं। रिक्त शब्दें का प्रयोग संबंधतत्त्व दिखलाने के लिए ही होता है। ग्रीक, लैटिन, फारसी तथा अरबी में भी इस प्रकार के संबंधतत्त्वदर्शी स्वतंत्र शब्द मिलते हैं।

कभी-कभी दो स्वतंत्र शब्द भी वाक्य में संबंध तत्त्व को निर्धारित करते हैं। यदि- तो, यद्यपि - फिर भी, किंतु - परंतु, ज्यो - त्यों, If - then, either - or, Heither - Nor आदि।

d) ध्वनि – प्रति स्थापन (Replacing) **:** ध्वनि प्रतिस्थापना के तीन उपभेद किये गये हैं -

i) स्वर प्रतिस्थापना
ii) व्यंजन प्रतिस्थापना
iii) स्वर व्यंजन प्रतिस्थापना

i) स्वर प्रतिस्थापना : इसमें शब्द के किसी स्वर के स्थान पर दूसरा स्वर बदलकर शब्द का रूप बदल दिया जाता है और उसी से संबंध तत्त्व की अभिव्यक्ति हो जाती है, जैसे - चल, चला, उठ, उठा, मर, मरा, मारा आदि। कुछ भाषाशास्त्री इसे अपश्रुति में (Vocal Ablaute) ही मानते हैं। अंग्रेजी में sing - sang, sung, song, come - came, tooth - teeth, find - found में भी स्वर प्रतिस्थापन है। संस्कृत में दशरथ से दशरथी तथा पुत्र से पौत्र। और हिंदी में मामा से मामी आदि भी इसी श्रेणी में आते हैं।

ii) व्यंजन प्रतिस्थापना : व्यंजन परिवर्तन द्वारा शब्द का रूप बदल जाता है और उसी से संबंध तत्त्व अभिव्यक्त हो जाता है। जैसे अंग्रेजी, send से sent या advice से advise आदि उदाहरण देखे जा सकते हैं।

iii) स्वर व्यंजन प्रतिस्थापना : जब संबंधतत्त्व के लिए स्वर और व्यंजन दोनों ही बदल दिये जाएँ। जैसे हिंदी

में क्रिया 'जा' से गया, अंग्रेजी में go से went, संस्कृत में 'पच्' धातु से अपाक्षी या अपाक्त आदि स्वर-व्यंजन प्रतिस्थापन के उदाहरण हैं।

e) ध्वनि - द्विरावृत्ति (Reduplicating) **:** कुछ ध्वनियों की द्विरावृत्ति से भी कभी-कभी संबंधतत्त्व का काम लिया जाता है। यह द्विरावृत्ति मूल शब्द के आदि, मध्य और अन्य तीनों स्थानों पर पायी जाती है। दक्षिणी मेक्सिको की तोजोलबल भाषा में अंत्य-द्विरावृत्ति मिलती है। संस्कृत, ग्रीक में भी कुछ उदाहरण मिलते हैं। लंका की एक बोली में manao का अर्थ है 'चाहना' और Manao nao का अर्थ है - '(वे) चाहते हैं।' आफ्रिका की एक भाषा में irik से तात्पर्य है 'चलना।' और irikrik का अर्थ है 'वह चलता है।'

f) ध्वनि - नियोजन (Subtracting) **:** कभी-कभी कुछ ध्वनियों को घटाकर या काट देने से संबंध तत्त्व का काम लिया जाता है। फ्रांसीसी भाषा के कुछ उदाहरण है, देखिए। Petite स्त्रीलिंग - Petit पुल्लिंग अर्थ 'छोटा' आदि। लेकिन इस प्रकार के उदाहरण बहुत कम मिलते हैं।

g) आदिसर्ग, पूर्वसर्ग या पूर्वप्रत्यय (Perfix) **:** मूल शब्द या प्रकृति के पूर्व कुछ जोडकर शब्द तो बहुतसी भाषाओं में बनते हैं, लेकिन संबंधतत्त्व के लिए इसका प्रयोग बहुत अधिक नहीं मिलता। संस्कृत भूतकाल की क्रियाओं में 'अ' आरम्भ में लगाते हैं, जैसे अगच्छत्, अचोरयत्। आफ्रिका की बंटू कूल की काफिर भाषा में यह प्रवृत्ति विशेष देखी जाती। 'कु' सम्प्रदान कारक चिह्न है। 'ति' = हम, नि = उन। कुति = हमको; कुनि = उनको।

h) मध्यसर्ग (infix) **मध्य प्रत्यय :** मूल शब्द के बीच में संबंधतत्त्व जोड दिया जाता है। ध्यान देने की बात है कि मूल शब्द और प्रत्यय या उपसर्ग के बीच यदि संबंधतत्त्व आये तो उसे सच्चे अर्थ में मध्यसर्ग नहीं कहा जा सकता। संस्कृत में गम्यते में 'य' धातु के बाद आया है, तो 'य' प्रत्यय है, मध्यसर्ग नहीं। मुण्डा भाषा में दल = मारन, दपल = परस्पर मारना ('प' संबंधतत्त्व) मंझि = मुखिया (एकवचन) मंपणि = बहुत से मुखिया (बहुवचन), अरबी में कतल से कातिल, कतब से कुतुब आदि भी उदाहरण मिलते हैं। संस्कृत के रूधादि गण की धातुओं में यह प्रवृत्ति दिखती है - रुद् से रुण्धि, रून्ध, छिद् से छिनध्नि या छिद्मि (मैं काटता हूँ। इनमें अधिक मात्रा में मध्यसर्ग के साथ-साथ अंतसर्ग का भी प्रयोग होता है।

i) अंतसर्ग, विभक्ति प्रत्यय या अंत्य प्रत्यय : इसका प्रयोग सर्वाधिक होता है। संस्कृत में संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण और क्रिया के रूपों को बनाने में प्राय: इसी का प्रयोग होता है। राम = रामं, रामेण, फल = फलं, फलानि आदि। हिंदी में भी विभक्ति प्रयोग ही होता है - ने, को, से, में, र, का-के-की आदि के रूप में। अंग्रेजी में भी ed और ing पर सर्ग लगाकर शब्द रूप बनाए जाते हैं।

j) ध्वनिगुण (बलाघात या सुर) : बलाघात या सुर भी संबंधतत्त्व का काम करते हैं। सुर का उदाहरण चीनी तथा आफ्रीकी भाषाओं में मिलता है। बलाघात तथा स्वराघात का संस्कृत, स्लैवोनिक, लिथुआनियन तथा ग्रीक में भी काफी महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। यहाँ ग्रीक का एक उदाहरण हम देख सकते हैं - 'प्रेत्रोक्तोद' इस शब्द में यदि पहले 'ओ' पर स्वराघात होगा तो अर्थ होगा 'पिता द्वारा मारा गया'। लेकिन यदि दूसरे 'ओ' पर होगा तो अर्थ होगा 'पिता

को मारने वाला।' अंग्रेजी में कनडक्ट (conduct) में यदि 'क' पर बलाघात होगा तो यह शब्द संज्ञा होगा, पर यदि 'ड' पर होगा तो क्रिया। इसी प्रकार (Present) में 'र' पर बलाघात होने से संज्ञा और 'जे' पर होने से क्रिया।

इसके अतिरिक्त कुछ अन्य प्रकार के भी संबंधतत्त्व मिलते हैं। उपर्युक्त मुद्दों में दो या दो से अधिक को एक साथ सम्मिलित कर भी संबंधतत्त्व का काम लिया जाता है, जैसे - कतल (मारना) से मक्तूल (जो मारा जाय), तुकातुल (एक-दूसरे को मारना), कुताल (कतल करने वाला), मुकाबला (आपस में लडना), मकतल (कतल करने की जगह) आदि।

2.2.3 संबंधतत्त्व के भेद :

संबंधतत्त्व और अर्थतत्त्व का संबंध सभी भाषाओं में एक जैसे नहीं होते। स्वतंत्र रूप से संबंध के भेदों पर विचार किया जा सकता है। जो निम्नानुसार है।

पूर्ण संयोग :

कई भाषाओं में अर्थतत्त्व और संबंधतत्त्व दोनों एक-दूसरे से इतने मिले-जुले रहते है कि एक ही शब्द एक साथ दोनों तत्त्वों को प्रकट करता है। भारोपीय और सैमेटिक परिवार की भाषाओं में यह देखने को मिलता है। 'बलाघात' या 'सूर' में ऐसे ही संबंधतत्त्व की ओर संकेत किया गया है। अरबी में कत्ल में केवल स्वर या कुछ व्यंजन जोडकर कई ऐसे शब्द बनाए जा सकते हैं, जिनमें दोनों तत्त्व एक में मिले हो। जैसे कातिल, कतल, यक्तुलु (वह मारता है) तथा उत्कुल आदि। अंग्रेजी के भी कुछ इस प्रकार के शब्द हैं। जैसे - sing - sang। शून्य संबंधतत्त्व वाले रूप भी इसी श्रेणी में रखे जा सकते हैं।

अपूर्ण संयोग :

कभी-कभी ऐसा पाया जाता है कि अर्थतत्त्व और संबंधतत्त्व दोनों ही एक में मिले रहते हैं। अत: एक ही शब्द द्वारा दोनों प्रकट होते हैं, लेकिन मिलन अपूर्ण रहता है और इस कारण संबंध और अर्थतत्व दोनों स्पष्ट देखे जा सकते हैं। 'पूर्ण संयोग' की तरह अपूर्ण संयोग का प्रयोग नीरक्षरवत् न होकर तिलतंडुलवत् होता है। अंग्रेजी की निर्बल क्रियाएँ ई डी (ed) लगाकर भूतकाल में परिवर्तित की जाती है। उनमें दोनों तत्त्व मिले रहने पर भी स्पष्ट दिखाई देते हैं। जैसे - asked, talked, killed आदि।

दोनों स्वतंत्र :

कई भाषाएँ ऐसी हैं जिनमें दोनों तत्त्वों की सत्ता पूर्णत: स्वतंत्र होती है। इनके अंतर्गत भी कई भाग किये जा सकते हैं।

(अ) चीनी भाषाओं में दो प्रकार के शब्द होते हैं - पूर्ण शब्द और रिक्त शब्द। रिक्त शब्दों का प्रयोग सर्वदा तो नहीं होता, क्योंकि यह स्थान प्रधान भाषा है, पर कभी कभी अवश्य होता है। उदाहरणार्थ -

पूर्ण शब्द - 'वो' = मैं या मुझे

रिक्त शब्द - 'ती' = अंग्रेजी के एपास्ट्रफी (') आदि भारोपिय परिवार के प्राचीन 'इति', 'आउ' आदि तथा नवीन 'ने', 'को', 'से' तथा टू (to) आदि भी एक प्रकार से रिक्त शब्द हैं।

(ब) 'क' वर्ग में दोनों तत्त्व स्वतंत्र होते हुए भी साथ-साथ थे। वाक्य में संबंधतत्त्व का स्थान अर्थतत्त्व के पास ही कहीं था, पर कुछ भाषाएँ ऐसी भी हैं जिसमें दोनों तत्त्वों का इस प्रकार का साथ नहीं रहता है। वाक्य में पहले संबंध तत्त्व प्रकट करनेवाले शब्द आ जाते हैं और फिर अन्य शब्द।

अब हम थोडासा यह भी देखेंगे कि संबंधतत्व की संख्या अधिक मात्रा में होने से क्या लाभ होता है और हिंदी में प्रयुक्त होनेवाले संबंधतत्त्व कौनसे हैं।

संबंधतत्त्व का आधिक्य :

बहुतसी भाषाओं में संबंधतत्त्वों की संख्या अपेक्षा से अधिक रहती है। इसका एक फायदा यह भी होता है कि वाक्य में प्रत्येक शब्द के साथ संबंधतत्व रहता है और एक के स्थान पर तीन-तीन, चार-चार संबंधतत्त्व प्रयोग में आते हैं। हम यहाँ 'फूल' भाषा का एक उदाहरण देख सकते हैं -

बी = बहुवचन बनाने के लिए संबंधतत्त्व
रिबी = बी रैन-बी-बी से तात्पर्य है - ये सफेद औरतें।

हिंदी में केवल संज्ञा के साथ बहुवचन की विभक्ति लगाने से काम चल जाता है, लेकिन इन भाषाओं में संज्ञा के सभी विशेषणों में भी विभक्ति लगानी पडती है। संस्कृत आदि पुरानी भाषाओं में यह 'आधिक्य' अधिक है। यह आवश्यक नहीं है कि एक भाषा में केवल एक ही तरह के संबंधतत्त्व मिले और दोनों तत्त्वों का संबंध भी एक ही तरह का हो। अधिकतर भाषाओं में कई प्रकार के संबंधतत्त्व मिलते हैं।

हिंदी में संबंधतत्त्व :

हिंदी में अनेक प्रकार के संबंधतत्त्व हैं। 'का', 'को', 'से', 'में', 'ने' आदि चीनी की भाँति रिक्त शब्द हैं। निश्चित सा है, अत: स्थान द्वारा प्रकट होनेवाला संबंधतत्त्व भी है। बातचीत करते समय वाक्यों में स्वराघात के कारण भी कभी-कभी परिवर्तन हो जाता है। (का कु वक्रोक्ति) 'मैं जा रहा हूँ' तथा 'मैं जा रहा हूँ' में अंतर है। इसी प्रकार धातु तथा उसके आज्ञा रूप (जैसे - चल-चल, पी-पी आदि) में भी बलाघात का ही अंतर है। कहीं-कहीं तुर्की आदि की भाँति अपूर्ण संयोग भी मिलता है, जैसे बालकों (बालक + ओं) या चावलों (चावल + ओं) आदि। इसी प्रकार स्वर और व्यंजन के परिवर्तन द्वारा तत्त्वों का पूर्ण संयोग भी मिलता है, जिनमें दोनों को अलग करना असंभव है, जैसे 'कर' से किया 'जा' से गया। अपश्रुति के उदाहरण के लिए कुकर्म से कुकर्मी, घोडा से घोडी या करता से करती आदि कुछ शब्द लिये जा सकते हैं। इस रूप में अनेक प्रकार के संबंधतत्त्वों के उदाहरण प्राय: सभी भाषाअें में मिल सकते हैं, पर प्राधान्य केवल एक या दो प्रकार के संबंधतत्त्व का ही होता है। हिन्दी में स्वतंत्र शब्द तथा स्थान से प्रकट होनेवाले संबंधतत्त्वों का प्राधान्य है।

इसके साथ-साथ अब हम संबंधतत्त्वों के कार्य पर नजर डालेंगे -

संबंधतत्त्व के कार्य :

व्याकरणिक कोटियों का उद्‌देश्य भाषा में अभिव्यंजना संबंधी सूक्ष्मता और निश्चयात्मकता लाना है। इसीलिए विविध उपाय काम में लाए जाते हैं। भाषामें संबंधतत्त्व जिन भावों की अभिव्यक्ति करते हैं या जो उपाय काम में लाए जाते हैं वे प्रमुखत: काल, लिंग, पुरुष, वचन तथा कारक आदि की अभिव्यक्ति होती है।

काल :

काल के तीन भेद हैं - वर्तमान, भूत और भविष्य यह तो सभी को ज्ञात है। इन कालों की क्रियाओं के पूर्णता - अपूर्णता तथा भाव या अर्थ (mood) आदि के आधार पर सामान्य वर्तमान, अपूर्ण वर्तमान आदि बहुत से उपभेद हैं। क्रिया में विभिन्न प्रकार के संबंधतत्त्व जोडकर ही काल इन भेदों और उपभेदों की सूक्ष्मतत्त्वों को प्रकट करते हैं। इसमें अनेक प्रकार के संबंधतत्त्वों से काम लेना पडता है। कहीं तो स्वतंत्र शब्द जोडकर (I shall go में शैल) काम चलाते हैं तो कहीं (ed) जोडकर (He walked) भाव व्यक्त करना पडता है। कभी-कभी इतना परिवर्तन किया जाता है कि अर्थतत्त्व और संबंधतत्त्व का पता नहीं चलता। जैसे हिन्दी में 'जा' से 'गया' या अंग्रेजी में गो (go) से वेंट (went) कुछ अन्य तरह के संबंधतत्त्वों का भी इसके लिए प्रयोग होता है। विद्‌वानों का विचार है कि कालों का रूप आज से क्रिया के रूपों में जितना दो टूक स्पष्ट है, उतना कभी नहीं था। इसका यही आशय है कि अब इस दृष्टि से हमारी विचारधारा जितना विकसित हो गई है, पहले नहीं थी।

लिंग :

हम सभी यह जानते ही हैं कि प्राकृतिक लिंग दो हैं - स्त्रीलिंग और पुल्लिंग। बेजान चीजों को नपुंसक की श्रेणी में रख सकते हैं। पर, भाषा में यह स्पष्ट नहीं मिलता। संस्कृत का एक उदाहरण देख सकते हैं - वहाँ दारा (स्त्री) प्राकृतिक रूप से स्त्रीलिंग होते हुए भी पुल्लिंग शब्द है और कला (स्त्री) प्राकृतिक रूप से स्त्रीलिंग होते हुए भी नपुंसकलिंग है। हिंदी में किताब नपुंसकलिंग होते हुए भी स्त्रीलिंग है और दूसरी ओर ग्रन्थ नपुंसकलिंग शब्द होते हुए भी पुल्लिंग है। मक्खी, चींटी, चिडिया, लोमडी तथा छिपकली आदि हिंदी में सर्वदा स्त्रीलिंग में प्रयुक्त होते हैं, लेकिन इनमें प्राकृतिक रूप से पुल्लिंग या पुरुष भी होते हैं। स्वाभाविक लिंग से भाषा के लिंग का संबंध बहुत कम है। भाषा में प्राय: कल्पित लिंग आरोपित कर लिया गया है।

लिंग का भाव व्यक्त करने के लिए प्रमुख रूप से दो तरीके भाषा में अपनाए जाते हैं।

1) प्रत्यय जोडकर : जैसे - हिंदी में बाघ से बाघिन, हिरन से हिरनी। अंग्रेजी में प्रिंस से प्रिंसेस तथा संस्कृत में सुंदर से सुन्दरी।

2) स्वतंत्र शब्द साथ में रखकर : जैसे - अंग्रेजी में शी-गेट (बकरी) ही - गोट (बकरा) आदि।

लिंग के अनुसार संज्ञा, विशेषण, सर्वनाम तथा क्रिया के रूप में बदलते हैं, पर यह सभी भाषाओं के विषय में सत्य नहीं है। लिंग के कारण अंग्रेजी के विशेषणों में परिवर्तन नहीं होता लेकिन हिंदी में आकारांत, इकारांत में बदलाव जरूर आता है। जैसे - अंग्रेजी में फैट गर्ल, फैट बॉय। हिंदी में मोटी लडकी, मोटा लडका आदि। सर्वनाम

में हिंदी में कोई परिवर्तन नहीं होता किंतु अंग्रेजी में (ही, शी) तथा संस्कृत (सः, तत्, सा) आदि में परिवर्तन हो जाता है।

पुरुष :

पुरुष तीन होते हैं - उत्तम, मध्यम तथा अन्य। पुरुष के आधार पर क्रिया के रूपों में परिवर्तन होता है। लेकिन यह सभी भाषाओं में नहीं पाई जाती। संस्कृत, हिंदी, अंग्रेजी आदि में है किंतु चीनी आदि में नहीं है। पुरुष के आधार पर क्रिया के रूपों में परिवर्तन करने के लिए कभी कुछ स्वरों, व्यंजनों या अक्षरों के बदलने से काम चल जाता है। जैसे - मैं जाऊँगा, तू जायेगा (हिंदी) आइ गो, यू गो, दे गो (अंग्रेजी)। अरबी और फारसी आदि में भी यही तरीके अपनाए जाते हैं।

वचन :

वचन प्रमुखत: दो रूप में पाए जाते हैं। एकवचन और बहुवचन। संस्कृत लिथु आनियन आदि कुछ भाषाओं में द्विवचन तथा कुछ अफ्रीकी भाषाओं में त्रिवचन का प्रयोग भी मिलता है। वचन का ध्यान प्राय: संज्ञा, सर्वनाम तथा क्रिया में रखा जाता है, लेकिन संस्कृत आदि कुछ प्राचीन भाषाओं में तथा हिंदी आदि में विशेषण में भी इसका ध्यान रखा जाता रहा है। वचन के भावों को व्यक्त करने के लिए प्राय: प्रत्ययों का प्रयोग किया जाता हैं। जैसे हिंदी में (ओ, यों आदि), अंग्रेजी में (es, s आदि), संस्कृत में (औ, जस् आदि)।

इसके अतिरिक्त संज्ञा तथा सर्वनाम के कारण (कर्ता, कर्म, करण, संप्रदान, अपादान, संबंध, अधिकरण, संबोधन) रूप, क्रिया के विभिन्न वाक्यों (कर्तृ, कर्म भाव) या अर्थो या भावों के रूप, संस्कृत धातुओं के परस्मै पद तथा आत्मनेपद के रूप तथा क्रिया के प्रेरणात्मक आदि रूपों के लिए भी भाषा में संबंधतत्त्व का सहारा लेना पडता है। इसी प्रकार संज्ञा से क्रिया (हाथ से हथियाना), क्रिया से संज्ञा (मार से मार), संज्ञा से विशेषण (अनुकरण से अनुकरणीय), विशेषण के संज्ञा (सुंदर से सुंदरता), संज्ञा या विशेषण से क्रिया विशेषण (तेजी या तेज से) तथा नकारात्मकता या आधिक्य आदि बोधक रूपों आदि को बनाने के लिए भी संबंधतत्त्व की आवश्यकता पडती है।

क्रिया :

मनुष्य के शरीर में जब तक सांसे चलती रहती है वह क्रियाशील ही रहता है। क्रिया मनुष्य को हमेशा सचेत रखती है। व्यक्ति का दैनंदिन कार्य खाना, पीना, उठना, बैठना, चलना, फिरना आदि सभी मनुष्य की क्रियाएँ है। जब व्यक्ति की क्रियाएँ बंद होती है तो मनुष्य शव कहलाता है। जैसे मनुष्य के साथ क्रिया का संबंध है वैसे ही भाषा के साथ भी क्रिया जुडी है। वाक्य में क्रिया का स्थान महत्त्वपूर्ण है। सामान्यत: क्रिया के आठ भेद होते हैं -

i) क्रिया के सामान्य रूप (धातु)

ii) कर्म के कारण क्रियाभेद।

iii) अर्थ के कारण क्रियाभेद।

iv) बनावट के कारण क्रियाभेद।

v) प्रयोग (वाच्य) के कारण क्रियाभेद।

vi) रीति के कारण क्रियाभेद।

vii) विविध प्रयोगों के कारण क्रियाभेद।

viii) काल के कारण क्रियाभेद।

अन्य व्याकरणिक कोटियों के समान क्रिया की कोटियाँ भी सभी भाषाओं में एक जैसे नहीं है। भारोपीय परिवार की भाषाओं में i) अकर्मक - सकर्मक, ii) आत्मनेपद - पर स्मैपद। कोटियाँ पाई जाती है। जिसमें कर्म नहीं होता उसे अकर्मक कहते हैं और जिसमें कर्म होता है उसे सकर्मक क्रिया कहते हैं। उसी प्रकार आत्मनेपद का अर्थ होता है कि, जिस क्रिया का फल कर्ता को स्वयं मिलता है, जैसे - 'भोजन करता है।' और 'परस्मैपद' में फल का भोक्ता दूसरा होता है, जैसे - पुत्र के लिए मोदक लाता है।

जिन धातुओं से दोनों पद बनते है, उसे उभयपदी कहते हैं जैसे - स: कार्य करोति करूते वा (वह काम करता है।)

भारोपीय भाषाओं में कर्ता, कर्म और भाव की प्रधानता के आधार पर तीन वाच्य मिलते हैं। - 1) कर्तृवाच्य, 2) कर्मवाच्य, 3) भाववाच्य।

कारक :

कारक का सामान्य अर्थ - करनेवाला कह सकते हैं। विविध भाषाओं में कारकों की संख्या विविध पाई जाती हैं। अंग्रेजी में केवल दो कारक है। जार्जी में इसकी संख्या तेईस है। लातिन और जर्मन में 5, प्राचीन स्लाविक में 6, संस्कृत, ग्रीक आदि में 7 है। तो हिंदी में कारकों की संख्या 8 है।

कारक को 'परसर्ग' भी कहते हैं। 'पर' याने पश्चात् (बाद में) और सर्ग का अर्थ है जुड़ना। अंग्रेजी शब्द 'पोस्ट पोजिशन' का हिंदी अनुवाद 'परसर्ग' है। कारक के विभिन्न चिह्न हैं जो संज्ञा तथा सर्वनाम के बाद जुड़ते हैं। रेश्मा, दूकान, स्नेहा, कपड़ा ये संज्ञा शब्द हैं। 'खरीदा' क्रिया है। ने, से, के लिए परसर्ग हैं। ये 'परसर्ग' या कारक चिह्न संज्ञा और क्रिया के संबंध को जोड़ने का काम करते हैं। 'परसर्ग' को ही 'विभक्ति' कहते हैं।

जैसा कि हम सभी रूप रचना या पदरचना के अंतर्गत आनेवाले संज्ञा, लिंग, वचन, कारक आदि सभी मुद्दों से परिचित हैं ही फिर भी छात्रों की अध्ययन की सुविधा हेतु यहाँ फिरसे 'विभक्ति' चिह्नों की जानकारी संक्षेप में दिया जा रहा है जो निम्नानुसार हैं। -

कारक के भेद :

हिंदी में कारक के आठ प्रकार हैं। उन आठों के 'विभक्ति' चिह्न या 'परसर्ग' इस प्रकार हैं -

कारक	विभक्ति चिह्न
1) कर्ता	ने

2) कर्म को
3) करण से, के द्‌वारा, के साथ
4) सम्प्रदान के लिए, को
5) अपादान से (पृथकता प्रकट करनेवाला)
6) संबंध का, के, की
7) अधिकरण में, पर
8) सम्बोधन हे, ओ, अरे, अजी, अहो

इसमें से मुख्य परसर्ग है -

कर्ता - ने
कर्म - सम्प्रदान - को तथा के लिए भी
करण अपादान - से
संबंध - का, के, की
अधिकरण - में, पर.... आदि।

कोई भी बात हो या वस्तु हो अचानक या एकदम से नहीं होती तो उसके पीछे इतिहास या उत्पत्ति होती है। 'परसर्ग' के विषय से संबंधित उत्पत्ति प्राप्त होती है जिसपर यहाँ विचार किया जा रहा हैं। राम छबीला त्रिपाठी जी की पुस्तक 'भाषा विज्ञान एवं हिंदी भाषा' में इसका विवरण कुछ इस प्रकार प्राप्त होता है।

'ने' परसर्ग :

'ने' परसर्ग का व्यवहार खडी बोली हिन्दी की एक प्रमुख विशेषता है। पूर्वी हिन्दी की बोलियों अवधी, बघेली और छत्तीसगढी में इसका व्यवहार नहीं होता। पश्चिमी हिंदी की कई अन्यविभाषाओं में और पंजाबी, गुजराती आदि कुछ पश्चिमी आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं में भी 'ने' का प्रयोग परसर्ग के रूप में होता है। 'ने' की उत्पत्ति को लेकर विद्‌वानों के विभिन्न मतों को त्रिपाठी जी ने प्रस्तुत किया हैं -

1) पं. कामता प्रसाद गुरू और किशोरी दास बाजपेयी के अनुसार 'ने' का विकास संस्कृत की तृतीया एक वचन की विभक्ति 'एन' से हुई है।

लेकिन इस मत से कुछ विद्‌वान सहमत नहीं है। उनके अनुसार 'ने' को, में, पर आदि के समान एक परसर्ग है अत: इसकी व्युत्पत्ति किसी स्वतंत्र शब्द से ही ढूँढना ठीक होगा, न कि विभक्ति प्रत्यय 'एन' से। लेकिन भोलानाथ तिवारी इस मत से सहमत है, उनके अनुसार ''परसर्गो का विकास स्वतंत्र शब्दों से मानना उचित होगा, विभक्तियों से नहीं।''

2) डॉ. सुकुमार सेन तथा कुछ अन्य लोग संस्कृत 'कर्णे' से 'ने' का विकास मानते हैं। यह मत भी बहुत पुष्ट नहीं दिखता, अत: 'ने' का विकास संदिग्ध मानना पडेगा। डॉ. धीरेन्द्र वर्मा आदि ने भी इसे संदिग्ध माना है।

3) बीम्स तथा कैलाग ने 'ने' की व्युत्पत्ति लग् धातु के भूतकालिक कृदन्त कर्तृवाच्य 'लग्य' से मानते हुए निम्न परिवर्तन क्रम का निर्देश दिया हैं -

संस्कृत लग्य से, प्राकृत में लगिओ और हिंदी में लगि - लई - ले से ने का विकास हुआ है।

'को' परसर्ग :

कर्म तथा संप्रदान कारक के लिए 'को' परसर्ग का प्रयोग होता है। 'को' की व्युत्पत्ति का विषय भी काफी विवादास्पद रहा है।

1) 'ट्रम' के अनुसार - 'को' संस्कृत 'कृत' से विकसित है। संस्कृत कृत, पालि प्राकृत में क्रिओ, हिंदी में को।

2) बीम्र्स, हार्नले, चटर्जी आदि ने 'को' का संबंध संस्कृत 'कक्ष' से माना है। डॉ. श्यामसुंदर दास इस मत से सहमत नहीं है किंतु डॉ. भोलानाथ तिवारी ने लिखा है कि, ''अर्थ सम्बन्ध प्रयोग तथा ध्वनिविकास की दृष्टि से बीम्स तथा चटर्जी आदि का मत ठीक लगता है।''

के लिए :

इस परसर्ग का प्रयोग संप्रदान कारक में होता है। इसमें 'के' और 'लिए' दोनों का विकास अलग-अलग हुआ है।

सत्यजीत वर्मा के अनुसार 'के' का विकास संस्कृत के पुराने कारक चिह्न 'केरळ' से हुआ है। संस्कृत केरळ, पालि, प्राकृत अपभ्रंश, केर, हिंदी में के।

डॉ. भोलानाथ तिवारी उक्त मत से सहमत हैं, उन्होंने लिखा है, ''यह प्रयोगत: अर्थ की दृष्टि से भी निकट है तथा इससे 'के' के ध्वन्यात्मक विकास की भी संभावना है।

'लिए' के संबंध में तीन मत सामने आते हैं -

1) हार्नले - इन्होंने 'लिए' का संबंध 'लब्धे' से माना है।
2) दूसरा मत इसका विकास 'लग्ने' से मानता है।
3) डॉ. धीरेन्द्र वर्मा प्राकृत 'ले' से इसका संबंध जोड़ते है।
4) डॉ. भोलानाथ तिवारी के अनुसार 'लग्ने' से 'लिए' के विकास की संभावना हो सकती है।

'से' परसर्ग :

'से' परसर्ग का व्यवहार करण और अपादान कारक में होता है। इसकी उत्पत्ति के संबंध में विद्‌वानों के विभिन्न मत है -

1) बीम्स - बीम्स के अनुसार 'से' का संबंध संस्कृत 'समं' से है।
2) हार्नले - इन्होंने 'से' का संबंध प्राकृत 'संतो' या 'सुंतो' से माना है।

3) केलाग - 'से' का संबंध संस्कृत 'संगे' से माना है।

4) डॉ. उदयनारायण तिवारी - इनके अनुसार 'से' का विकास 'सम-एन' से हुआ है। सम-एन-सएँ-सइ-से।

5) चटर्जी - 'से' का विकास 'सम हि' से माना है। संस्कृत समहि, प्राकृत सअइ, हिंदी से।

डॉ. भोलानाथ तिवारी ने केलाग के मत को तर्क संगत माना है।

का, के, की :

संबंध कारक पुलिंग एक वचन में 'का' बहुवचन में 'क' तथा स्त्रीलिंग एकवचन बहुवचन में 'की' परसर्गों का व्यवहार होता है। इसकी व्युत्पत्ति के संबंध में अप्रयेग स्वर अधोलिखित मत हैं -

1) हार्नले, बीम्स और केलाग - इन तीनों के अनुसार 'का' का विकास संस्कृत शब्द 'कृत' से हुआ है - संस्कृत कृत: म. भा. आ. कअ, हिंदी का।

2) मिशेल, भंडारकर के अनुसार 'का' का विकास संस्कृत कार्यम् से हुआ है।

3) चटर्जी - 'का' का विकास प्राकृत 'क्क' से माना है।

4) उदयनारायण तिवारी - इनके मतानुसार संबंध कारक के इन परसर्गों का संबंध संस्कृत 'कृ' धातु से है।

5) डॉ. भोलानाथ तिवारी - इनके मतानुसार 'का' का विकास 'कृत:' के स्थान पर कृतक: से हुआ है। संस्कृत कृतक: अवधी केरको, हिन्दी का। तिवारी जी यह मानते है कि कृत: से केरको का विकास संभव नहीं है।

'के' का विकारी रूप है और 'की' स्त्री प्रत्यय ई युक्त रूप है।

में, पर :

अधिकरण कारक में इन परसर्गों का व्यवहार होता है। 'में' की व्युत्पत्ति के विषय में प्राय: कोई विवाद नहीं है। प्राय: सभी विद्‌वान इसका विकस संस्कृत 'मध्ये' से मानते हैं -

संस्कृत मध्ये, म. भा. आ मज्झे, पुरानी हिन्दी माँहि, हिंदी में।

'पर' की व्युत्पत्ति के बारे में तीन मत हैं -

1) केलाग, धीरेन्द्र वर्मा - इनके अनुसार 'पर' की व्युत्पत्ति संस्कृत उपरि से है।

2) हार्नले - ने 'पर' की उत्पत्ति संस्कृत 'परे' से मानी है।

3) डॉ. उदयनारायण तिवारी - ने 'पर' की उत्पत्ति संस्कृत पपु, अपभ्रंश 'परि' से माना है।

इस प्रकार परसर्गों की व्युत्पत्ति के विषय में विद्‌वानों में काफी बाते हुई है। इसके साथ ही हमें कारक के जो प्रकार है उस पर नजर डालना आवश्यक लगता है। कारक के जो आठ प्रकार है उनका तात्पर्य क्या हैं। 'मानक

सामान्य हिन्दी' इस पुस्तक में डॉ. पृथ्वीनाथ पाण्डेय जी ने संक्षेप में जो व्याख्या दी है वह निम्नानुसार हैं -

1) कर्ता कारक : जो संज्ञा शब्द अपना कार्य करने के लिए किसी के अधीन नहीं होता, उसे 'कर्ता कारक' कहते हैं। इसकी विभक्ति 'ने' है।

2) कर्म कारक : जिस वस्तु पर क्रिया के व्यापार का फल पडता है, उसे सूचित करनेवाले संज्ञा के रूप को 'कर्म कारक' कहते हैं। इसकी विभक्ति 'को' है।

3) करण कारक : कर्ता जिसकी सहायता से कुछ कार्य करता है, उसे 'करण कारक' कहते हैं। इसकी विभक्ति 'से' है। 'करण' का शाब्दिक अर्थ है - 'सहायक' या 'साधन'।

4) संप्रदान कारक : जिसके लिए काम किया जाता है, उसे 'संप्रदान कारक' कहते हैं। इस की विभक्ति 'को,' 'के लिए' है। 'संप्रदान' का शाब्दिक अर्थ है - 'देना'।

5) अपादान कारक : संज्ञा या सर्वनाम का वह रूप, जिसमें किसी वस्तु का अलग होना पाया जाए, उसे 'अपादान कारक' कहते हैं। इसकी विभक्ति 'से' है।

6) संबंध कारक : संज्ञा या सर्वनाम के जिस रूप से किसी एक वस्तु का संबंध किसी दूसरी वस्तु के साथ ज्ञात हो, उसे 'संबंध कारक' कहते हैं। इसकी विभक्ति का, की, के, रा, री, रे है।

7) अधिकरण कारक : क्रिया के आधार को सूचित करनेवाली संज्ञा या सर्वनाम के स्वरूप को 'अधिकरण कारक' कहते हैं। इसकी विभक्ति 'में', 'पै', 'पर' है। 'अधिकरण' का शाब्दिक अर्थ है - आधार।

8) सम्बोधक कारक : संज्ञा के जिस रूप से किसी के बुलाने या पुकारने का या संकेत करने का भाव प्रकट हो, उसे 'संबोधन कारक' कहते हैं। इसकी विभक्ति हे, हो, अरे, अजी, अहो है।

इस प्रकार कारकों की व्याख्या या अर्थ बताया जा सकता है। रूप रचना या पद रचना के अंतर्गत अन्य सभी मुद्दों के साथ 'कारक' का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। इनकी विभक्ति प्रत्यय ही अर्थतत्त्व में संबंध स्थापित करने का काम करते है। तभी हम वाक्य का पूरा अर्थ प्राप्त कर सकते है और भाषा समझ सकते हैं।

2.2.4 पद परिवर्तन के कारण और दिशाएँ :

ध्वनि परिवर्तन की भाँति पदरूपों में परिवर्तन होता है। यह परिवर्तन भाषा की सहज प्रकृति है। ध्वनि परिवर्तन की अपेक्षा रूप या पद परिवर्तन सीमित और संकुचित होता है। रूप या पद परिवर्तन का संबंध कारक, लिंग, वचन, काल, आदि को सूचित करने वाले प्रत्यय परिवर्तन से है। संस्कृत 'यस्य' शब्द का 'स्य' षष्ठी विभक्ति के एकवचन का सूचक है। हिंदी में इसका अर्थ है - जिसका। यह 'यस्य' प्राकृत भाषा में 'जस्सु' हो गया और तुलसी के रामचरित मानस में 'जासु' हो गया। - ''जासु नाम सुमिरत एक बारा।'' इस प्रकार संस्कृत 'यस्य' के 'स्य' का अवधी में सु होना पद या रूप परिवर्तन है, ध्वनि परिवर्तन नहीं। ध्वनि परिवर्तन का संबंध किसी विशिष्ट ध्वनि से होता है। रूप या पद विकार का क्षेत्र सीमित होता है क्योंकि यह एक शब्द के रूप तक सीमित है लेकिन ध्वनि विकार भाषा के संस्थान

को ही बदल देता है। रूप या पद विकार में नवीन रूपों के साथ प्राचीन रूप भी चलते हैं। जैसे - सर्प - साँप, अश्रु - आँसू आदि दो-दो पदों का प्रयोग होता रहता है। पद परिवर्तन या रूप परिवर्तन के निम्नलिखित कारण बताएँ जा सकते हैं -

(अ) सरलता : ध्वनि - प्रयत्न में प्रयत्न लाघव का जो स्थान है, सरलता का रूप-परिवर्तन में लगभग वही स्थान है। अर्थात कठिन रूपों को त्यागकर लोग सरल रूपों को अपनाते हैं। पुराने रूपों के आधार पर नये रूप बना लिया करते हैं क्योंकि इसमें सरलता होती है। अंग्रेजी में बनी क्रियाएँ इसी कारण कमजोर होती जा रही हैं। एकरूपता होने से प्रयोग में सरलता होती है, अत: असमान रूप लुप्त हो जाते हैं। संस्कृत में रूप-रचना काफी कठिन थी लेकिन हिंदी ने अपने क्रिया-रूपों और कारकों में सरल रूपों को अपना लिया और एकरूपता निश्चित कर ली। सरलता की दृष्टि से कभी-कभी किसी कठीन रूप को छोडकर किसी अन्य शब्द-रुप के सादृश्य पर नया शब्द भी गढ लिया जाता है।

(ब) अज्ञान : अज्ञान के कारण भाषा में बडे-बडे परिवर्तन हो जाते हैं। पद-परिवर्तन में भी अज्ञान काम करता है। 'करना' क्रिया का भूतकालिक 'करा' उचित है लेकिन लेना से लिया, देना से दिया के वजन पर 'करना' का किया रूप अज्ञानवश बना लिया और वही मानक रूप माना जा रहा है। 'उपरि + उक्त' से 'उपर्युक्त' शब्द बनता है, लेकिन अज्ञानवश 'उपरोक्त' बना लिया जो धडल्ले से चल भी रहा है। इसी प्रकार अन्तर्कथा, अन्तर्साक्ष्य, राजनैतिक, अन्तर्राष्ट्रीय आदि शब्द-रूप सन्धि-नियमों के अनुसार अशुद्ध हैं, किंतु अब ये ही परिनिष्ठित रूप मान लिये गये हैं। व्याकरणकार तथा विद्वान समय-समय पर ऐसे अशुद्ध शब्दों को शुद्ध भी करते रहते हैं, फिर भी 'मेरे से नहीं होगा' जैसे रूप भी प्रयुक्त करते नजर आते हैं जो अशुद्ध है।

(क) सादृश्य : उपमान या सादृश्य परिवर्तन का प्रमुख कारण है। विश्व की सभी भाषाओं में रूप या पद परिवर्तन में सादृश्य का बहुत बडा हाथ रहा है। संस्कृत में 'हस्तिन' शब्द में 'आ' प्रत्यय जोडकर 'हस्तिना' बनता है। 'मति', 'पति' आदि में 'आ' जोडकर 'मत्या', 'पत्या' रूप बनना चाहिए। लेकिन सादृश्य के कारण 'हस्तिना' के आधार पर 'मतिना', 'पतिना' बोलने लगे। इसी प्रकार 'तीन' में न होने के कारण 'तीनों' बना जो कि नियमानुसार है, किंतु 'दो' में 'न' नहीं है फिर भी 'दोनों' रूप कैसे बना? यह विचारनीय है। यह सादृश्य के कारण है। हिंदी के अनेक तत्सम, पुलिंग शब्द अरबी - फारसी के कारण स्त्रीलिंग में प्रयुक्त होते हैं। अरबी में किताब स्त्रीलिंग है इसलिए हिंदी में 'पुस्तक' शब्द स्त्रीलिंग है जब कि 'ग्रंथ' शब्द पुल्लिंग है।

(ड) स्पष्टता या नवीनता : स्पष्टता या नवीनता के कारण भी पदों में विकास आ जाता है। 'मैं' का बहुवचन 'हम' है किंतु स्पष्टता के लिए 'लोग' शब्द जोड़कर 'हम लोग' प्रयुक्त होने लगा। नवीनता के कारण ही मृदुता के लिए मार्दव, पटुता के लिए 'पाटव', सुन्दरता के लिए सौन्दर्य आदि शब्द प्रयोग में आने लगे हैं। सांस्कृतिक एवम् राष्ट्रीय पुनर्जागरण के कारण भाषाओं में प्राचीन परंपरा की ओर झुकाव बढता है, फलस्वरूप नये-नये रूप भी गठे जाते हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हिंदी की शब्दावली में उसर्गादि के संयोग से नये शब्द गठे हुए हैं। जैसे - प्रभारी, प्राचार्य आदि।

(इ) बल : बलाघात के कारण भी किसी शब्द पर अधिक बल या जोर देने से रूप परिवर्तन हो जाता है। उदा. श्रेष्ठ के बदले श्रेष्ठतम् या सर्वश्रेष्ठ, स्वादिष्ट के स्थान पर बहुत स्वादिष्ट आदि शब्द बल देने हेतु प्रयुक्त किए जाने लगे हैं। अनेक के स्थान पर 'अनेकें', 'भोजपुरी में 'फजूल' (व्यर्थ के अर्थ) में 'बेफजुल' शब्द बल देने के कारण अशुद्ध हो गए हैं।

अब हम रूप या पद परिवर्तन की दिशाओं की ओर बढते हैं।

पद या रूप-परिवर्तन की दिशाएँ :

रूप या पद परिवर्तन की दिशाएँ दो प्रकार की मानी जा सकती हैं -

1) अभिव्यक्ति की सरलता

2) अभिव्यक्ति की नवीनता

1) अभिव्यक्ति की सरलता : अभिव्यक्ति की सरलता के कारण ही 'अग्ने' का 'अग्गिस्स', 'वायो:' का 'वाऊस्स' आदि रूप बन गए हैं। चला, पढा आदि के सादृश्य पर 'किया' या 'करा', चलिए, पढिए के सादृश्य पर 'कीजिए' के स्थान पर 'करिए' आदि अन्य उदाहरण हैं।

2) अभिव्यक्ति की नवीनता : अभिव्यक्ति की नवीनता के कारण ही 'श्रेष्ठ' का 'सर्वश्रेष्ठ', 'उत्तम' का 'सर्वोत्तम', 'अनेक' का 'अनेकों' रूप बन गए हैं। इसी प्रकार 'इंद्रिये' के स्थान पर 'इन्द्रिया', प्रभावशाली के स्थान र 'प्रभावी', 'मुझको' के बदले 'मेरे को', 'तुझको' के बदले 'तेरे को' आदि रूप चल पडे हैं।

नेमीचंद श्रीमाल जी ने भी रूप परिवर्तन की प्राय: दो दिशाएँ मानी हैं जैसे -

1) अनेकरूपता हटाकर एकरूपता : जब कुछ अपवाद स्वरूप प्राप्त रूप जटिल लगने लगते हैं और बोझ से मालूम पडते हैं तब उस अपवाद को तोडकर एकरूपता के ढाँचे में बिठा लिया जाता है। अंग्रेजी में बली और निर्बल क्रियाओं में बली क्रियाओं के रूप विभिन्न प्रकार के चलते हैं, अत: अनेकरूपता होती है और निर्बल क्रियाओं में ed लगाकर भूतकाल बना लिया जाता है। अत: सुविधा रहती है। पहले अंग्रेजी में बली क्रियाओं का बाहुल्य या (जैसे go, went, gone, eat, ate, eaten, write, wrote, written) पर धीरे-धीरे एकरूपता लाने के प्रभावस्वरूप अब गिनी-चुनी ही बली क्रियाएँ बची हैं, शेष में ed लगाकर रूप बना लिये जाते हैं।

2) नवीनता के प्रति झुकाव : अनेकरूपता हटाकर जहाँ एकरूपता स्थापित की जाती है, वहीं नवीनता, स्पष्टता या विभ्रम से बचने के लिए अनेकरूपता को भी अपना लिया जाता है। हिंदी परसर्ग प्रवृत्ति के कारण प्रयोग में आए विभक्तियों के घिसने के कारण जब अनेक कारकों के रूप एक से हो गए तो फिर उन्हें पृथक करना पडा। इस प्रकार के रूप परिवर्तन खास तौर पर बोलियों के उच्चारण रूप में बहुत मिल जाते हैं। राजस्थानी और भोजपुरी में एकवचन और बहुवचन में अंतर करने के लिए 'न' प्रत्यय जोड़ देते हैं, वैसे 'अ' स्वयं ही पर्याप्त होता है जैसे - छोटा नै बुलाओ (बहुवचन)।

इस प्रकार रूप या पद परिवर्तन के कारण और दिशाएँ बताई जाती है।

उपरोक्त सभी मुद्दों के पश्चात वाक्य और पद के महत्त्व संबंधी सिद्धांत पर भी ध्यान देना आवश्यक प्रतीत होता है जिसपर दृष्टि डाली जा सकती है। जैसे -

वाक्य और पद के महत्त्व संबंधी सिद्धांत :

वाक्य विज्ञान भाषा विज्ञान की महत्त्वपूर्ण शाखा है। वाक्य विज्ञान में वाक्यों के गठन या पदों का अन्वय, यह एक मान्यता है। दूसरी मान्यता यह भी है कि पदों से वाक्य बनाने की प्रक्रिया का अध्ययन वाक्य में किया जाता है। वाक्य भाषा की पूर्ण सार्थक इकाई है। मनुष्य का सोचना, बोलना आदि वाक्य के माध्यम से ही होता है। यह भी कहते हैं कि वाक्य रचना मनोवैज्ञानिक क्रिया है। भाषा मनुष्य के व्यवहार तथा भावोचार का विषय है। अत: मनुष्य की भावनाएँ तथा एकाधिक व्यवहार वाक्य द्वारा ही प्रयुक्त हो सकता हैं जिसे खंडित करने पर पद प्राप्त होते हैं। भाषा में वाक्य का स्थान प्रथम है। पद बनाने के लिए वाक्यों को तोडना ही पडता हैं। पदों के अन्वय से वाक्यों का निर्माण और वाक्य को तोडकर पद की प्राप्ति वाक्य विज्ञान में अध्ययन का मुख्य अभीष्ट है। वाक्य विज्ञान में वाक्य रचना एवं पदान्वय प्रक्रिया से सम्बन्ध सिद्धान्तों का निरूपण और निरूपित सिद्धांतों के आधार पर विश्लेषण होता है। चॉम्स्की ने वाक्य विज्ञान की परिभाषा इस प्रकार दी है -

"Syntax is the study of the principles and process by which sentences are constructed in Particular language." (Syntactic structure, chamnistry, P-11)

वाक्य संरचना के सिद्धांत और प्रक्रिया का अध्ययन वर्णनात्मक विधि से, ऐतिहासिक (विकासात्मक) विधि से, तुलनात्मक विधि से या इनमें से किसी एक विधि में किया जा सकता है। वाक्य तथा पद के महत्त्व के संबंध में जो सिद्धांत है उसका विश्लेषण दो भागों में किया जा सकता है। एक को अभिहितान्वयवाद और दूसरे को अन्विता विधानवाद कहते हैं। इन दोनों के विषय में आगे चर्चा करेंगे।

वाक्य और पद का संबंध (पदवाद और वाक्यवाद) :

भाषा में पद की प्रधानता है कि, वाक्य के इस विषय से संबंधित दो सिद्धांत प्रचलित हैं जो इस प्रकार हैं -

1) अभिहितान्वयवाद : अभिहितान्वयवाद को पदवाद भी कहा जाता है, क्योंकि भाषा में इस सिद्धांत के अनुसार पद की सत्ता प्रमुख है, वाक्य की सत्ता गौण है। इस सिद्धांत का प्रवर्तन कुमारिल भट्ट ने किया था। अभिहितान्वयवादी सिद्धांत के अनुसार पदों से समूह को वाक्य कहते हैं। पदों को अन्वित कर वाक्य गठन किया जाता है। यदि पद न हों तो वाक्य-संरचना अकल्पनीय है।

अभिहितान्वयवाद की महत्ता कभी रही होगी लेकिन आज यह ग्राह्य नहीं है। इसके अनुसार पदान्वय से वाक्य की संरचना होती हे, अर्थात् एक वाक्य में अनेक पदों का होना अनिवार्य है। लेकिन वाक्य तो एक 'पद' का भी होता है। जैसे - जा, खा, जाओ, भागो, ठहरो आदि एकपदीय वाक्य हैं और स्पष्ट है कि इसमें पदान्वय नहीं है। वाक्य की

कल्पना के अभाव में पद का अस्तित्व ही नहीं होता, क्योंकि कोई शब्द तभी पद हो सकते हैं जब वाक्य में प्रयुक्त होने के बाद ही पद बनते हैं। आधुनिक भाषाविज्ञानियों को अभिहितान्वयवाद ग्राह्य नहीं है। क्योंकि आधुनिक भाषाविज्ञान वाक्य की सत्ता को प्रमुख मानता है। अत: वाक्य ही भाषा की सार्थक इकाई है। बोलते समय 'पद' नहीं वाक्य प्रयुक्त होते हैं जो हम सभी जानते ही है।

2) अन्विताविधानवाद : अन्विताविधानवाद के प्रवर्तक प्रभाकर गुरू हुए। प्रभाकर गुरू कुमारिल भट्ट के ही शिष्य थे। प्रभाकर गुरू ने पदवाद का खंडन किया और 'वाक्यवाद' अर्थात अन्विताविधानवाद की स्थापना की। व्यक्ति से संबंधित या भाषा से संबंधित वाक्य का महत्त्व हमने उपर देखा ही है। वाक्य विधान के स्फोट के पूर्व चयन क्रम की प्रक्रिया मानसिक होती है और इतनी शीघ्र होती है कि वाक्य प्रयोग में व्यवधान नहीं होता। पदों की सत्ता तो वाक्यों के प्रयोजन के अनुसार भाषण के पश्चात् आभासित होता है। यह संज्ञा पद है, यह विशेषण पद है, यह क्रिया विशेषण पद है आदि-आदि। संज्ञा, विशेषण, क्रिया, अव्यय, क्रियाविशेषण आदि पदों को जोडकर वाक्य नहीं बनाए जाते। यह अस्वाभाविक क्रिया होती है। 'राम ने कहा था' इस वाक्य में संज्ञा विभक्ति, क्रिया, सहायक क्रिया का क्रमिक विन्यास हुआ है। बोलने वाला यह कभी नहीं सोचता कि संज्ञा विभक्ति, क्रिया सहायक क्रिया के क्रम समुच्चय कर बोल रहा है, बल्कि जो वाक्य प्रयुक्त हुआ है, उसका विश्लेषण करने पर इन पदों की प्राप्ति होती है।

पद के पूर्व शब्दों का मूल रूप होता है। शब्द वाक्य में प्रयुक्त होने पर पद बनते हैं। अत: वाक्य के बिना 'पद' की सत्ता होना असंभव है। वाक्य की सत्ता को भर्तृहरि ने भी कहा था -

> ''पदेनवर्णाविद्यन्ते वर्णेष्वयवानच,
> वाक्यात पदानामस्यन्तं प्रदिवेको न कश्चन:''
>
> (वाक्यपदीय कांड पृ. 73)

''वर्ण में अवयव नहीं, पदों में वर्ण नहीं, वाक्य में पद नहीं'', भाषा मानसिक क्रिया है। बोलने के समय यह कतई नहीं सोचा जाता कि अमुक वर्णों को जोड़कर पद बनाये और अमुक-अमुक पदों के योग से वाक्य बनाए। यह कृत्रिम क्रिया होगी। भाषा का प्रयोग अभ्याससाध्य स्वाभाविक क्रिया है।

वाक्य में पद विन्यास की विशेषताएँ :

प्रत्येक भाषा की अपनी एक निजी प्रकृति होती है, प्रत्येक भाषा में वाक्य गठन की निजी विशेषताएँ हैं। सामान्यत: वाक्य निर्माण में पदविन्यास की विशेषताएँ जो संसार की बहुतसी भाषाओं में मिलती है, जैसे -

1. चयन
2. क्रम
3. ध्वनि स्वर परिवर्तन

1. चयन : चयन मानसिक प्रक्रिया और मनोवैज्ञानिक क्रिया है। भाषा सामाजिक वस्तु है। भाषा का प्रयोग

समाज में होता है। प्रयुक्त की जानेवाली भाषा का प्रभाव तथा कुप्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है। जहाँ समझकर बोलनेवालों की प्रशंसा होती है वहाँ बिना सोचे-समझे बोलनेवालों की निंदा होती है। वक्ता के लिए अपेक्षित अर्थ और अभीष्ट प्रभाव के लिए चयन की प्रक्रिया से गुजरना पड़ता है। चयन तो सबके मस्तिष्क में होता है। कोई सही पदों का चयन करता है, कोई नहीं, एक ही अर्थ के वाचक विभिन्न पद होते हैं। उनमें किनका प्रयोग किया जाय यही चयन है। सैंधव का अर्थ होता है नमक, घोड़ा। एकाद व्यक्ति को सैंधव ले जाओ की अपेक्षा घोडा ले जाओ कहना अच्छा होगा। चयन का संबंध संदर्भ, प्रसंग और परिस्थिति से भी है।

'पद' चयन तथा 'पद' प्रयोग दोनों की भी आवश्यकता है। 'चयन' मानसिक क्रिया होती है और 'प्रयोग' व्याकरणिक क्रिया होती है। समानअर्थी पदों में से चयन करके व्याकरणिक दृष्टि से 'प्रयोग' ही योग्यता है। अत: हम यह कह सकते हैं कि योग्यता के अनुसार ही 'चयन' होता है।

2. क्रम : 'चयन' तथा 'क्रम' में अंतर होता है। 'चयन' मानसिक व्यापार है तो 'क्रम' व्याकरणिक। 'चयन' के साथ मानस में क्रम भी होता रहता है। वाक्य का संगठन तो पहले 'मानस' में ही होता है और प्रकट होने की क्रिया बाद में होती है। वाक्य में महत्त्वपूर्ण बात 'आसत्ति' होती है। वाक्य में अर्थबोध के लिए 'आसत्ति' का होना और क्रम का होना आवश्यक है। 'क्रम' के होने से अर्थ प्रतीति में सहायता मिलती है। केवल 'चयन' महत्त्वपूर्ण नहीं है तो इसके साथ-साथ पदों का क्रम के साथ क्रमविन्यास भी भावों की अभिव्यक्ति में सहायक होता है।

संसार की सभी भाषाओं में वाक्य गठन में निर्धारित एक ही क्रम काम नहीं आते। क्रम, विचार से प्रभावित होता है। जैसे सोचते हैं, वैसे बालते हैं। 'पदक्रम' का एक निश्चित नियंत्रण क्रम है। इसको तोडकर उचित अर्थ की प्राप्ति संभव नहीं है। क्रम के बदलने से अर्थ में भी बदलाव आता है। भाषा में बल और छन्द के कारण क्रम भंग मिलता है। जिससे अर्थ परिवर्तन की संभावना होती है।

3. ध्वनि स्वर परिवर्तन : 'भाषण' भाषा की विशेषता है। बोलते समय संधि, समास, बलाघात, तान आदि के कारण ध्वन्यात्मक परिवर्तन होता रहता है। 'वह कब तक आएगा' वाक्य के प्रवाह में सुनायी पडता है 'वह कत्तक आएगा।'

इस प्रकार वाक्य निर्माण में पदविन्यास की विशेषताएँ बताई जा सकती है। इसके पश्चात हम हिंदी वाक्यरचना के अंतर्गत पदक्रम या अन्विति का अध्ययन करेंगे।

हिंदी वाक्य-रचना :

पदक्रम और अन्विति :

व्याकरण सिद्ध पदों या शब्दों को क्रम से रखने और उनका परस्पर संबंध स्पष्ट करने से वाक्य की रचना होती है। वाक्य विन्यास के अंतर्गत प्रमुख रूप से (1) पदक्रम, (2) अन्विति या अन्वय यही दो विषय बताए जाते हैं। हम विस्तार से उसका अध्ययन कर सकते हैं।

1. पदक्रम :

भाषा में प्रयुक्त वाक्यों के पदों को जिस क्रम में रखा जाता है उसे पदक्रम कहते हैं। पदक्रम को शब्दक्रम भी कहते हैं किंतु भाषा विज्ञान की दृष्टि से शब्द विभक्ति रहित होता है और पद विभक्त सहित होता है। संस्कृत में एक वाक्य है - 'पत्र् पतित' (पत्ता गिरता है) यहाँ शुद्‌ध शब्द तो 'पत्र' है और वाक्य में प्रयोग करने हेतु उसे पत्रं रूप देना पडा है। इसका अर्थ है 'पत्र' शब्द है और पत्रं पद है। जरूरी नहीं कि हर समय शब्द के रूप को परिवर्तित करना ही पडे। हिंदी का एक उदाहरण हम ले सकते हैं - हिंदी में 'घोड़ा' स्वतंत्र रूप से बोले, लिखे जाने के कारण एक शब्द कहलाता है किंतु वाक्य में प्रयुक्त होने पर वह 'पद' का रूप ले लेता है। अत: (वह घोड़ा लाओ। इस वाक्य में प्रयुक्त होने के कारण घोडा केवल 'शब्द' नहीं तो 'पद' है।

भारतीय भाषाओं में प्राचीन काल से ही पदक्रम की एक अवस्था है। प्रारंभ में कर्ता और अंत में क्रिया। कर्म आदि सभी पदों का स्थान बीच में रहता है। यहाँ पर हम कुछ उदाहरण देखेंगे।

संस्कृत - विश: क्षत्रियाय बलिं हरन्ति। (शतपथ ब्राह्मण)
(वैश्य राजा को कर देते हैं।)

पालि - राज पुरिसो-चोरस्य एकं हत्थं उभोडपि च पादे छिन्दति।
(राज पुरुष चोर का एक हाथ तथा दोनें पैर काटता है।)

प्राकृत - तस्य णं सेणिय रूस रण्णो धारिणी नामं देती हो त्था।
(उस राजा सेणिय की धारिणी नाम की दूसरी राणी थी।)

अपभ्रंश - हडं गोरउं हउं सामलउ हउं।
(मैं गोरा हूँ, साँवला हूँ।)

संयोगात्मक भाषा होने के कारण संस्कृत पदों में क्रम में परिवर्तन हो जाता था। भले ही पदक्रम में परिवर्तन हो विभक्तियों के कारण कर्ता, कर्ता ही रहता है और कर्म, कर्म ही। जैसे - 'राम: रावणं हन्ति'। 'रावणं राम: हन्ति'। 'हन्ति रावणं राम:।' इन तीनों वाक्यों में पदक्रम परिवर्तन दिखाई देता है लेकिन मारनेवाला राम ही है और मरने वाला रावण।

धीरे-धीरे प्राकृत, अपभ्रंश, हिंदी में वियोगात्मक बढती गई, पदक्रम की उपर्युक्त स्वच्छंदता कम होती थी। आज कभी - कभी हिंदी में जोर देने के लिए पदों में परिवर्तन कर लिया जाता है किंतु एक सीमा तक और वह भी बहुत कम जैसे - 'रावण को राम ने मारा।' इस वाक्य में पदों का क्रम बदलकर 'मारा रावण को राम ने।' नहीं कहा जाता।

विश्व की भाषाओं को पदक्रम की दृष्टि से दो भागों में बाँधा जा सकता है। -

(1) परिवर्तनीय पदक्रम।

(2) अपरिवर्तनीय पदक्रम।

(1) परिवर्तनीय पदक्रम : वक्ता की इच्छानुसार बिन पदों के क्रम में परिवर्तन किया जा सकता है वह परिवर्तनीय पद वाली भाषाएँ है। इसके अंतर्गत संस्कृत, ग्रीक, लैटिन, अरबी, फारसी आदि भाषाएँ आती हैं। इन भाषाओं की वाक्य रचना में पदों के क्रम में परिवर्तन कर देने पर भी अर्थ में कोई अन्तर नहीं पडता। संस्कृत का एक उदाहरण हमने ऊपर देखा ही है। दूसरा उदाहरण है - राम: गृहं गच्छति (राम घर जाता है।) इस वाक्य में पदक्रम बदलकर 'गृहं गच्छति राम:' भी कहा जा सकता है। पदों के परिवर्तन से अर्थ में अंतर नहीं पडता।

संस्कृत, रूसी जैसी शिष्ट योगात्मक भाषाओं में विभक्तियाँ शब्दों के साथ लगी रहने के कारण वाक्य में कहीं भी आने पर उनका अर्थ और व्यापार सुनिश्चित रहता है इसीलिए पदक्रम बदल देने पर भी अर्थ नहीं बदलता। इस भाषाओं में यह स्वतंत्रता जरूर है किंतु इसकी भी एक सीमा है। इन भाषाओं में पदक्रम का महत्त्व रहने पर भी यदि किसी पद पर बल देना है तो उसका प्रयोग प्रारंभ में होता है। जैसे ''बाल्क: मोदकं खादति' यह सामान्य कथन हुआ, किंतु यदि मोदक पर बल देना अभीष्ट है तो मोदकं बालक: खादतिं यही कहेंगे। दूसरी बात यह है कि 'एव', 'अपि' आदि अव्यय संबंध पद के साथ ही प्रयुक्त होते हैं। उनके स्थान पर हेर-फेर हो जाने से अर्थ में बहुत बदलाव आ जाता है। जैसे - 'बालक: एवं मोदकं खादति' और बालक: मोदकं एवं खादति' में स्पष्ट अन्तर है। इसलिए पदक्रम की निश्चित जगह (स्थान) और स्वतंत्रता सापेक्षा धर्म हैं। उन्हें कतई अपरिवर्तनीय नहीं मानना चाहिए।

(2) अपरिवर्तनीय पदक्रम : संसार में बहुतसी भाषाएँ ऐसी भी हैं जिनके पदक्रम में परिवर्तन नहीं किया जा सकता। इनमें पदक्रम परिवर्तन करने से अर्थ में परिवर्तन हो जाता है। जैसे चीनी परिवार की अयोगात्मक भाषाएँ स्थान प्रधान होती है। इसलिए उनमें पदक्रम का विशेष महत्त्व है। इनमें पदक्रम में स्थान परिवर्तन कर देने से अर्थ में भी बदलाव आ जाता है। जैसे - वाङ्, ताङ्, चाङ्, - वाङ् को मारता है।

अयोगात्मक भाषाओं के अंतर्गत हिंदी तथा अंग्रेजी भाषा भी आती है। शब्दों के साथ विभक्ति का प्रयोग नहीं किया जाए तो उस स्थान पर कौन सा विभक्ति प्रत्यय रखना है यह निश्चित करना कठीन होता है। ऐसी अवस्था में क्रम निश्चित न रहे तो अर्थ उचित नहीं होता है। जैसे - 'साँप मेंढक खाता है और मेंढक साँप खाता है।' इन वाक्यों में कर्तृत्त्व का निर्णय पदक्रम से ही होता है। क्रम उलट जाने पर कर्ता कर्म बन जाता है और कर्म का स्थान कर्ता लेता है। यही स्थिति अंग्रेजी भाषा की भी है।

पदक्रम परिवर्तन के संदर्भ में आ. देवेन्द्र ने कहा है, ''सामान्य धारणा है कि कुछ भाषाओं, जैसे हिन्दी, अंग्रेजी आदि का पदक्रम निश्चित होता है और कुछ संस्कृत, रूसी आदि का स्वतंत्र। कुछ दूर तक यह धारणा ठीक है किंतु सर्वथा मान्य नहीं है। किसी भाषा का पदक्रम न तो बिल्कुल निश्चित होता है और न पूर्ण स्वतंत्र। पदक्रम का निर्धारक केवल व्याकरण नहीं, मनोविज्ञान भी हुआ करता है और मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं से प्रेरित होकर पदक्रम में परिवर्तन करना पडता है। वस्तुत: व्याकरण के नियम भी मूलत मनोविज्ञान से ही निर्मित होते हैं।''

(भाषा विज्ञान की भूमिका, पृ. 246)

पदक्रम के नियम :

जैसा कि हम सभी इससे परिचित ही है कि विश्व की सभी भाषा की संरचना एक-सी नहीं है। उनके पदक्रम में थोडी बहुत मात्रा में अंतर हैं। हिंदी के पदक्रम के नियम कुछ इस प्रकार हैं -

1. हिंदी में कर्ता + कर्म + क्रिया का नियम है। वाक्य में कर्ता पहले और अंत में क्रिया तथा कर्म बीच में होना आवश्यक है जैसे - सोहन अपने घर गया।

2. विशेषण संज्ञा या विशेष्य से पूर्व आता है - जैसे - मीठा आम, सफेद घोडा आदि।

3. क्रिया विशेषण प्राय: क्रिया से पहले आता है जैसे - एक अन्धा आदमी धीरे-धीरे चल रहा था। मैं अब खा रहा हूँ।

4. सर्वनाम वाक्य में संबोधन के रूप में नहीं आता।

5. सर्वनाम के पहले विशेषण नहीं आ सकता। शुद्ध क्रम है - वह सुंदर परी है। तम्मना अच्छी लडकी है।

6. परसर्ग या कारक चिह्न ने, से, को आदि सर्वनाम के बाद आते हैं। जैसे - राम ने, उससे, घर में।

7. कर्ता और कर्म के बीच अधिकरण, अपादान, सम्प्रदान तथा करण कारक को रखा जाता है। जैसे - ''सूरज ने बाजार में कपडे की दुकान से किरण के लिए कपडे खरीदे।'' इस वाक्य में ''बाजार में'' अधिकरण कारक है। 'किरण के लिए' संप्रदान कारक है।

8. संबोधन प्राय: वाक्य के प्रारंभ में आता है जैसे राम, आओ यही बैठें। कभी-कभी अंत में भी आता है। जैसे - बैठो मित्र, चलो भाई, उठो सोहन।

9. विस्मयादि बोधक अव्यय भी प्राय: वाक्य के प्रारंभ में आता है जैसे - अरे भाई। यह क्या किया? अरे! तुम आ गए।

10. आग्रहात्मक 'न' वाक्य के अन्त में आता है जैसे तुम मेरा काम कर दोगें न?

11. निषेधात्मक अव्यय प्राय: क्रिया के पहले आते हैं। जैसे - मैं कॉलेज नहीं जा रहा हूँ। बल देने के लिए 'नहीं' मैं जाऊँगा भीं कहा जा सकता है।

12. निपात जैसे भी, ही, तो, तक, भर उन्हीं शब्दों के बाद आते हैं जिनके अर्थ पर बल देना हो। जैसे - ही राधा ही अपने घर जाएगी, राधा अपने ही घर जाएगी।

तो - राम तो अपने घर जाएगा, राम अपने घर तो जाएगा।
भी - राधा भी अपने घर जाएगी, राधा अपने घर भी जाएगी।

13. 'केवल' वाक्य में पहले आता है जैसे - 'केवल राधा जाएगी।'

14. मात्र पहले भी आता है और बाद में भी आता है। जैसे - मात्र दो रुपये चाहिए, दो रुपये मात्र चाहिए।

15. वाक्य के सभी अंगों में समीपता होनी चाहिए जैसे -

- एक पानी का गिलास लाओ - अशुद्ध। (पानी का एक गिलास लाओ - शुद्ध)
- मुझे गर्म गाय का दूध चाहिए - अशुद्ध। (मुझे गाय का गर्म दूध चाहिए - शुद्ध)

16. द्वंद्व समासों में एक व्यवस्था होती है। अधिक महत्त्वपूर्ण अथवा आकार में छोटा शब्द पहले रखा जाता है। तथा रुपया-पैसा, सोना-चाँदी, नर-नारी, अमीर-गरीब, लाभ-हानि, जन्म-मरण आदि।

इस प्रकार पदक्रम के कुछ सामन्य नियम बताएँ जा सकते हैं। हमने उपरोक्त कुछ वाक्यों में देखा की केवल पद का स्थान बदल दिया जाय, या कुछ विशिष्ट पद पर बल दिया जाय तो भी वाक्य के अर्थ में परिवर्तन हो जाता है।

2. अन्विति या अन्वय :

परस्पर संबंध को ही 'अन्वय' या 'मेल' कहा जाता है। वाक्य के अंतर्गत संज्ञा, क्रिया आदि पदों में संबंध का होना आवश्यक है। 'अन्वय' की परंपरा संस्कृत से चली आ रही है। संस्कृत में वचन तथा पुरुष की दृष्टि से क्रिया कर्ता के अनुरूप होती है। जैसे - रामः पठति, रामौ पठतः, रामान् पठन्ति। इसी प्रकार 'अहं गच्छामि', 'वयं गच्छामः' आदि। पालि और प्राकृत की भी यही स्थिति थी। हिंदी में क्रिया न केवल 'वचन और पुरुष' अपितु 'लिंग' में भी कर्ता के अनुरूप होती है। यह बात आदिकाल से ही मिलती है। संस्कृत में 'रामः पठति', 'सीता पठति' है, लेकिन हिन्दी में राम पढ़ता है, सीता पढ़ती है, ऐसा है। क्योंकि व्याकरणिक नियम में अंतर है। संस्कृत में क्रियारूप में लिंग के अनुसार परिवर्तन नहीं होता किंतु कृदंतों में क्रियारूपों में लिंगानुसार परिवर्तन होता है। जैसे - गच्छन् बालकः (चलता बालक), गच्छाती बालिका (चलती बालिका)। इसी प्रकार सः गतः (वह गया, सा गता। (वह गई)। धीरे-धीरे पालि, प्राकृत, अपभ्रंश में क्रिया के स्थान पर ये कृदन्ती रूप बढ़ते गए और आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं में बहुत बढ गए। इस प्रकार हिंदी को यह पदान्वय परम्परा से प्राप्त हुई है।

वाक्य-रचना में पदक्रम की तरह ही 'अन्वय' का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है जिसमें लिंग, वचन, पुरुष और काल के अनुसार पदों का पारस्पारिक संबंध निरूपित किया जाता है। अन्वय के संबंध में निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना आवश्यक हैं।

(a) कर्ता और क्रिया का अन्वय :

1. यदि कर्ता विभक्ति रहित हो अर्थात कर्ता के साथ कारक चिह्न ने, को, से आदि न लगा हो तो क्रिया कर्ता के अनुसार होती है जैसे - राधा पढ़ रही है, श्याम पानी पी रहा है।

2. यदि कर्ता के साथ कारक चिह्न को से आदि लगे हों तो कर्ता और क्रिया का अन्वय अर्थात् मेल नहीं होता है जैसे - रूपा को जाना है, लड़कों को जाना है।

3. यदि वाक्य में कारक चिह्नों से रहित अनेक कर्ता प्रयुक्त हो और बाद में संयोजन शब्द आया हो तो इन कर्ताओं की क्रिया उसी लिंग के बहुवचन में होगी। जैसे -

रमेश, दिनेश, गणेश और सोहन घर जा रहे हैं।

अलका, शीला और स्नेहा कल जाएंगी।

4. कर्ता के प्रति सादर सूचित करने के लिए एकवचन के साथ बहुवचन की क्रिया आती है। जैसे - निराला महान कवि थे।

5. यदि कर्ता के लिंग का पता न हो तो क्रिया पुलिंग होती है। जैसे - अभी-अभी कौन बाहर गया है?

6. यदि वाक्य में दो लिंगों और एक बहुवचन के कर्ता प्रयुक्त हो तो क्रिया बहुवचन में प्रयुक्त होगी। जैसे - छात्र और छात्राएँ विद्यालय जाती है।

(b) कर्म और क्रिया का अन्वय :

1. अगर एकही लिंग और वचन के अनेक प्राणी या वस्तुबोधक कर्म एक साथ आए तो क्रिया कर्म के लिंग और वचन के अनुसार होगी। जैसे - रमेश ने एक बैल और एक बकरी खरीद ली। उसने दो गाय और चार बैल खरीदे।

2. कर्ता के साथ कारक चिह्न हो तो क्रिया कर्म के अनुसार होती है। जैसे - उषा ने एक केला खाया, बीमार को रोटी खानी चाहिए।

(c) विशेषण और विशेष्य का अन्वय :

1. यदि एक से अधिक विशेषण हो तो सब उस संज्ञा के अनुरूप होने चाहिए। जैसे - गन्दे और मैले कुचैले कपडे, गन्दी और भोंडी लड़की, गंदा और भोंडा लड़का।

2. अनेक समास रहित विशेष्यों का विशेषण निकटवर्ती विशेष्य के अनुरूप होता है । जेसे - भोले भाले बच्चे और बच्चियाँ, भोली-भाली लडकियाँ और लड़के।

(d) सर्वनाम और संज्ञा का अन्वय :

1. सर्वनाम और क्रिया का वचन और पुरुष सम्बद्ध संज्ञा के अनुरूप होना आवश्यक है। जैसे - कोमल ने कहा कि मैं पढूँगी, पिताजी आएँ तो उनको प्रणाम करना। बडे चाचा आए हैं, वे कल जाएंगे।

2. आदर के लिए, एक वचन-संज्ञा के लिए बहुवचन सर्वनाम प्रयुक्त होता है। जैसे - दादाजी पणजी से आए हैं तथा वे कुछ दिन रुकेंगे, उसके बाद उन्हें दिल्ली जाना है।

5. किसी वर्ग के प्रतिनिधि के रूप में मै के स्थान पर 'हम' और 'मेरा' के स्थान पर 'हमारा' का प्रयोग होता है।

उपरोक्त सभी मुद्दों का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि, वाक्य-रचना के अंतर्गत पदक्रम जितना महत्त्वपूर्ण है उतना ही महत्त्व 'अन्वय' का भी है। हमने देखा कि इसमें लिंग, वचन, पुरुष और काल के अनुसार पदों का पारस्पारिक संबंध जैसे निरूपित होता है। भाषा में 'अन्वय' के लिए कौनसी महत्त्वपूर्ण बातों की ओर ध्यान देना आवश्यक है इसकी ओर पूर्ण ध्यान आकृष्ट किया गया है।

2.3 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न :

(अ) सही विकल्प चुनकर वाक्य फिर से लिखिए।

1. विभक्तियुक्त शब्द को .... कहते हैं।
   अ) ध्वनि ब) पद क) शब्द ड) वाक्य

2. विभक्तिरहित शब्द को .... कहते हैं।
   अ) वाक्य ब) ध्वनि क) शब्द ड) पद

3. ने, को, से आदि को .... कहते हैं।
   अ) स्वर ब) व्यंजन क) विभक्ति ड) प्रत्यय

4. .... ही पद कहलाते है।
   अ) विभक्ति ब) शब्द क) वाक्य ड) सर्ग

5. .... में प्रयुक्त होने की योग्यता रखनेवाले शब्द पद हैं।
   अ) वाक्य ब) शब्द क) उपसर्ग ड) परसर्ग

6. पद-भेद .... प्रकारों में प्राप्त होते हैं।
   अ) चार ब) छह क) आंठ ड) दस

7. 'पद-परिचय' का अर्थ होता है पदों का ....।
   अ) अन्वय ब) विशेषण क) संगठन ड) ढाँचा

8. पद के लिए .... शब्द का भी प्रयोग किया जाता है।
   अ) रूप ब) अन्विति क) विश्लेषण ड) विशेषण

9. पद रचना में शब्द के साथ-साथ .... का भी योग होता है।
   अ) रूप ब) संबंधतत्त्व क) अर्थतत्त्व ड) वाक्य

10. पद के मूल तत्त्व को .... कहते हैं।
    अ) अर्थतत्त्व ब) संबंधतत्त्व क) रूपिम ड) शब्द

11. .... ने लिखा है, ''नापि केवला प्रकृति: प्रयोक्तव्या नापि केवल प्रत्यय।''
    अ) भर्तृहरी ब) भोलानाथ तिवारी क) पतंजलि ड) प्रो. वंशीधर

12. रूपविज्ञान या पद विज्ञान की .... शाखाएँ बताई जाती हैं।
    अ) दो ब) तीन क) चार ड) पाँच

13. स्वतंत्र शब्द भी .... का काम करते हैं।

अ) पदों का　　ब) संबंधतत्त्व　　क) अर्थतत्त्व　　ड) रूप

14. .... शाखा में वाक्य के अंतर्गत पदों या रूपों का विवरण प्रस्तुत कर दिया जाता है।
अ) वर्णनात्मक रूप विज्ञान　　ब) संरचनात्मक रूपविज्ञान
क) ऐतिहासिक रूपविज्ञान　　ड) तुलनात्मक रूपविज्ञान

15. .... वाक्य के अंतर्गत रूपों का संगठनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत करते हुए उसका अध्ययन किया जाता है।
अ) संरचनात्मक रूपविज्ञान　　ब) वर्णनात्मक रूपविज्ञान
क) तुलनात्मक रूपविज्ञान　　ड) ऐतिहासिक रूपविज्ञान

16. संस्कृत में .... लिंग हैं।
अ) तीन　　ब) दो　　क) चार　　ड) इनमें से नहीं

17. हिंदी में .... लिंग है।
अ) एक　　ब) दो　　क) तीन　　ड) इनमें से नहीं

18. हिंदी में .... वचन है।
अ) दो　　ब) तीन　　क) चार　　ड) इनमें से नहीं

19. बेजान चीजों को .... की श्रेणी में रख गया है।
अ) पुलिंग　　ब) स्त्रीलिंग　　क) नपुंसकलिंग　　ड) सभी में

20. काल के भेद .... हैं।
अ) दो　　ब) तीन　　क) चार　　ड) इनमें से नहीं

2.4 शब्दार्थ :

पद = व्याकरण में किसी वाक्य में आया हुआ वह शब्द या शब्द वर्ग जिसका कुछ अर्थ हो। वाक्य का अंश या खंड।

रूप = स्वाभाविक के अतिरिक्त कोई कृत्रिम वृत्ति या भाव धारण करना।

पदविज्ञान = पद का विशिष्ठ ज्ञान।

संज्ञा = व्याकरण में वह विकारी शब्द जो किसी वास्तविक या कल्पित वस्तु का बोधक होता है। जैसे - राम, पर्वत।

सर्वनाम = व्याकरण में ऐसे विकारी शब्दों का भेद या वर्ग जिनका प्रयोग सभी नामों या संज्ञाओं के स्थान पर उनके प्रतिनिधी के रूप में होता है। जैसे - हम, तुम, यह, वह आदि।

क्रियापद = व्याकरण में वह शब्द जिससे किसी क्रिया के पद का बोध होता है।

अन्वय = किसी वाक्य या शब्दावली के अनुसार उसका ठीक या संगत अर्थ लगाना। कार्य और कारण का परस्पर संबंध।

अव्यय = व्याकरण में वह शब्द जिसका सब लिंगो, विभक्तियें और वचनों में समान रूप से प्रयोग हो।

वाक्यांश = पूरे वाक्य का कोई अंश, खंड या टुकडा।

जातिवाचक = जाति बतानेवाला। जाति के हर सदस्य का समान रूप से सूचक। जैसे - जातिवाचक संज्ञा।

अर्थतत्त्व = अर्थ संबंधी वास्तविक या मौलिक बात, गुण या आधार।

संबंधतत्त्व = दो वस्तुओं में किसी प्रकार का लगाव या सम्पर्क बतानेवाला तत्त्व।

आबद्‌ध = बँधा हुआ।

कारक = व्याकरण में संज्ञा या सर्वनाम शब्द की वह अवस्था या रूप जिसके द्‌वारा किसी वाक्य में संबंध प्रकट होता है।

सरित् = (स्त्री) सरिता (नदी) धारा, बहा हुआ, धारा या प्रवाह आदि।

वारि = जल, पानी

प्रतिस्थापना = अपने स्थान से हटी हुई वस्तु या व्यक्ति को फिर उसी स्थान पर रखना या बैठाना।

काकु-वक्रोक्ति = अलंकार में वक्रोक्ति का एक भेद, जिसमें शब्दों की ध्वनि से ही दूसरा अभिप्राय लिया जाता है।

पद्‌च्छेद = व्याकरण में प्रत्येक पद को नियमों के अनुसार अलग-अलग करने की क्रिया।

पुरुष = इसके उत्तम पुरुष, प्रथम पुरुष, मध्यम पुरुष ये तीन विभाग है। वक्ता अपने संबंध में जिस सर्वनाम का उपयोग करता है, वह उत्तम पुरुष कहलाता हे। जैसे - मैं या हम। वह जिससे बात करता है उसके लिए उपयुक्त होनेवाला विशेषण मध्यम पुरुष कहलाता है। जैसे - तू, तुम या आप। सर्वनामों की गणना प्रथम पुरुष में होती है। जैसे - वह या वे।

2.5 सारांश :

पदविज्ञान को ही रूपविज्ञान कहते हैं। अंग्रेजी में इसे Morphology कहते हैं। भाषाविज्ञान की इस शाखा में रूप या पद का अध्ययन किया जाता है। रूपविज्ञान में व्याकरणिक इकाइयों का अध्ययन किया जाता है जिसके अंतर्गत संबंधतत्त्व तथा अर्थतत्त्व आदि का विवरण प्राप्त होता है। व्याकरणिक इकाईयों में मुख्यत: शब्द या वाक्य का वर्णन किया जाता है।

शब्द और रूप या पद का भेदक तत्त्व विभक्ति है। विभक्तिरहित रूप को शब्द कहते हैं, विभक्तिसहित शब्द को पद कहते हैं। शब्दों में विभक्ति प्रत्यय जोडकर ही पद बनाए जाते हैं। उदा. 'राम' एक शब्द है और राम ने, राम

को, राम से आदि पद रूप है। वाक्य में शुद्ध शब्द का प्रयोग न होकर रूप या पद का ही प्रयोग होता है। इसीलिए हम शब्द के दो प्रकार है, ऐसा कह सकते हैं - (1) विभक्तियुक्त, (2) विभक्तिरहित।

वाक्य के अंतर्गत इन दोनों का भी प्रयोग होता है। वाक्य में दो तत्त्वों को प्रयुक्त किया जाता है जिसे अर्थतत्त्व और संबंधतत्त्व कहते हैं। अर्थतत्त्व सार्थक होते हैं, तो संबंधतत्त्व संबंध दिखलाते हैं। पद साधक प्रत्ययों का अध्ययन रूपविज्ञान में होता है और शब्द साधक प्रत्ययों का अध्ययन शब्दविज्ञान में होता है। पदरचना के विविध प्रकार है जैसे- शब्दों का ज्यों का त्यों छोड देना, शब्दों में कुछ जोडकर पद बनाने की पद्धति, अपश्रुति, आवृत्ति, ध्वनिगुण, आदेश, शब्दस्थान या पदक्रम स्वतंत्र शब्द आदि।

विद्वानों ने पद्विज्ञान की चार शाखाएँ भी बताई हैं - वर्णनात्मक, संरचनात्मक, ऐतिहासिक, तुलनात्मक आदि। भाषा में निश्चयात्मकता लाने हेतु व्याकरण अपनी सही अभिव्यंजना करता है। व्याकरणिक कोटियों के अंतर्गत लिंग, वचन, पुरुष, काल, वृत्ति आदि का अध्ययन भाषा में भावों की अभिव्यक्ति के लिए किया जाता है। प्रत्येक भाषा के शब्दों और रचना पद्धति में भेद होता है। अत: व्याकरणिक कोटियों का एक ढ़ाँचा सभी के लिए लागू नहीं हो सकता, क्योंकि प्रत्येक भाषा का व्याकरणिक क्रम एक जैसा नहीं होता। थोडी बहुत मात्रा में बदलाव होने के कारण व्याकरणिक कोटियों का एक ही ढ़ाँचा काम नहीं आ सकता।

प्रत्येक शाखा की व्याकरणिक कोटियाँ काल सापेक्ष्य हैं। कालक्रमानुसार इन कोटियों में परिवर्तन होता रहता है। भाषाविज्ञान इस कोटियों में परिवर्तन होता रहता है। भाषाविज्ञान में जैसे ध्वनि परिवर्तन के विविध कारण बताएँ जाते हैं उसी प्रकार पद परिवर्तन के भी कारण बताएँ गए हैं। यह परिवर्तन भाषा की सहज प्रकृति है। सरलता, भूल या अज्ञानवश, सादृश्यता, स्पष्टता या नवीनता, बल आदि के कारण रूप परिवर्तन हो सकता है। उसी प्रकार अभिव्यक्ति की सरलता और अभिव्यक्ति की नवीनता रूप परिवर्तन की दिशाएँ हैं।

इस प्रकार भाषाविज्ञान के अंतर्गत पदविज्ञान या रूपविज्ञान अपना महत्त्वपूर्ण कार्य निभाता है।

2.6 स्वयं अध्ययन प्रश्नों के उत्तर :

1) (ब) पद 2) (क) शब्द 3) (क) विभक्ति 4) (अ) विभक्ति
5) (क) वाक्य 6) (क) आठ 7) (अ) अन्वय 8) (अ) रूप
9) (ब) संबंधतत्त्व 10) (अ) अर्थतत्त्व 11) (क) पतंजलि 12) (क) चार
13) (ब) संबंधतत्त्व 14) (अ) वर्णनात्मक रूपविज्ञान 15) (अ) संरचनात्मक रूपविज्ञान
16) (क) तीन 17) (ब) दो 18) (अ) दो 19) (क) नपुंसकलिंग
20) (ब) तीन

2.7 स्वाध्याय :

दीर्घोत्तरी प्रश्न ।

1) पदविज्ञान का स्वरूप स्पष्ट कीजिए और पद तथा संबंधतत्त्व पर प्रकाश डालिए।

2) पद की परिभाषा देकर शब्द और रूप या पद का अंतर स्पष्ट कीजिए।
3) पदविज्ञान का स्वरूप स्पष्ट करते हुए रूपविज्ञान की शाखाओं को विशद कीजिए।
4) संबंधतत्त्व के प्रकार स्पष्ट कीजिए।
5) पदविज्ञान का स्वरूप स्पष्ट कर संबंधतत्त्व के भेदों पर प्रकाश डालिए।
6) पद परिवर्तन या रूप परिवर्तन के कारण और दिशाएँ स्पष्ट कीजिए।

(आ) टिप्पणियाँ

1) पदविज्ञान
2) शब्द या पद
3) संबंधतत्त्व
4) शब्द स्थान उदाहरण के साथ
5) ध्वनि प्रतिस्थापना के भेद
6) परसर्ग
7) ध्वनिगुण
8) संबंधतत्त्व का आधिक्य
9) हिंदी में संबंधतत्त्व
10) लिंग
11) क्रिया
12) अभिहितान्वयवाद
13) अन्विताविधानवाद
14) पदक्रम
15) अन्विति या अन्वय

2.8 क्षेत्रीय कार्य :

- अन्य भाषाओं के व्याकरणिक नियमों की जानकारी लेना।
- भाषिक संरचना का अध्ययन।
- हिंदी के शब्द संसार में प्राप्त विविध शब्दों का अध्ययन।

2.9 संदर्भ ग्रंथ सूची :

1) तिवारी भोलानाथ : 'भाषाविज्ञान', इलाहाबाद, किताबमहल एजेंसी, संस्करण - 2010 ई.
2) डॉ. श्रीमाल नेमीचंद्र : 'भाषाविज्ञान', जयपुर, श्रुति पब्लिकेशन्स, संस्करण - 2008 ई.
3) त्रिपाठी राम छबीला : 'भाषा विज्ञान एवं हिंदी भाषा', इलाहाबाद, किताब महल एजेन्सी, संस्करण - 2013 ई.
4) प्रो. वंशीधर तथा शास्त्री धर्मपाल : 'सुगम हिंदी व्याकरण', शिक्षा भारती, दिल्ली. संस्करण - 2014 ई.
5) डॉ. मिश्र नरेश : 'भाषाविज्ञान एवं हिंदी', दिल्ली, राजपाल एण्ड सन्स, संस्करण - 2016 ई.

6) डॉ. पाण्डेय पृथ्वीनाथ : 'मानक सामान्य हिंदी', मेरठ, अरिहंत पब्लिकेशन्स लि.

अतिरिक्त अध्ययन के लिए :

1) डॉ. वत्स जीतेन्द्र, डॉ. सिंह देवेन्द्रप्रसाद : 'भाषाविज्ञान और हिंदी भाषा', नई दिल्ली, निर्मल पब्लिकेशन्स, संस्करण - 2009 ई.

2) तिवारी भोलानाथ : 'हिंदी भाषा', इलाहाबाद, किताब महल ऐजेंन्सी, संस्करण - 1999 ई.

3) डॉ. रामप्रकाश, डॉ. गुप्त दिनेश : 'भाषा : संरचना एवं प्रयोग', दिल्ली, राधाकृष्ण प्रकाशन,

4) तिवारी भोलानाथ : 'हिंदी भाषा की अर्थी संरचना', नई दिल्ली, राष्ट्रीय हिंदी साहित्य परिषद

5) तिवारी भोलानाथ : 'हिंदी भाषा की सामाजिक संरचना', नई दिल्ली, राष्ट्रीय हिंदी साहित्य परिषद

6) तिवारी भोलानाथ, : 'हिंदी भाषा की संधि संरचना', नई दिल्ली, राष्ट्रीय हिंदी साहित्य परिषद

7) तिवारी भोलानाथ : 'हिंदी भाषा की वाक्य संरचना', नई दिल्ली, हिंदी साहित्य परिषद संस्करण - 2

8) तिवारी भोलानाथ : 'हिंदी भाषा की रूप संरचना', नई दिल्ली, राष्ट्रीय हिंदी साहित्य परिषद

9) गुरू कामताप्रसाद : 'हिंदी व्याकरण', जयपुर, पंचशील प्रकाशन.

10) त्रिपाठी नारायण : 'अभिनव हिंदी व्याकरण', जयपुर, पंचशील प्रकाशन।

2.10 अतिरिक्त अध्ययन :

1) रुपिम की अवधारणा।
2) रूप और रूपिम।
3) रूपिम और संरूप।
4) रूपिम के भेद।
5) रूपिम के भेद और प्रकार्य।
6) वाक्य में पद का महत्त्व।

❑❑❑

इकाई : 3

वाक्य विज्ञान

अनुक्रम-रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 विषय विवरण

- वाक्य विज्ञान

  पाठ्यविषय

  3.2.1 वाक्य विज्ञान : स्वरूप

  3.2.2 वाक्य में पदक्रम

  3.2.3 वाक्य परिवर्तन के कारण

3.3 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न

3.4 शब्दार्थ, संदर्भ, टिप्पणियाँ

3.5 सारांश

3.6 स्वयं अध्ययन प्रश्नों के उत्तर

3.7 स्वाध्याय

3.8 क्षेत्रीय कार्य

3.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

3.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए

3.0 उद्‌देश्य :

प्रस्तुत इकाई पढ़ने के उपरांत आप -

- वाक्य विज्ञान के स्वरूप को जान सकेंगे।
- वाक्य के पदक्रम से परिचित हो सकेंगे।
- वाक्य परिवर्तन के कारणों को समझ सकेंगे।

3.1 प्रस्तावना :

भाषाविज्ञान के चार प्रधान अंग है - ध्वनिविज्ञान, पदविज्ञान, वाक्य विज्ञान, अर्थविज्ञान। वाक्य भाषा की सबसे स्वाभाविक, सहज इकाई है। पारस्परिक विचार-विनिमय वाक्यों द्‌वारा ही होता है, अत: वाक्य विज्ञान भाषाविज्ञान का महत्त्वपूर्ण अंग है। इसके अंतर्गत वाक्य की परिभाषा, वाक्यों की संरचना, वाक्यों के मूल आधार, वाक्यों के प्रकार, वाक्य परिवर्तन के कारण आदि का मनोवैज्ञानिक और सूक्ष्म अध्ययन होता है। वाक्य का स्वरूप क्या है? वाक्य में पदक्रम का क्या महत्त्व है? वाक्य परिवर्तन के कारण कौनसे-कौनसे है? इन प्रश्नों के संदर्भ में हम प्रस्तुत इकाई में अध्ययन करेंगे।

3.2 विषय विवरण :

3.2.1 वाक्य विज्ञान स्वरूप (Syntax) :

वाक्य भाषा की सबसे स्वाभाविक, सहज इकाई है। भाषा का कार्य विचार-विनिमय है, जिसका माध्यम वाक्य है। पारस्परिक विचार-विनिमय वाक्यों द्‌वारा ही होता है, अत: वाक्य विज्ञान भाषाविज्ञान का महत्त्वपूर्ण अंग है। भाषाविज्ञान में वाक्य के अध्ययन के विभाग को 'वाक्यविज्ञान' या 'वाक्यविचार' कहा जाता है।

इसके अंतर्गत वाक्य की परिभाषा, वाक्यों की संरचना, वाक्यों के विभिन्न भागों, वाक्यों के विभिन्न प्रकारों, वाक्य के मूल आधार, उसके आवश्यक उपकरण, वाक्यों के निकटस्थ अवयव आदि का मनोवैज्ञानिक और सूक्ष्म अध्ययन प्रस्तुत किया जाता है। यह अध्ययन करते समय भाषा में वाक्य प्रयोग की स्थिति और उसके अर्थ पर भी विचार किया जाता है। वस्तुत: विविध पदों से वाक्य का निर्माण होता है, अत: वाक्यविज्ञान के अंतर्गत वाक्य के पद-विन्यास संबंधी अध्ययन एवं विवेचन होता है।

भाषा का मुख्य कार्य भावों की अभिव्यक्ति है। भावों की पूर्ण अभिव्यक्ति वाक्य के माध्यम से होती है। वाक्य के अभाव में भाव या विचार की स्थिति संदिग्ध हो जाएगी। वास्तव में भाव मन में अव्यक्त वाक्य के रूप में विद्‌यमान होते हैं। ध्वनि-प्रतीकों या लिपिचिह्नों का आधार पाने पर वाक्य का व्यक्त रूप सामने आता है। इस प्रकार हम कह सकते है कि मनुष्य जो भी सोचता या अभिव्यक्त करता है, जो भी बोलता है, किसी भाव को हृदयगम करता है, वह सब वाक्य के ही माध्यम से होता है। भावाभिव्यक्ति के संदर्भ में वाक्य भाषा की सहज तथा प्रथम इकाई है।

वाक्य रचना का स्वरूप :

'वाक्य विज्ञान' में 'वाक्य गठन' का अध्ययन, विश्लेषण होता है। 'वाक्य विज्ञान' से तात्पर्य है - पद से वाक्य

बनाने की प्रक्रिया। यह अध्ययन तीन प्रकारों से होता है। इस प्रक्रियाओं के आधार पर तीन उपशाखाएँ बनती है। (अ) वर्णनात्मक वाक्य विज्ञान, (ब)तुलनात्मक वाक्य विज्ञान, (क) ऐतिहासिक वाक्य विज्ञान।

वर्णनात्मक भाषा विज्ञान में किसी भाषा में किसी एक काल में प्रचलित वाक्य गठन का अध्ययन किया जाता है।

तुलनात्मक वाक्य विज्ञान में दो या अधिक भाषाओं का वाक्य-गठन की दृष्टि से किए गए अध्ययन की तुलना करके साम्य और वैषम्य देखा जाता है।

ऐतिहासिक वाक्य विज्ञान में एक ही भाषा के विभिन्न कालों का अध्ययन कर वाक्य गठन की दृष्टि से उसका इतिहास प्रस्तुत किया जाता है।

वाक्य की परिभाषा :

समय समय पर विभिन्न विद्वानों ने वाक्य की परिभाषा देकर वाक्य के स्वरूप को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है। ''वाक्य को प्राय: लोग सार्थक शब्दों का समूह मानते है, जो भाव को व्यक्त करने की दृष्टि से अपने आप में पूर्ण हो।'' वाक्य की इसी प्रकार की परिभाषा कोश तथा व्याकरणों में मिलती है। युरोप में इस दृष्टि से प्रथम प्रयत्न **थ्रैक्स** ने किया है। भारत में 'पतंजलि' का नाम लिया जा सकता है। ये दोनों ही आचार्य ''पूर्ण अर्थ की प्रतीति करानेवाले शब्द समुह को वाक्य मानते है।'' ये परिभाषाएँ समझने - समझाने के लिए ठीक है, किन्तु तत्त्वत: इन्हें ठीक नहीं कहा जा सकता। थोडा ध्यान देने पर स्पष्ट होगा कि भाषा में या बोलने में वाक्य ही प्रधान है। वाक्य भाषा की इकाई है। व्याकरणकारों ने कृत्रिम रूप से वाक्य को तोडकर शब्दों को अलग-अलग कर दिया है। हमारा सोचना, बोलना या किसी बात या भाव को समझना सब कुछ 'वाक्य' में ही होता है। इस संदर्भ में डॉ. भोलानाथ तिवारी के अनुसार ऐसी स्थिति में 'वाक्य पदों या शब्दों का समूह है' कहने की अपेक्षा 'पद' या 'शब्द' वाक्यों के कृत्रिम खंड है, कहना अधिक समीचिन है।

ऊपर की दो परिभाषाओं से दो बातें सामने आती है। 1) वाक्य शब्दों का समूह है। 2) वाक्य पूर्ण होता है।

'वाक्य शब्दों का समूह है' का अर्थ है - वाक्य एक या अधिक शब्दों का होता है, पर यह बात भी पूर्णत: ठीक नहीं है। एक शब्द के भी वाक्य होते हैं। बातचीत में प्राय: वाक्य एक शब्द के होते है। छोटा बच्चा भूख लगने पर जब माँ से 'बिछकुट' (बिस्कीट) कहता है तो इस एक शब्द के वाक्य से ही वह अपना पूरा भाव व्यक्त कर लेता है। बातचीत में एक शब्द के वाक्य देखिए -

अजय - तुम घर कब आओगे?

विजय - कल। और तुम?

अजय - परसों।

विजय - और संदीप गया क्या?

अजय - हाँ।

A

इस उदा. में 'कल', 'परसों', 'हाँ' क्या वाक्य नहीं है? बातचीत में ये एक शब्द वाक्य हो गए। इसी प्रकार 'खाओं', 'जाओ', 'लिखिए', 'पढ़िए', 'चलिए' आदि विशिष्ठ संदर्भ में वाक्य होते है। खाना खाते समय कहा गया शब्द 'पानी' अपने आप में एक पूरा वाक्य है। मनुष्य की प्रयत्न लाघव की प्रवृत्ति ने छोटे-छोटे शब्दों को भी वाक्य बना दिया है। लेकिन सिद्धांतों में इन्हें वाक्य स्वीकार नहीं किया जा सकता।

कुछ प्रमुख भारतीय विद्वानों की परिभाषाएँ देख लेते हैं -

1) पतंजलि के महाभाष्य में वाक्य की परिभाषा इस प्रकार मिलती है। ''आख्यात साव्यकारक विशेषण वाक्यम्।'' अर्थात जहाँ क्रिया अव्यय, कारक तथा विशेषण पद एकत्र हो, उसे वाक्य कहते है।

2) आ. विश्वनाथ ने साहित्य दर्पण में लिखा है - ''वाक्यं स्यासद् योग्यता कांक्षासक्ति युक्त : पदोच्चय:''। अर्थात पदों का वह समूह जो योग्यता, आकांक्षा और आसक्ति से युक्त हो उसे वाक्य कहते है।

3) डॉ. भोलानाथ तिवारी ने भाषाविज्ञान में वाक्य की परिभाषा इस प्रकार की है - ''वाक्य भाषा की सहज इकाई है, जिसमें एक या अधिक शब्द हो, जो अर्थ की दृष्टि से पूर्ण हो या अपूर्ण हो या अपूर्ण व्याकरणिक दृष्टि से अपने विशिष्ठ संदर्भ में अवश्य पूर्ण होती है।'

4) हिंदी के प्रसिद्ध वैयाकरण **पं. कामताप्रसाद गुरू** ने हिंदी व्याकरण में वाक्य की परिभाषा इस प्रकार दी है - ''प्रत्येक पूर्ण विचार को वाक्य और भावना को शब्द कहते है।''

5) आ. देवेन्द्रनाथ शर्मा के अनुसार, ''भाषा की न्यूनतम पूर्ण सार्थक इकाई वाक्य है।''

डॉ. देवेन्द्रनाथ शर्मा ने ध्वनि, पद और वाक्य के आपसी संबंधों को रेखांकित करते हुए कहा है - ''वाक्य पूर्णत: मानसिक या मनोवैज्ञानिक तत्त्व है। उसमें पदों का प्रयोग भाव या विचार के अनुसार होता है। पद, ध्वनि और वाक्य के बीच की संयोजक कडी है, क्योंकि उच्चारण और सार्थकता दोनों का योग रहता है, किन्तु न तो ध्वनि की तरह वह केवल उच्चारण है और न वाक्य ती तरह पूर्णत: सार्थक।

मीमांसको के अनुसार वाक्य की परिभाषा :

1) अभिहितान्वयवाद : इस वाद के प्रवर्तक आचार्य कुमारिल भट्‌ट है। मीमांसकों में पद और वाक्य को लेकर विवाद रहा है। कुमारिल भट्‌ट के अनुसार वाक्य में पद की सत्ता प्रधान मानी जाती है, पदों के मिलने से ही वाक्य बनता है। अत: पदों या शब्दों का समूह ही वाक्य है। पद के अतिरिक्त वाक्य का कोई महत्त्व नहीं है।

2) अन्वितामिधानवाद : इस वाद के प्रवर्तक आचार्य प्रभाकर गुरू है। ये आचार्य कुमारिल भट्‌ट के शिष्य है। इस वाद के अनुसार वाक्य की ही सत्ता मुख्य है। वाक्य को तोडने से पद बनते हैं। इस प्रकार इस वाद में वाक्य को महत्त्व दिया गया है। अभिहितान्वयवाद को 'पदवाद' और अन्वितामिधानवाद को 'वाक्यवाद' कह सकते है।

वाक्यवाद के अनुसार पदों की अलग से सत्ता नहीं है। वे वाक्य के ही अंग है। अत: वाक्य ही भाषा की सार्थक इकाई है।

आधुनिक भाषा विज्ञानिकों में ब्लूमफील्ड , लियोन्स, रोबिन्स आदि वाक्यवाद के ही समर्थक है।

आचार्य भतृहरि : इन्होंने भी वाक्यवाद का समर्थन किया है - 'पदे न वर्णा विद्यन्ते वर्णेषु अवयवा न च। वाक्यांत् पदानामत्यन्तं प्रविवेको न कश्चन॥'

अर्थात पदों में वर्णो की स्वतंत्र सत्ता नहीं है और न वर्णो में अवयवों की। काव्य के अतिरिक्त पदों की कोई स्वतंत्र सत्ता नहीं है।

विचार करने से मालुम होता है कि लगभग सभी भाषाविज्ञानकों ने वाक्य को पूर्ण तथा स्वतंत्र व्याकरणिक इकाई माना है। वस्तुत: भाषा का मुख्य कार्य विचार की अभिव्यक्ति है। विचार की अभिव्यक्ति वाक्य द्वारा ही संभव है। विचार और वाक्य में पारस्परिक संबंध है। बिना वाक्य के विचार का अस्तित्व न के बरोबर है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते है कि वाक्य की अवस्था विचार है। मनुष्य का सोचना, बोलना, समझना आदि सब वाक्यों में ही होता है। विचारों की अभिव्यक्ति एक शब्द के वाक्य से भी हो सकती है और अनेक शब्दों के वाक्य से भी हो सकती है।

प्रसिद्ध भाषा वैज्ञानिक सौस्यूर ने कहा है कि लोकोक्तियाँ जैसे हाथ धोकर पीछे पडना, लोहे के चने चबाना, 'ऊँट के मुंह में जीरा' आदि भी पूर्ण वाक्य है।

पाश्चात्य विद्वानों की परिभाषा :

पाश्चात्य विद्वानों में अरस्तू के अनुसार, "A sentence is a composite significant sound of which certain parts of themselves signify themselves for every sentences is composed from nouns and verbs, but there may be sentence without verb." अर्थात - ''वाक्य सार्थक ध्वनियों का समूह है, जिससे किसी भाव की अभिव्यक्ति होती है। प्रत्येक वाक्य संज्ञा और क्रिया से बनता है, किन्तु क्रिया के बिना भी वाक्य रचना हो सकती है।

1) ब्लूमफील्ड : ''वाक्य एक स्वतंत्र रूप है जो किसी भी व्याकरणात्मक रचना के कारण किसी भी बृहत्तर भाषात्मक (आकृति) में अन्त: निविष्ट नहीं होता।'' जैसे - रोहित हॉकी में भाग नहीं लेगा, कल कौन दिन पडेगा। दोनों वाक्य स्वतंत्र इकाई के उदा. है।

2) जान लियोन्स : ''वाक्य व्याकरण - वर्णन की सबसे बड़ी इकाई है।''

3) आर. एच. रोबिन्स : ''वाक्य वह वाक्खंड है, जिसका उच्चारण परिपूर्ण अतुलनीय लय के साथ किया जा सकता है।''

संक्षेप में हम कह सकते है कि वाक्य वह है जो शब्द रूप में पूर्ण उच्चार है। इस प्रकार विभिन्न विद्वानों ने अपने-अपने विचारों के आधार पर वाक्य की परिभाषा देकर वाक्य के स्वरूप को स्पष्ट किया है। वस्तुत: वाक्य की कोई ऐसी परिभाषा दे पाना काफी कठिन है, जो दुनिया की सारी भाषाओं पर लागू हो। कामचलाऊ परिभाषा कुछ इस प्रकार

की हो सकती है - ''वाक्य भाषा की वह सहज इकाई है, जिसमें एक या अधिक शब्द (पद) होते है तथा जो अर्थ की दृष्टि से पूर्ण हो या अपूर्ण, व्याकरणिक दृष्टि से अपने विशिष्ठ संदर्भ में अवश्य पूर्ण होती है, साथ ही उसमें प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से कम से कम एक समायिक क्रिया अवश्य होती है।''

इस परिभाषा में कुछ बातें ध्यान देने योग्य है। वे इस प्रकार हैं।

क) वाक्य भाषा की सहज इकाई है। :

भाषा की लघु, छोटी इकाई ध्वनि है, क्योंकि ध्वनियों के योग से शब्द बनते हैं और शब्दों के योग से वाक्य, किन्तु भाषा की सहज इकाई वाक्य है। रूप, शब्द, अक्षर, ध्वनि आदि इकाईयाँ उसकी तुलना में कृत्रिम है तथा भाषा विश्लेषण के बाद इनकी खोज हुई है।

आधुनिक भाषाविज्ञान में भी अन्विताभि धानवाद (वाक्यवाद) के ही समान वाक्य भाषा की सर्वप्रथम इकाई के रूप में विवेचन किया जाता है। उसके पश्चात पद और ध्वनि का अध्ययन होता है। इस मत के अनुसार वाक्य भाषा की वास्तविक इकाई है। अन्य इकाईयाँ काल्पनिक है। मनोवैज्ञानिक चिंतन करने से यह तथ्य तर्क संगत लगता है कि विचार एक अखंड भाव - प्रवाह है, जो किसी प्रकार बाधित नहीं होता है। ऐसी अभिव्यक्ति मात्र वाक्य से ही संभव है, अन्य इकाईयों से नहीं। इस प्रकार हम कह सकते है कि मानव - मन में वाक्य अव्यक्त रूप में विद्मान होते है, ध्वनि-प्रतीकों या लिपि-चिह्नों का आधार पाने पर वे व्यक्त रूप में सामने आते है। भावाभिव्यक्ति के संदर्भ में वाक्य भाषा की सहज और प्रथम इकाई है।

प्राचीन भारतीय भाषा - चिंतन के आधार पर ध्वनि भाषा की लघुत्तम इकाई थी। आधुनिक भाषा चिंतन में **भावाभिव्यक्ति** को सर्वाधिक महत्त्व देने के कारण वाक्य भाषा की प्रथम इकाई सिद्ध हुई। भाषा को भावाभिव्यक्ति का साधन कहते है, अत: उक्त विचार तर्कसंगत लगता है। बच्चा भाषा-प्रयोग के प्रारंभिक चरण में वाक्य का ही प्रयोग करता है। ऐसे क्षण बच्चे के मन में विचार-प्रवाह चलता रहता है। प्रारंभ में इस विचार-प्रवाह का वाक्यात्मक रूप मात्र एक ध्वनि के रूप में प्रकट होता है। बच्चा अपने परिवेश के निकट के व्यक्ति या व्यक्तियों द्वारा प्रयुक्त भाषा की सरल ध्वनि को अपनाता है।

भूख लगने पर बच्चा 'आ' ध्वनि निकालता है। बच्चे की इस ध्वनि का वाक्यात्मक स्वरूप होगा - आओ, भूख लगी है, दूध दे दो। श्रोता ध्वनि के संदर्भ में उसका वाक्यात्मक रूप पूरी तरह समझ जाता है। संदर्भ - ज्ञान के अभाव में बच्चे के मन का विचार या ध्वनि का वाक्यात्मक रूप समझना कठिन हो सकता है, किन्तु संदर्भ से जुड जानेपर सहज ज्ञान हो जाता है।

बुद्धि - विकास - क्रम में बच्चा भाषा - अर्जन के माध्यम से शब्दों के अशुद्ध रूप का प्रयोग करने लगता है। उसके उच्चारण की विशेष प्रक्रिया में भी वाक्यात्मक रूप छिपा होता है, जो संदर्भ से पता लग जाता है। उदा. देखिए-
1) बच्चे का वाक्य - 'पा' / संदर्भ - विशेष - 'प्यास की स्थिति' / सामान्य वाक्य रूप - 'मुझे प्यास लगी है।'

2) बच्चे का वाक्य - 'हप्पा' / संदर्भ - विशेष - भूख की स्थिति / सामान्य वाक्य रूप - 'भूख लगी है। मुझे खाना दो।'

जब बालक एक-एक शब्द का शुद्ध उच्चारण करने लग जाता है, तब वाक्य का एकपदीय रूप सामने आ जाता है। जैसे - प्यास लगने पर बालक के वाक्य का एकपदीय रूप - 'पानी' / मैं पापा के साथ जाऊँगा, इस संदर्भ में बालक के वाक्य का एकपदीय रूप - 'पापा' आदि।

ख) वाक्य में एक शब्द (पद) भी हो सकता है और एक से अधिक भी :

प्राय: भाषा में एक से अधिक शब्द होते हैं, किन्तु बातचीत में प्राय: वाक्य एक शब्द के भी होते हैं। विशिष्ठ संदर्भ में 'हाँ', 'जाओ', 'बैठो', 'लिखो', 'नहीं' वाक्य ही है। ये 'एक शब्दीय वाक्य पूरे वाक्य के अन्य शब्दों के लोप से बने होते है।

ग) वाक्य में अर्थ की पूर्णता हो सकती है और नहीं भी :

अर्थ की पूर्णता वाक्य में हो भी सकती है। जैसे -

1) दो और दो चार होते हैं।

2) सूरज पश्चिम में डूबता है।

अर्थ की पूर्णता वाक्य में नहीं भी। जैसे -

1) उसने उससे कहा था।

2) उस समय वह भी गायब था।

ये दो वाक्य है, परन्तु अर्थ की दृष्टि से ये स्पष्ट और अपूर्ण है। इस तरह वाक्य के लिए आर्थिक पूर्णता आवश्यक नहीं है।

घ) वाक्य व्याकरणिक दृष्टि से पूर्ण होता है :

व्याकरण की पूर्णता अर्थ की पूर्णता से भिन्न होती है। व्याकरण की पूर्णता का अर्थ है - विशिष्ठ संदर्भ में वाक्य के लिए व्याकरण की दृष्टि से अपेक्षित सभी पदों अथवा शब्दों का होना। ऊपर के उदा. 'उसने उससे कहा था।' 'उस समय वह भी गायब था।' आदि वाक्य अर्थ की दृष्टि से पूरी बात का बोध कराने में असमर्थ होते हुए भी व्याकरण की दृष्टि से पूर्ण है, क्योंकि उनमें कर्ता, कर्म, क्रिया आदि अपेक्षित सभी क्रम से है। इस प्रकार की व्याकरण की पूर्णता सभी वाक्यों के लिए आवश्यक है।

ड) व्याकरणिक पूर्णता कभी - कभी संदर्भ पर भी निर्भर करती है :

कभी तो वाक्य व्याकरणिक दृष्टि से पूर्ण होते है, किन्तु कभी-कभी बोलचाल में, साहित्यिक रचनाओं में कथोपकथन आदि में व्याकरण की दृष्टि से अपेक्षित सारे शब्द नहीं होते। वे लुप्त रहते है। ऐसे वाक्यों की व्याकरणिक पूर्णता संदर्भ विशेष पर निर्भर रहती है। पाठक संदर्भ लेकर उनके लुप्त शब्दों को जोडकर अर्थ को समझ लेता है।

उदा. **अभय -** तुमने चाय पी ली?

आकाश - नहीं। और तुमने?

अभय - हाँ।

इस उदा. में 'नहीं', 'तुमने', 'हाँ' तीनों वाक्य हैं। यहाँ 'नहीं' का संक्षेप है - मैंने चाए नहीं पी। वैसे 'तुमने' का संक्षेप है - क्या तुमने चाए पी ली? और 'हाँ' का संक्षेप है - हाँ, मै ने चाए पी ली।

जिन वाक्यों की व्याकरणिक पूर्णता संदर्भ पर निर्भर करती है, उनमें कभी-कभी क्रिया नहीं भी होती। ऊपर के उदा. में 'नहीं', 'तुमने', 'हाँ' इन तीनों में क्रिया प्रत्यक्ष रूप से नहीं है, लेकिन बिना क्रिया की कल्पना किए इन वाक्यों को समझा नहीं जा सकता। क्रिया की कल्पना करके ही इनको समझा जा सकता है। क्रिया की कल्पना का संदर्भ से अनुमान लगाया जाएगा। इस तरह व्याकरण की पूर्णता संदर्भ पर निर्भर होती है।

वाक्य की आवश्यकताएँ, वाक्य के मूलाधार अनिवार्य तत्त्व :

भारतीय आचार्यों एवं भाषा - वैज्ञानिकों ने समय - समय पर वाक्य के अनिवार्य तत्त्वोंपर विचार किया है। भारतीय दृष्टि से वाक्य के लिए 5 बातें आवश्यक है - सार्थकता, योग्यता, आकांक्षा, सन्निधि और अन्विति। आचार्य कुमारिल भट्ट ने काव्य के तीन अनिवार्य तत्त्व बताए हैं - आकांक्षा, योग्यता और आसक्ति। आचार्य विश्वनाथ ने भी साहित्य दर्पण में इन्हीं तीन अनिवार्य तत्त्वों की ओर संकेत किया है। ''वाक्यं स्याद् योग्यताकांक्षासत्ति युक्तः पदोच्चयः।''

1) योग्यता : वाक्य के संबंध में योग्यता का अर्थ है - अर्थ की दृष्टि से एक पद का दूसरे पद के साथ संबंध भाव में बांधा न होना। डॉ. भोलनाथ तिवारी के अनुसार योग्यता का आशय यह है कि शब्दों की आपस में संगति बैठे। शब्दों में प्रसंगानुकूल भाव का बोध कराने की योग्यता या क्षमता हो। जब कोई वाक्य व्याकरण की दृष्टि से योग्य हो, किन्तु अर्थ की दृष्टि से अनुपयुक्त हो, तो वह वाक्य नहीं होगा। जैसे - 'वह पेड के पत्थर से सिंचता है।' वाक्य में शब्द तो सार्थक है, किन्तु पत्थर से सिंचता नहीं होता, इसीलिए यह वाक्य अर्थ की दृष्टि से अयोग्य है, क्योंकि पत्थर से सिंचन का कार्य नहीं होता है। सिंचन का कार्य पानी से होता है। ''वह पानी खा रहा है'' ये वाक्य व्याकरण की दृष्टि से योग्य है, किन्तु अर्थ की दृष्टि से अयोग्य है, क्योंकि पानी खाया नहीं जाता। पानी पिया जाता है। दोनों में शब्दों की परस्पर योग्यता की कमी है, इसलिए यह सामान्य अर्थ में वाक्य नहीं है। ऊपर के दोनों पद समूह तभी वाक्य की योग्यता प्राप्त कर पाएँगे जब वे इन रूपों में होंगे - वह पेड को पानी से सिंचता है। वह पानी पी रहा है। इनमें शब्दों की आपस में संगति है। शब्दों में प्रसंगानुकूल भाव का बोध कराने की योग्यता या क्षमता होती है। ऐसे वाक्यों को ही समाज की मान्यता होती है। संक्षेप में, शब्दों में भाव या विचार को प्रकट करने की योग्यता होनी चाहिए।

2) सार्थकता : सार्थकता का अर्थ यह है कि वाक्य के शब्द सार्थक होने चाहिए। वाक्य का उद्देश्य है - पूर्ण और सार्थक अभिव्यक्ति। वाक्य की सार्थकता का अर्थ है - वाक्य में प्रयुक्त सभी शब्दों और पदों का सार्थक रूप में प्रयोग; जैसे - ''गाय को गो माता कहते है'' में सार्थकता है।

3) आकांक्षा : इसका अर्थ है - 'इच्छा', 'अपेक्षा' या जिज्ञासा की असमाप्ति। वाक्य में शब्द या पद एक दूसरे से संबंधित होते हैं। यह संभव भाव वाक्य के आकांक्षा तत्त्व के ही कारण संभव होता है। वाक्य में प्रयुक्त शब्दों

की अर्थ अभिव्यक्ति के संदर्भ में एक - दूसरे की अपेक्षा रहती है। मानक हिंदी में कर्ता + क्रम + क्रिया का क्रम से प्रयोग होता है। वाक्य में इनको एक -दूसरे की अपेक्षा होती है। कर्ता को कर्म और क्रिया की अपेक्षा होती है। वैसे कर्म और क्रिया को भी अपेक्षा होती है। इसी अपेक्षा पूर्ति पर ही वाक्य की संरचना और अर्थ की अभिव्यक्ति संभव है। इस प्रकार आकांक्षा अपूर्ण होगी तो वाक्य भी अपूर्ण होता है। जैसे - 'लता' कहने से वाक्य पूरा नहीं होता है। यहाँ मन में यह जानने की इच्छा होती है कि वह क्या करती है, या क्या करेगी? 'गाती है' कहेंगे तो कर्ता-संबंध में यह जिज्ञासा होती है कि वह क्या गायेंगी? इसी प्रकार 'गीत' कहने से कर्ता + क्रिया के विषय में जानने की इच्छा होती है। ऊपर के तीनों पदों - लता / गीत / गाती है, में शब्द या पद एक - दूसरे से संबंध भाव से जुड गए। अपेक्षा पूर्ण होने से ''लता गीत गाती है।'' पूर्ण वाक्य की संरचना हो गयी।

''तुम मेरे लिए''.... यहाँ पूर्ण भाव प्रकट नहीं होता है। इसमें इच्छा शेष रह जाती है, इसीलिए इसे वाक्य नहीं मान सकते। इच्छा या आकांक्षा पूर्ण होने के लिए 'दवा लाओ' पदों या वाक्यांश को जोड देने पर वाक्य संरचना पूर्ण हो जाती है। वाक्य की आकांक्षा के संदर्भ में कभी-कभी विशेष संरचना सामने आती है, जिसमें लेखक वाक्य का कुछ अंश पाठक या श्रोता के परिचित संदर्भ के लिए छोड देता है। श्रोता या पाठक उसे भाव वेग से पूरा करता हुआ आकांक्षा को पूर्ण करता है।

4) सन्निधि या आसक्ति : इसका शाब्दिक अर्थ है - समीपता। वाक्य में प्रयुक्त शब्दों या पदों का एक विशेष अंतर और क्रम से प्रयोग होना चाहिए। 'अमरकलगाव जाना है' यहाँ सार्थकता अस्पष्ट है। इसे इस तरह लिखने पर 'अमर कल गाँव जाना हैं।' सार्थकता स्पष्ट होगी। इस तरह वाक्य के विभिन्न पदों का एक विशेष अंतर होना आवश्यक है। वाक्य के शब्द समीप होने चाहिए। यदि एक शब्द आज कहा जाए, दूसरा शाम, तिसरा दूसरे दिन तो उसे वाक्य नहीं कहा जाएगा।

5) अन्विति : इसका अर्थ है व्याकरणिक दृष्टि से एकरूपता। अंग्रेजी में इसे concordance कहते हैं। इसके अनुसार वाक्य के विभिन्न पदों में वचन, लिंग, पुरुष आदि संदर्भो में समानता होनी चाहिए। डॉ. भोलानाथ तिवारी के अनुसार वाक्य में दो या दो से अधिक पदों की आपसी एकरूपता को अन्वय कहते हैं। विभिन्न भाषाओं में इसके विभिन्न रूप मिलते हैं। यह समानरूपता प्राय: वचन, कारक, लिंग और पुरुष आदि की दृष्टि से होती है। हिंदी में क्रिया प्राय: लिंग, वचन, पुरुष में कर्ता के अनुकूल होती है।

'सीता गए', 'राम जा रही है।' ये दोनों ठीक वाक्य नहीं है। क्योंकि यहाँ न तो 'सीता' और 'गए' में अन्विति है और न 'राम' और 'जा रही है' में।

अंग्रेजी में क्रिया पुरुष, वचन की दृष्टि से कर्ता के अनुसार होती है, किन्तु लिंग की दृष्टि से नहीं। जैसे - Ram goes, Sita goes आदि।

इसके लिए अन्वय शब्द का भी प्रयोग होता है। अन्वय का विचार कर्ता - क्रिया, विशेषण - विशेष्य, सर्वनाम- संज्ञा संबंधों में कर सकते हैं।

1) कर्ता और कर्म से निरपेक्ष क्रिया : जब कर्ता और कर्म दोनों के साथ कारक चिह्न हो, तो क्रिया सदा पुल्लिंग एक वचन में होती है; जैसे - 'लडकी ने लडके को देखा', 'लडके ने लडकी को देखा।'

2) सर्वनाम संज्ञा का अन्वय : सर्वनाम सदा उसी संज्ञा के लिंग, वचन का अनुसरण करता है, जिसके स्थान पर प्रयुक्त हो, जैसे - वह (आशा) घर जाती है। वह (मनोज) बंबई से आ रहा है।

आदरसूचक वाक्य में सर्वनाम और क्रिया शब्द बहुवचन हो जाते हैं; जैसे - गुरू जी आ रहे हैं। वे संस्कृत पढाएंगे।

3) कर्ता - क्रिया अन्वय : यदि कर्ता के साथ कारक चिह्न प्रयुक्त न हो, तो क्रिया कर्ता के अनुसार होगी। जैसे - 'लडकी आम खाती है।', 'लड़का इमली खाता है।'

कर्ता आदरसूचक हो, तो क्रिया बहुवचन होगी, जैसे - महात्मा गांधी अहिंसा के पुजारी थे। पिताजी जा रहे हैं।

कर्ता के साथ में,को, से आदि लगने पर क्रिया का अन्वय नहीं होगा, जैसे - सूरज ने रोटी खा ली, बालिका को जाना है।

वाक्य रचना के आधार या वाक्य में पद विन्यास की विशेषताएँ :

भारतीय आचार्यों ने वाक्य में आकांक्षा, योग्यता और आसक्ति आदि गुणों का होना अनिवार्य बताया है। पाश्चात्य भाषावैज्ञानिकों ने वाक्य में वाक्य रचना के आधार या वाक्य में पदविन्यास संबंधी तीन विशेषताओं का उल्लेख किया है - 1) चयन, 2) क्रम या पदक्रम, 3) परिवर्तन।

1) चयन : वाक्य रचना करते समय सबसे पहले पदों का चयन करना होता है। अर्थ और रूप दोनों ही दृष्टियों से पद का चयन अपेक्षित है।

अर्थ की दृष्टि से चयन : एक ही अर्थ के वाचक अनेक पद होते हैं। उनमें किसका प्रयोग किया जाए? वाक्य का संबंध मनोविज्ञान से है और मनोविज्ञान का अर्थ से अर्थात वक्ता क्या कहना चाहता है इससे। दूसरे शब्दों में हम कह सकते है कि अर्थ की दृष्टि से वाक्य में कौनसा शब्द या पद उपयोग का है, उसका प्रयोग करना चाहिए। सामान्यत: एक अर्थ के वाचक अनेक पर्याय होते हैं। उदा. स्त्री के अनेक पर्याय हैं - नारी, महिला, अबला, वामा, रमणी आदि। किन्तु पर्याय होनेपर भी इनमें छाया का भेद है। नारी का वही अर्थ नहीं है, जो अबला का है। 'नारी' में नर की संगिनी का भाव है, किन्तु अबला में बलहीनता का। वामा से वक्रता स्पष्ट होती है। रमणी से रम जाने की स्पष्टता होती है। वाक्य में प्रयोग करते समय इस विशेषता पर ध्यान रखना आवश्यक है, नहीं तो वक्तव्य में जो सूक्ष्मता लानी अपेक्षित होती है, उससे बाधा पडती है।

वायु, हवा, समीर, प्रभंजन आदि शब्द यद्यपि पर्यायवाची माने जाते हैं, किन्तु इनमें सूक्ष्म अर्थभेद मौजूद है। वायु की व्याप्ति व्यापक है, हवा की व्याप्ति सीमित है, समीर हवा का हल्का अहसास है और प्रभंजन तोडती-फोडती हुई हवा की गति है। साइकिल की पहिया में वायु भर दो नहीं कहा जाता, बल्कि 'साइकिल' की पहिया में हवा भर

दो' कहते है। इस तरह अर्थ की दृष्टि से चयन का संबंध मनोविज्ञान और भाव की सूक्ष्मता से है।

रूप की दृष्टि से चयन : चयन का दूसरा पक्ष रूप का है। उपर्युक्त स्त्रीवाची प्रत्येक शब्द के कारक, वचन आदि के अनुसार अनेक रूप हो जाते है। सभी रूप सर्वत्र उपयुक्त नहीं हो सकते; जैसे 'नारी का पढती है' में 'नारी का' का प्रयोग गलत है। क्योंकि 'पढती है' क्रिया से उसकी अन्विति नहीं हो सकती। 'नारी' पद के विभिन्न कारकों के प्राय: दो दर्जन रूपों में यह देखना पडेगा कि उसी प्रसंग में किसका प्रयोग सार्थक होगा।

रूप की दृष्टि से चयन का आधार योग्यता है। कहाँ किस पद का प्रयोग उचित होगा, इसका निर्णय योग्यता की कसौटी पर ही होता है। उदा. 'न' निषेधवाचक पद है, किन्तु 'मैंने न देखा', यहाँ 'न' का प्रयोग नहीं हो सकता। यहाँ 'मैंने नहीं देखा' यही कह सकते है, किन्तु 'मैंने न देखा', 'न सुना', इसमें 'न' बिलकुल असंगत है। यहाँ मैंने नहीं देखा', 'नहीं सुना' यही वाक्य संगत है।

उसी तरह 'जाती है' क्रिया के साथ किसी स्त्रीलिंग एक वचन की ही स्थिति हो सकती है। व्याकरण की दृष्टि से 'राम की' पदबन्ध के साथ कोई स्त्रीलिंग शब्द ही आ सकता है; जैसे - 'राम की पुस्तक', 'राम की आदत'। 'राम की घट' नहीं हो सकता। इसी प्रकार 'न' और 'नहीं' दो निषेधवाचक रूपांश है। दोनों के प्रयोगों में भी चयन की जरुरत पडती है; जैसे - 'राम नहीं जाएगा', 'राम न जायेगा'। इन दोनों वाक्यों में प्रयोग की दृष्टि से प्रथम वाक्य सही है, दूसरा नहीं। जहाँ दो क्रियाओं के साथ दोहरी निषेधात्मकता होती है, वहाँ न का प्रयोग आवश्यक होता है, जैसे - 'राम न तो पढता है और न कोई काम करता है।

2) क्रम या पदक्रम : वाक्य में पदक्रम का महत्त्व बड़ा होता है। पदक्रम का अर्थ यह है कि किस पद के बाद कौन पद रहे। जिस किसी पद को जहाँ - कहीं नहीं रख सकते। पदक्रम की कोई एक और निश्चित पद्धति नहीं है। सभी भाषाओं का पदक्रम एक नहीं होता।

ऐसा समझा जाता है कि हिंदी, अंग्रेजी आदि का पदक्रम निश्चित होता है। संस्कृत, रूसी आदि का पदक्रम स्वतंत्र होता है, लेकिन यह सर्वथा मान्य नहीं है। किसी भाषा का पदक्रम न तो बिल्कुल निश्चित होता है और न पूर्णत: स्वतंत्र। पदक्रम का निर्धारक व्याकरण और मनोविज्ञान भी होता है। मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं से प्रेरित होकर पदक्रम में परिवर्तन करना पडता है। वस्तुत: व्याकरण के नियम भी मूलत: मनोविज्ञान से ही निर्मित होते हैं।

पदक्रम में वैसे सभी पदों का ध्यान रखना होता है, किन्तु प्रधानता कर्ता + कर्म + क्रिया की होती हैं। हिंदी के पदक्रम में पहले **कर्ता** फिर **कर्म** बाद में क्रिया का स्थान होता है; जैसे -

शाम पुस्तक पढ़ता है।
शरद पानी पीता है।

इन दोनों वाक्यों में क्रमश: कर्ता, कर्म क्रिया का प्रयोग है। इसके विरुद्ध अंग्रेजी में कर्ता के बाद क्रिया आ जाती है और उसके बाद कर्म; जैसे -

Sham reads the book.

Sharad drink water.

अंग्रेजी में हिंदी के अनुसार Sham the book reads या Sharad water drink नहीं कह सकते।

संस्कृत में क्रम का बंधन नहीं है; जैसे -

स: पुस्तकं पठति।
पुस्तक स: पठति।
पठति स: पुस्तकम।
पठति पुस्तकं स:।

आदि के अनेक रूप पाए जाते हैं। शब्दों के साथ विभक्यिों का प्रयोग न होने से यह निश्चय करना कठिन हो जाता है कि वहाँ किस विभक्ति का रूप अपेक्षित है। ऐसी स्थिति में यदि क्रम निश्चित न रहे तो कुछ का कुछ अर्थ हो सकता है। 'साँप मेंढक खाता है' और मेंढक साँप खाता है' में कर्तृत्व का निर्णय पदक्रम से ही होता है। क्रम उलट जाने पर कर्ता, कर्म हो जाता है और कर्म कर्ता। अंग्रेजी के वाक्य में भी यही स्थिति होती है। इसीलिए ऐसी भाषाओं में पदक्रम का व्याकरणिक महत्त्व हो जाता है। संस्कृत, रुसी जैसी योगात्मक भाषाओं में विभक्तियाँ शब्दों के साथ लगी रहती है, इसीलिए वाक्य में कहीं भी आनेपर उनका अर्थ और व्यापार निश्चित रहता है। यही कारण है कि पदक्रम बदल देने पर भी अर्थ नहीं बदलता।

पदक्रम के दो प्रमुख अपवाद है - **बल** और **छन्द**। बल देने की इच्छा से पदक्रम में परिवर्तन हो जाता है और बल का अर्थ है कि वक्ता वाक्य में किस अंश को प्रधानता देना चाहता है; जैसे - स्वाभाविक पदक्रम के अनुसार वाक्य होगा - 'मैंने रोटी खायी है', किन्तु यदि 'रोटी' पर बल देना है तो यह वाक्य 'रोटी मैंने खायी है' इस रूप में होगा। इसी तरह अंग्रेजी में I must go के go पर बल देने से Go I must बोलते हैं। इस तरह का क्रम परिवर्तन बल देने की भावना से प्रेरित होता है।

पदक्रम के परिवर्तन का दूसरा आधार है - छन्द। छन्द में मात्रा, लय और तुक की मांग पूरी करनी होती है और वह पदों के स्वाभाविक क्रम में सदा संभव नहीं होती, इसीलिए सभी भाषाओं के पद्य में पदक्रम की उपेक्षा पायी जाती है।

संस्कृत, रुसी भाषाओं में भी पदक्रम का बिल्कुल महत्त्व नहीं है, ऐसा नहीं कहा जा सकता। पदक्रम स्वतंत्र रहने पर भी यदि किसी पद पर बल देना है तो उसका प्रयोग प्रारंभ में होता है। स्वाभाविक वाक्य होगा - 'बालक: मोदकं खादति' यहाँ मोदक पर बल देना है तो - 'मोदकं बालक: खादति' यही कहेंगे।

3) परिवर्तन : वाक्य में परिवर्तन दो प्रकार से होता है। 1) ध्वनिपरिवर्तन, 2) स्वरपरिवर्तन।

दो ध्वनियाँ जब एक - दूसरी के निकट आती है तो परस्पर प्रभावित होकर परिवर्तित हो जाती है। इस परिवर्तन

को ही सन्धि कहते है। सन्धि का संबंध ध्वनि से है; जैसे - 'कब तक आवोगे?' वाक्य के प्रवाह में इस वाक्य के पद - 'कप्तकाओगे' के रूप में सुनाई पडते हैं। इसी तरह 'चोर ले गया' - चोल्लेगया, 'चाय गरम - चारम', 'रख दीजिए - रद्धीजिए'।

परिवर्तन का संबंध ध्वनि के अतिरिक्त स्वर से भी है। वाक्य में स्वर के आरोह, अवरोह या तान की सहायता लिए बिना काम नहीं चलता। आरोह अवरोह, तान आदि हमारी मनोवृत्ति के व्यंजक तत्त्व हैं , और वे भाषा को हमारी मनोवृत्ति के अनुकूल रूप देकर सजीव बनाते है। उदा. 'न' का अर्थ निषेध है, किन्तु 'मैंने आपको कहा था न?' यहाँ 'न' निषेधवाचक न होकर विधिवाचक हो या है। यह अर्थभेद वाक्य में उसके स्थान और स्वर के कारण ही है।

वाक्य के अंग :

भारत -युरोपिय परिवार की भाषाओं में वाक्य के दो मुख्य अंग या अवयव पाए जाते हैं - 1) उद्‌देश्य, 2) विधेय।

उद्‌देश्य : वाक्य में जिस वस्तु के विषय में कुछ कहा जाए, उसके बोधक शब्द को उद्‌देश्य कहते हैं। जैसे - 'लडका पढ़ता है', 'घोडा दोड़ता है' इन वाक्यों में 'लड़का' और 'घोड़ा' उद्‌देश्य है।

विधेय : उद्‌देश्य के विषय में जो कुछ कहा जाए, उसके बोधक शब्द को विधेय कहते है; जैसे - उपर्युक्त वाक्यों में 'पढ़ता है', 'दोड़ता है' विधेय है।

इन दोनों का सम्यक अध्ययन वाक्य विज्ञान के अंतर्गत किया जाता है, जिससे वाक्य की संरचना और उसके अर्थ-विशेष को समझने में सरलता रहती है।

वाक्य के भेद या प्रकार :

संसार की अधिकतम भाषाओं में आकृति के अनुसार दो प्रकार के वाक्य मिलते है। यथा - अयोगात्मक और योगात्मक।

1) अयोगात्मक वाक्य : अयोगात्मक वाक्य में शब्द अलग - अलग रहते है और उनका स्थान निश्चित रहता है। इसका कारण यह है कि यहाँ संबंध तत्त्व दिखाने के लिए शब्दों में कोई परिवर्तन नहीं किया जाता, अत: संबंध का प्रकटीकरण शब्दों के स्थान से ही होता है। यह पदक्रम की निश्चितता एकाक्षर परिवार की चीनी आदि भाषाओं में प्रधान रूप से मिलती है।

Mohan killed Sohan.

Sohan killed Mohan.

यहाँ दोनों में शब्द एक ही है, किन्तु स्थान-परिवर्तन से अर्थ उलटा हो गया है। हिंदी में भी लगभग यही बात है। एक और उदा. देखिए -

मैं मारता हूँ, तुम्हें।

तुम मारते हो मुझे।

स्थान भेद से यहाँ अर्थ बदल जाता है।

2) योगात्मक : योगात्मक वाक्य तीन प्रकार के होते हैं - प्रश्लिष्ट, अश्लिष्ट, श्लिष्ट.

प्रश्लिष्ट योगात्मक वाक्यों में अनेक शब्दों अथवा अर्थतत्त्वों का थोडा-थोडा अंश कहता हुआ चला जाता है और बाद में एक शब्द का निर्माण हो जाता है जो पूरे वाक्य का काम देता है। यथा - पिपठिषामि - मैं पढना चाहता हूँ।

अश्लिष्ट योगात्मक वाक्यों में शब्द और अर्थतत्त्व के साथ प्रत्यय या विभक्ति का योग होता है और वह योग स्पष्ट दिखाई देता है। यथा - हिंदी, अंग्रेजी के वाक्य इसी प्रकार है - मैंने कई पुस्तकें पढीं। I read many books.

श्लिष्ट योगात्मक वाक्यों में संबंधतत्त्व को जोडने के कारण अर्थतत्त्व वालें भाग में कुछ विकार उत्पन्न हो जाता है, फिर भी अर्थतत्त्व और रचनातत्त्व को पहचानने में कठिनाई नहीं होती। यथा- पठाम्यहम् = पठामि + अहम् वाक्यों के भेद मुख्य रूप से पाँच आधारों पर किए जाते हैं -

1) क्रिया के आधार पर

2) रचना के आधार पर

3) अर्थ के आधार पर

4) शैली के आधार पर

5) अर्थतत्त्व - संबंधतत्त्व या आकृति के आधार पर।

1) क्रिया के आधार पर :

क्रिया के आधार पर वाक्य दो प्रकार के होते हैं - (क) क्रियायुक्त वाक्य, (ख) क्रियाहीन वाक्य।

वाक्य में क्रिया का स्थान प्रमुख होता है। वाक्य में क्रिया का वही महत्त्व है, जो शरीर में आत्मा का है। क्रिया प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में वाक्य में रहती है। संस्कृत, लैटिन, बंगला, रुसी आदि भाषाओं में बिना क्रिया के भी वाक्य मिलते हैं, किन्तु सामान्यत: वाक्य क्रियायुक्त होते हैं। इसी आधारपर वाक्य के दो भेद किए हैं।

(क) क्रियायुक्त वाक्य : जिसमें क्रिया हो, उसे क्रियायुक्त वाक्य कहते है। अधिकांश भाषाओं में इसी प्रकार के वाक्य होते हैं। जैसे हिंदी में 'सुनिल पुस्तक पढ़ता है।'

वाक्य के आधार पर क्रियायुक्त वाक्य तीन प्रकार के होते है।

(1) कर्तृप्रधान - जिस वाक्य में कर्ता की प्रधानता हो, वह कर्तृप्रधान वाक्य है। जैसे - 'मैं पुस्तक पढता हूँ।'

(2) कर्मप्रधान - जिस वाक्य में कर्म की प्रधानता हो, उसे कर्मप्रधान वाक्य कहते हैं; जैसे - 'पुस्तक मुझसे पढी जाती है।'

(3) भावप्रधान - जिस वाक्य में भाव की प्रधानता हो, वह भावप्रधान वाक्य है; जैसे - 'मुझसे चला नहीं जाता।'

(ख) क्रियाहीन वाक्य : जिसमें क्रिया न हो, वह क्रिया विहीन वाक्य है। संस्कृत, रुसी, बंगला आदि भाषाओं में यह प्रवृत्ति विशेष रूप से मिलती है। इन भाषाओं में प्राय: क्रिया लगाने की आवश्यकता नहीं होती। इनमें क्रिया पद गुप्त रहता है; जैसे - संस्कृत - 'इदं मम गृहम' (यह मेरा घर है।)

बंगला - एइ आमार बाडी (यह मेरा घर है।)

हिंदी में एक पद वाले वाक्य क्रियाहीन होते है; जैसे - 'हत्या !', 'सांप !' ऐसे वाक्य घबराहट में प्रयुक्त होते है। मन:स्थिति पूरे वाक्य का उच्चारण नहीं करा सकती। प्रश्नवाचक वाक्य भी प्राय: क्रियाहीन होते हैं; जैसे - प्रश्न - कहाँ से? उत्तर - युमना तट से।

मुहावरों और लोकाक्तियों में क्रियाहीन वाक्यों का प्रयोग होता है; जैसे - 'जिसकी लाठी उसकी भैंस', 'आम के आम गुठली के दाम।'

विज्ञापनों, समाचार पत्रों के शीर्षकों में भी क्रियाहीन वाक्य होते हैं; जैसे - समाचार पत्र के शीर्षक - 'मीनार से कुदकर आत्महत्या', 'इस वर्ष धुवाँधार बारीश'। विज्ञापनों में - 'सुंदर गाड़ी केवल.... रुपये में', 'नक्कलों से सावधान', 'बुढे से जवान' आदि।

आतंक, भय, विस्मय आदि के सूचक पदों में भी क्रियाहीन वाक्य होते है; जैसे - 'बाढ़ ही बाढ़', 'चोर-चोर!' 'भूकंप!' 'साँप!' वस्तुत: ऐसे वाक्य घबराहट, डर आदि की मन:स्थिति में बोले जाते हैं, जिसमें वाक्य पूरा करने की भावना नहीं रहती और न पूरा करने का समय रहता है। किसी प्रकार परिस्थिति की गंभीरता बताकर आनेवाले खतरे से सावधान करना ही ऐसे वाक्यों का प्रयोजन होता है और वह प्रयोजन बिना क्रिया के भी सिद्ध हो जाता है।

उसी तरह उपर्युक्त प्रश्नवाचक वाक्य - 'यमुना तट से' के बाद क्रिया के प्रयोग की कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि इतने से ही आकांक्षा की पूर्णता हो जाती है। उसी तरह काव्य भाषा में क्रियाविहीन वाक्य होते है।

2) रचना के आधार पर :

रचना के अनुसार वाक्य के चार भेद होते हैं। - (क) सरल या साधारण वाक्य, (ख) उपवाक्य, (ग) मिश्रवाक्य, (घ) संयुक्त वाक्य।

(क) सरल या साधारण वाक्य : इसमें एक उद्देश्य और एक विधेय अर्थात एक संज्ञा और एक क्रिया होती है। जैसे - 'लडका पढ़ता है' - यहाँ लड़का उद्देश्य है और 'पढ़ना है' विधेय है। जिसके विषय में कुछ कहा जाता है, उसे उद्देश्य और उद्देश्य के विषय जो कुछ कहा जाता है, उसे विधेय कहते है।

सरल या साधारण वाक्य के पाँच प्रकार हैं।

1) अकर्मकीय - शाम हँसता है।

2) एक कर्मकीय - सुनिल पुस्तक पढ़ता है।

3) द्वि-कर्मकीय - शांति वसु को पत्र लिखती है।

4) कर्तापूरक - गुलाब सुंदर है।

5) कर्मपूरक - संगीत अभय को मूर्ख बनाता है।

(ख) उपवाक्य : जब दो या दो से अधिक वाक्यों को मिलाकर एक वाक्य बना देते है, तो उस एक वाक्य में जो वाक्य मिले होते हैं, उन्हें उपवाक्य कहते हैं। उपवाक्य दो प्रकार के होते हैं -

(1) आश्रित उपवाक्य : जो प्रधान न होकर गौण होते है अथवा दूसरे के आश्रित होते है, उन्हें आश्रित उपवाक्य कहते है। जैसे - ''वह वस्तु नहीं मिली जो सबसे अच्छी थी।'' इसमें 'जो सबसे अच्छी थी।' आश्रित उपवाक्य है।

आश्रित वाक्य के तीन भेद है। (1) संज्ञावाक्य - मैं समझता हूँ कि वह पास नहीं हो सकता। (2) विशेषण उपवाक्य - वह पास हो जाएगा, जो परिश्रम करेगा। (3) क्रिया विशेषण - जब कभी मैं उसको देखता हूँ, मेरा मन करुणा से भर जाता है।

(2) प्रधान उपवाक्य : किसी वाक्य में जो उपवाक्य आश्रित या गौण न होक प्रधान हो, वह प्रधान उपवाक्य है - 'वह वस्तु नहीं मिली, जो सबसे अच्छी थी। इसमें - वह वस्तु नहीं मिली - प्रधान है।

(ग) मिश्रवाक्य : जिसमें एक प्रधान उपवाक्य तथा एक या अधिक आश्रित उपवाक्य होते हैं, उन्हें मिश्र वाक्य कहते हैं। जैसे - 'जो विद्वान होता है, उसका सर्वत्र आदर होता है। इसमें - जो विद्वान होता है - प्रधान उपवाक्य। उसका सर्वत्र आदर होता है - आश्रित उपवाक्य है।

(घ) संयुक्त वाक्य : इसमें अनेक प्रधान उपवाक्य होते है। जैसे - 'गिलास हाथ से गिरा और टूट गया', 'लड़का खेल रहा है और लड़की पढ़ रही है।' इन वाक्यों में दोनों वाक्य प्रधान है।

3) अर्थ के आधार पर :

अर्थ के अनुसार वाक्य के आठ भेद माने जाते है।

(1) विधान सूचक : इससे किसी कार्य के करने का बोध होता है। जैसे - 'वह पढ़ता है।', राम पढ़ चुका है।

(2) आज्ञावाचक : जिससे किसी प्रकार की आज्ञा का बोध हो। जैसे - यही बैठो।, तुम पढ़ो।, वहाँ मत जाना।

(3) निषेधवाचक : जिससे किसी बात के न होने या इन्कार किए जाने का बोध हो, उसे निषेधवाचक वाक्य कहते है। जैसे - मैं गाँव नहीं गया।, वह नहीं पढता है।

(4) प्रश्नवाचक : जिस वाक्य से किसी प्रकार के प्रश्न पूछे जाने का बोध होता है, उसे प्रश्नवाचक

वाक्य कहते हैं। जैसे वह पढता है?, तुम कहाँ जा रहे हो?

(5) विस्मयवाचक : जिस वाक्य से किसी प्रकार के विस्मय, आश्चर्य, हर्ष, दु:ख का बोध होता है, उसे विस्मयक वाचक वाक्य कहते है। जैसे - अरे ! तुम पढ़ रहे हो?

(6) संदेहवाचक : जिस वाक्य से किसी प्रकार के संदेह का बोध होता है, उसे संदेहवाचक वाक्य कहते है। जैसे - वह आया होगा।, वह कहीं गया होगा।

(7) इच्छावाचक : जिससे किसी प्रकार की इच्छा या कामना का बोध होता है, उसे इच्छावाचक वाक्य कहते हैं। जैसे - भगवान, तुम्हारा भला करें। तुम परीक्षा में अव्वल आवोगे।

(8) संकेतवाचक : जिससे कोई संकेत प्रकट होता है, उसे संकेतवाचक वाक्य कहते हैं। जैसे - यदि वह पढता तो बहुत अच्छा होता। यदि वह गाना गाए तो मैं भी गाऊँ।

4) शैली के आधार पर :

शैली के अनुसार वाक्य के चार भेद होते हैं। (1) शिथिल वाक्य, (2) समीकृत या समान गठन वाले वाक्य, (3) वैषम्यमूलक वाक्य, (4) चौथा है - उत्सुकता वर्धक वाक्य।

(1) शिथिल वाक्य : इसमें वक्ता स्वाभाविक रुप से बोलता जाता है। जिस क्रम से विचारों का उदय होता जाता है, उसी क्रम से वाक्य बनते जाते हैं। जैसे - ''अयोध्या सूर्यवंशी राजाओं की राजधानी थी। उस समय महाराज दशरथ अयोध्या के राजा थे। महाराज बूढे हो गये, किन्तु उन्हें कोई पुत्र नहीं हुआ। एक दिन महाराज ने अपने कुलगुरू महर्षि वशिष्ठ के आश्रम में जाकर गुरूदेव से संतान के लिए प्रार्थना की।

(2) समान गठन वाले वाक्य : इस प्रकार के वाक्यों में दो समान विचार साथ-साथ प्रस्तुत किए जाते हैं। जैसे - यथा नाम तथा गुण, एक तो चोरी, दूसरे सीना जोरी। इसके दो व्यावहारिक लाभ है - एक तो वाक्यों की रचना एक पद्धति पर होने से उन्हें याद करने में सरलता होती है और दूसरे उनसे मन में एक प्रकार का आनंद दायक विस्मय होता है। उदा. चाहे विद्वान निंदा करें चाहें स्तुति, चाहे मृत्यु आज हो जाए चाहे सैंकडों वर्ष बाद।

(3) वैषम्यमूलक वाक्य : इस प्रकार के वाक्यों में अर्थमूलक भेद दिखाई पडता है। जैसे - 'कहीं धूप कहीं छाँव', समीकृत वाक्य वैषम्यमूलक भी होते हैं। - 'कहाँ राजा भोज, कहाँ गंगू तेली?'

(4) उत्सुकता वर्धक वाक्य : इस प्रकार के वाक्यों में नाटकीयता रहती है, रहस्य का उद्घाटन अंत में किया जाता है। श्रोता या पाठक उत्सुकता पूर्वक प्रतीक्षा करता रहता है और तब उसके सामने वह बात आती है, जो वक्ता या लेखक उसे बताना चाहता है। इस शैली के वाक्य वक्ताओं या नेताओं के काम के अधिक होते हैं। जैसे - 'यदि हम चाहते है कि हमारी स्वतंत्रता सुरक्षित रहे, यदि हम चाहते है कि भारत शिक्षा, कृषि और उद्योग के क्षेत्र में निरंतर प्रगति करता रहे, तो हमें आपसी भेदभाव भुलाकर राष्ट्रीय एकता को सुदृढ बनाना होगा।'

शैली की दृष्टि से वाक्य विचार भाषाविज्ञान के क्षेत्र में नहीं पडता, उसका विचार काव्यशास्त्र में होता है,

किन्तु वाक्य के भेदों पर विचार करते समय उसकी भी चर्चा आवश्यक थी। इसका विश्लेषण शैली विज्ञान में किया जाता है।

5) अर्थतत्त्व - संबंधतत्त्व या आकृति के आधार पर। :

इसके चार प्रकार होते है। (1) निरवय वाक्य, (2) समास प्रधान वाक्य, (3) प्रत्यय प्रधान वाक्य, (4) विभक्ति प्रधान वाक्य।

(1) निरवय प्रधान : चीनी भाषा एकाक्षर परिवार की भाषा है, इस भाषा में वाक्य निरवय होते हैं। उसमें स्थान से ही शब्दों का संबंध जाना जाता है। इसे ही अयोगात्मक वाक्य कहते हैं।

(2) समास प्रधान : समान प्रधान वाक्यों में सभी शब्द मिलकर एक बडा सा वाक्य बन जाता है।

(3) प्रत्यय प्रधान : इन वाक्यों में प्रत्ययों की प्रधानता रहती है। अर्थतत्त्व में जोडे जानेवाले संबंधतत्त्व स्पष्ट रहते है। मलयालम भाषा प्रत्यय प्रधान है।

(4) विभक्ति प्रधान : कुछ भाषाओं के वाक्य विभक्ति प्रधान होते हैं। हिंदी वाक्य में उत्तम पुरुष वर्तमान काल में विभक्ति नहीं लगती, किन्तु भूतकाल में लगती है। जैसे - 'मैं खातू हूँ', 'मैंने खाया।'

वाक्य रचना के भेद या प्रकार :

वाक्य रचना के कई भेद होते हैं। रचना क्या है? यह जानना आवश्यक है। रचना, शब्दों या पदग्रामों का एक विशिष्ठ समूह है। इसके बीच सीधा संबध बना रहता है। वाक्य रचना के मुख्य दो भेद होते हैं - (1) पूर्ण वाक्य, (2) अपूर्ण वाक्य।

जो **पूर्ण वाक्य** के रूप में हो, उसे पूर्ण वाक्य कहते हैं। ऐसी रचना में वाक्य के लिए सारे आवश्यक उपकरण होते हैं।

अपूर्ण वाक्य रचना में एक या अधिक पदों का लोप रहता है। प्रश्नों के उत्तर में दी गयी एक या दो शब्दों की रचनाएँ इसी श्रेणी की होती है। जैसे -

सुनिल - अभय तुम आज गाँव जाओगे?
अभय - हाँ (जाऊँगा)

यहाँ प्रथम वाक्य रचना पूर्ण है और द्‌वितीय वाक्य रचना अपूर्ण है।

वाक्य रचना के दो और भेद है। - (1) अंत: केन्द्रमुखी, (2) बहि : केन्द्रमुखी।

(1) अंत: केन्द्रमुखी : अंत: केन्द्रमुखी उस रचना को कहते है जिसका केन्द्र उसी में है। इसके अन्तर्गत वे शब्द समूह आते हैं, जो संज्ञाओं, क्रियाओं, विशेषणों तथा क्रिया विशेषणों का कार्य करते है। इसमें मुख्य रूप से **विशेषण - विशेष्य** संबंध होता है। इसमें एक या अनेक विशेष्य होते हैं और उनके एक या अनेक विशेषण हो सकते

है। जैसे - 'लड़का' और 'अच्छा लड़का' में वाक्य के स्तर पर कोई अंतर नहीं है। 'लडका जाता है' भी कह सकते है और 'अच्छा लडका आता है' भी कह सकते है। यहाँ प्रमुख शब्द लड़का है। 'अच्छा लड़का' अन्त: केंद्रमुखी रचना है। इसी प्रकार सुन्दर फूल, शुद्‌ध दूध, सज्जन व्यक्ति, आदि इन उदा. में एक विशेषण है और दूसरा विशेष्य है इसके कई रूप हैं -

(1) विशेषण + संज्ञा - काला कपड़ा, बदमाश आदमी।

(2) क्रिया विशेषण + क्रिया - तेज दौड़ा, खूब खाया।

(3) क्रिया विशेषण + विशेषण - बहुत तेज, खूब गंदा।

(4) संज्ञा + विशेषण उपवाक्य - आदमी जो गया था, फल जो पके गा।

(5) सर्वनाम + विशेषण - तू जो मेरा मित्र है।

(6) क्रिया + क्रिया विशेषण - आगरा, जहाँ जहाज गिरा था।

(7) संज्ञा + संज्ञा - राम और मोहन। आदि प्रमुख है।

अंत: केन्द्रमुखी रचना दो प्रकार की होती है - (1) संवर्ग - राम और मोहन, दूध और दही, फूल और फल।

(2) आश्रित वर्गी : इसमें एक था कुछ शब्द मुख्य होते हैं तथा शेष आश्रित। उदा. 'अच्छा लड़का', 'बहुत तेज', 'खूब चलता है'। यहाँ अच्छा, बहुत, खूब आश्रित है।

(2) बहि : केन्द्रमुखी : जो रचना अन्त: केन्द्रमुखी नहीं होती उसे बहि: केन्द्रमुखी कहते है। इसमें पूरी रचना एक शब्द की विशेषता नहीं बतलाती। जैसे - कान में, राम के लिए, हाथ से आदि इसी प्रकार के हैं। कान में की चर्चा करते हैं - इसमें न तो केवल 'कान', 'कान में' का पूरा काम कर सकता है, न केवल में ही। 'कान में' रचना के लिए 'कान' और 'में' दोनों आवश्यक है। इसमें किसी के भी न रहने पर, रचना पूरी नहीं हो सकती। 'कान' और 'में' इन दोनों में किसी का भी केन्द्र इस रचना अर्थात 'कान में' नहीं है। इसी कारण इस रचना को बहि: केन्द्रमुखी कहते है। पूरा अर्थ बतलाने के लिए हमें 'कान में तेल', 'राम के लिए रोटी', 'हाथ से खाना' आदि कहना पड़ेगा। देश से दिल्ली की ओर' पानी में आदि ऐसी ही रचनाएँ है।

वाक्य के निकटतम अवयव (अवयव विश्लेषण) :

वाक्य में प्रयुक्त पद (शब्द) उस वाक्य के अवयव होते हैं। जैसे शरीर अवयवों से बना होता है, उसी प्रकार वाक्य भी पदों या शब्दों से बना होता है। उदा. लडका पढ रहा है। वाक्य में चार अवयव है : लड़का, पढ़, रहा, है। इसी प्रकार वाक्य का कोई अंश जिन पदों से बना होता है, वे उसके वाक्यांश होते हैं। जैसे - 'इमारत की चौथी मंजिल का दक्षिणी हिस्सा आज गिर गया।' इसमें 'इमारत की चौथी मंजिल का दक्षिणी हिस्सा' एक वाक्यांश है जिसके सात अवयव हैं - इमारत, की, चौथी, मंजिल का, दक्षिणी, हिस्सा। इस तरह वाक्य में प्रयुक्त होनेवाले पद या रूप

ही उसके 'अवयव' है। दो या दो से अधिक अवयवों में निकटस्थ 'अवयव' उसे कहते है, जिसके द्वारा वह रचना निर्मित होती है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि कोई रचना जिन दो या दो से अधिक अवयवों से मिलकर बनती है, उनमें प्रत्येक अवयव निकटस्थ अवयव कहलाता है। डॉ. भोलानाथ तिवारी के अनुसार - ''जो पद या अवयव एक दूसरे के निकट होते हैं, उन्हें निकटस्थ अवयव कहते हैं। यह निकटता स्थान की न होकर संरचना की होती है।''

डॉ. कपिलदेव द्विवेदी ने लिखा है - ''वाक्य में प्रयुक्त पद या शब्द, जो स्थान की दृष्टि से नहीं, अपितु अर्थ की दृष्टि से निकट या समीप होते हैं, उन्हें निकटतम अवयव कहा जाता है। अँग्रेजी का एक वाक्य लेते हैं - Is he going? इसमें तीन अवयव है। 'इज', 'ही' के निकट देखने में है, किन्तु 'इज' वास्तविक रूप में 'ही' की तुलना में 'गोइंग' के अधिक निकट है। इस वाक्य में 'इज' और 'गोइंग' निकटस्थ अवयव है। फिर ये दोनों मिलकर 'ही' के निकटस्थ है। निकटस्थ अवयव के आधार पर ही किसी वाक्य या वाक्यांश का अर्थ स्पष्ट होता है।

प्रत्येक भाषा में निकटस्थ अवयवां की जानकारी आवश्यक है। इनकी जानकारी न होने पर वाक्य रचना दोषपूर्ण हो जाती है। उदा. ''उसने एक फूलों की माला मुझे दी'' यह वाक्य दोषपूर्ण है, क्योंकि इसमें 'एक', 'माला' निकटस्थ अवयव है, जो अर्थ की दृष्टि से पास आने चाहिए थे। शुद्ध वाक्य इस प्रकार होगा - ''उसने फूलों की एक माला मुझे दी।''

वाक्य में अर्थ का ज्ञान केवल निकटस्थ अवयवों के द्वारा ही होता है। यही उनका महत्त्व है। एक भाषा से दूसरी भाषा में अनुवाद करते समय इसी का ध्यान रखना पडता है, नहीं तो अर्थ ही नहीं निकलेगा। अथवा अर्थ का अनर्थ हो जाएगा। जैसे - ''आप क्यों लाल पीले हो रहे हो?'' इसका अंग्रेजी में अनुवाद इस प्रकार किया जाए - ''हवाई आर यू विकमिंग रेड एण्ड येलो'' तो अनुवाद ठीक नहीं होगा। अंग्रेजी और हिंदी के वाक्यों में निकटस्थ अवयवों की पहचान न होगी तो अंग्रेजी से हिंदी में ठीक अनुवाद नहीं होगा। - ''मैं आम खा रहा हूँ।'' का अंग्रेजी अनुवाद करना हो तो अंग्रेजी वाक्य के निकटस्थ अवयवों का ज्ञान अनिवार्य है। ऐसा न होने पर वाक्य का अनुवाद अशुद्ध हो सकता है। I mango eating am का शुद्ध रूप होगा - I am eating mango.

कभी - कभी वाक्य देखने पर निकटस्थ अवयवों का पता नहीं लग सकता। वक्ता के कहने से ही ठीक पता लग सकता है। उदा. ''सफेद कुर्सियाँ और अलमारियाँ रखी है।''

इस वाक्य के निकटस्थ अवयव इस प्रकार है -

1) 'सफेद', 'कुर्सियाँ' और अलमारियाँ।
2) 'सफेद कुर्सियाँ' और अलमारियाँ।

यहाँ पहले वाक्य के विश्लेषण से स्पष्ट है कि कुर्सियाँ और अलमारियाँ दोनों सफेद है। दूसरे वाक्य के विश्लेषण से स्पष्ट है कि कुर्सियाँ सफेद हैं। अलमारियों के रंग के बारे में प्रश्न नहीं है।

निकटस्थ अवयव के विश्लेषण के आधारपर ही किसी वाक्य रचना का ठीक अर्थ जाना जा सकता है। उदा. (1) जाओ, मत बैठो। (2) जाओ मत, बैठो।

इसके निकटस्थ अवयव की दृष्टि से दो विश्लेषण हो सकते हैं और दोनों के अनुसार अर्थ में अंतर आ जाएगा।

डॉ. भोलानाथ तिवारी ने निकटस्थ अवयव तीन प्रकार के बताए हैं - (1) अविच्छिन्न (Continous) - राम का बेटा घर गया। (2) विच्छिन्न (Discontinous) - धीरे धीरे चल लेता हूँ। (3) समकालिक (Simultaneous) अनुमान समकालिक निकटस्थ अवयव है, क्योंकि यह साथ-साथ चलता है। जैसे - राम गया ! राम गया? जैसा कि नाम से स्पष्ट है पहले में निकटस्थ अवयव अविच्छिन्न रूप से आते हैं। दूसरे में उनके बीच निकटस्थ अवयव आ जाता है।

वस्तुत: यह पद्धति पदक्रम वाली भाषाओं जैसे हिंदी, अंग्रेजी आदि के लिए अधिक उपयुक्त है, किन्तु मुक्त शब्द या पदक्रम वाली भाषाओं के लिए नहीं है।

दूसरी बात यह कि सभी प्रकार के वाक्यों का विश्लेषण या व्याख्या निकटस्थ अवयव विश्लेषण द्वारा संभव नहीं है। जैसे - 'यह राम का चित्र है।' इस वाक्य की तीन प्रकार से व्याख्या की जा सकती है। - 1) इस चित्र का मालिक राम है। 2) यह चित्र राम का स्वरूप है। 3) यह चित्र राम का बनाया हुआ है। इस वाक्य का निकटस्थ अवयव विश्लेषण एक ही प्रकार से संभव है तथा उससे इस अर्थ भेद को स्पष्ट नहीं किया जा सकता है।

वाक्य के निकटस्थ अवयवों की व्यवस्था मुख्यत: पदक्रम, विशेषण - विशेष्य, योग्यता और बलाघात आदि के आधार पर की जाती है। वाक्य के निकटस्थ अवयवों को इस प्रकार परिभाषित कर सकते है - ''अर्थ की दृष्टि से वाक्य में प्रयुक्त जो पद एक दूसरे के निकट होते हैं, उन्हें वाक्य के निकटस्थ अवयव कहते है।''

(1) पदक्रम : वाक्य की सार्थकता पदक्रम पर आधारित होती है। वाक्य के पदक्रम को उपयुक्त रूप से रखने पर वाक्य के निकटस्थ अवयव भी ठीक ढंग से व्यवस्थित हो जाते है। पदक्रम का ज्ञान न होगा तो निकटस्थ अवयवों की व्यवस्था बिगड जाती है; यथा- संजय पत्र के अमर को लिखा। यहाँ हिंदी पदक्रम के अनुसार कर्ता, कर्म और क्रिया का क्रमश: प्रयोग होना चाहिए। ऊपर के वाक्य में 'संजय' ने कर्ता, 'पत्र' कर्म और क्रिया का क्रमानुसार प्रयोग होना चाहिए। ऐसा न होने से अशुद्ध वाक्य रूप हुआ है। इसका शुद्ध पदक्रम है - ''संजय ने अमर को पत्र लिखा' इसमें 'पत्र' और 'लिखा' दोनों निकटस्थ अवयव है, जो शुद्ध पदक्रम में एक-दूसरे के निकट आ गए।

(2) विशेषण - विशेष्य : भाषा में विशेषण और विशेष्य पदों का एक साथ प्रयोग होता है। इन दोनों का वाक्य में एक साथ प्रयोग होने से उनकी निकटता और उनके निकटस्थ अवयव होने की बात सिद्ध होती है; यथा - यह गुलाब सुंदर फूल है। यहाँ सुंदर विशेषण और फूल विशेष्य है। 'सुंदर' और 'फूल' वाक्य के निकटस्थ अवयव है।

(3) योग्यता : वाक्य के पदों में परस्पर अन्वय की योग्यता होनी चाहिए। जब वाक्य के अवयव अर्थ की दृष्टि से ऐसी योग्यता प्राप्त कर लेते है, तब वाक्य के निकटस्थ अवयव अपने सही रूप में होते हैं। यदि वाक्य में यह योग्यता न होगी, तो उसके निकटस्थ अवयव भी बिखरे हुए होंगे; यथा - ''उसने एक दोहे की पुस्तक दी।'' इसमें निकटस्थ अवयव ठीक नहीं है। निकटस्थ अवयव के अनुसार वाक्य होगा। ''उसने दोहे की एक पुस्तक दी।'' ''सफाई कर्मचारी को दस पैसे देकर जरूर जांए।'' इस वाक्य में अन्वय की योग्यता न होने के कारण 'जरूर' और 'देकर' निकटस्थ अवयव बिखर गए। सही वाक्य होगा - ''सफाई कर्मचारी को दस पैसे जरूर देकर जाए।''

(4) बलाघात : वाक्य के किसी पद विशेष पर पढ़नेवाले बलाघात के आधारपर भी वाक्य के निकटस्थ अवयव के निर्धारण से सही अर्थ की अभिव्यक्ति होती है; यथा - ''जाओ मत, बैठो।'' यहाँ जाओ और मत निकटस्थ है, जिससे न जाने और बैठने की बात प्रकट होती है। जब मत और बैठो निकटस्थ अवयव होते है, तो 'न बैठने' और 'चले जाने' का भाव प्रकट होता है। इस प्रकार संभव है कि बलाघात के आधारपर निकटस्थ अवयव का निर्धारण संभव होता है।

गहन संरचना और बाह्य संरचना :

गहन संरचना को ही अन्तस्तलीय या आन्तरिक संरचना कहते हैं और बाह्य संरचना को बहिस्तलीय संरचना कहते हैं। इन संरचनाओं का संबंध वाक्य के रूपांतरण से है। जैसे -

शाम गया। (साधारण वाक्य)

क्या शाम गया? (प्रश्नबोधक वाक्य)

इसमें पहला मूल वाक्य है तो दूसरा उसी में रूपांतरण करके (क्या जोड़कर) बनाया गया प्रश्नबोधक वाक्य है।

इसी प्रकार -

शाम जाता है। (साधारण वाक्य)

शाम नहीं जाता। (निषेधवाचक वाक्य)

यहाँ भी पहला मूल वाक्य है तथा दूसरा उसी में रूपांतर करके (नहीं जोडकर) बनाया गया निषेधात्मक वाक्य है। इस तरह रूपांतर करके बनाए गए वाक्य रूपांतरित वाक्य कहलाते है। ये रूपांतरित वाक्य जिन मूल्य वाक्यों से बनाए जाते है, उन्हें मूल वाक्य कहते है।

रूपांतरण में मुख्यत: तीन बातें आती है। जोडना, निकालना तथा परिवर्तित करना। **चामस्की** ने रूपांतरण के लिए यह माना है कि प्रत्येक वाक्य के दो रूप होते हैं - 1) गहन संरचना (आन्तरिक संरचना), 2) बाह्य संरचना।

जिस वाक्य का प्रयोग हम बोलने या लिखने में करते हैं, वह बाह्य संरचना है। इसके विपरित यह बाह्य संरचना, मानव मन में स्थित जिस संरचना या जिन संरचनाओं से बनी होती है, वह गहन संरचना या आन्तरिक संरचना है।

गहन संरचना और बाह्य संरचना में अंतर :

इन दोनों में स्पष्ट अंतर है -

(1) 'गहन संरचना' वक्ता के मन में होती है, जबकि बाह्य संरचना ध्वनियाँ या लिपि के माध्यम से हमारे सामने आती है। (2) गहन संरचना की सत्ता मानसिक है किन्तु बाह्य संरचना की सत्ता भौतिक है। (3) गहन संरचना में आर्थिक और व्याकरणिक घटक अपने अमूर्त रूप में होते हैं, किन्तु बाह्य संरचना में वे मूर्त रूप लेकर एक रचना के रूप में हमारे सामने आ जाते हैं। उदा.

बाह्य संरचना - लड़का खाना खाता है।

गहन संरचना - लड़का खाना खा + अपूर्ण पक्ष हो + वर्तमान

यहाँ गहन संरचना में मजबूरी से शब्दों और व्याकरणिक घटकों का उल्लेख है, किन्तु तत्त्वत: इस स्तर पर ये मात्र भाव होते हैं, इसीलिए रूपांतरक प्रजनक व्याकरण का सूत्रपात करनेवाले चामस्की इन्हें मूर्तरूप वाली बाह्य संरचना से अलगाने के लिए हमेशा अंग्रेजी के बड़े अक्षरों (कॅपिटल) से लिखते है। तात्पर्य यह है कि बाह्य संरचना मूर्त होती है तो गहन संरचना अमूर्त।

रूपांतरण के नियम :

आंतरिक संरचना तथा बाह्य संरचना में संबंध दिखाने का काम रूपांतरण नियम करते है। रूपांतरण के नियमों के वर्ग किए गए हैं - 1) अनिवार्य तथा अर्थ परिरक्षक नियम - इस नियम का प्रयोग न करने पर वाक्य अशुद्ध या अव्याकरणिक रहते हैं। इनके प्रयोग से अर्थ परिवर्तन नहीं होता।

2) दूसरा वर्ग है ऐच्छिक तथा अर्थपरिवर्तक नियम इनके प्रयोग से अर्थपरिवर्तन हो जाता है।

कोई व्यक्ति कह सकता है - 'राम ने पत्र लिखा' या फिर यदि वह चाहे तो इसका कर्मवाक्य बनाकर वह कह सकता है - 'पत्र राम के द्वारा लिखा गया।'

यह ऐच्छिक तथा अर्थ परिवर्तक नियम का उदा. है। निकटस्थ अवयव विश्लेषण द्वारा जिसे स्पष्ट नहीं किया जा सकता, उसे रूपांतरण के नियमों द्वारा विश्लेषित किया जा सकता है।

3.2.2 वाक्य में पदक्रम :

संसार की अनेक भाषाओं की वाक्यात्मक संरचना में पद महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। वाक्य की रचना पदों से होती है। वाक्य में पदक्रम का महत्त्व बहुत बडा है। पदक्रम का अर्थ यह है कि किस पद के बाद कौनसा पद रहे। किसी पद को जहाँ कहीं नहीं रख सकते। पदक्रम की कोई एक और निश्चित पद्धती नहीं है। सभी भाषाओं का पदक्रम एक नहीं होता।

संज्ञा, सर्वनाम, क्रिया विशेषण तथा क्रिया के विभिन्न व्याकरणिक रूपों अथवा पदबन्धों से वाक्य की रचना होती है। इनका वाक्य में जिस क्रम से प्रयोग किया जाता है, उसे पदक्रम या शब्दक्रम कहते है। विश्व में काफी भाषाएँ ऐसी है, जिनमें 'पदक्रम' का वाक्य रचना में महत्त्वपूर्ण स्थान है। चीनी आदि स्थान- प्रधान भाषाओं में तो यह बहुत ही महत्त्वपूर्ण है, किन्तु अंग्रेजी, हिंदी आदि वियोगात्मक भाषाओं में भी इसके महत्त्व को नकारा नहीं जा सकता। इनमें वाक्य में पदों का स्थान या क्रम निश्चित होता है। जैसे - हिंदी में प्राय: कर्ता पहले, कर्म बाद में तथा क्रिया वाक्य के अंत में आती है -

'राम ने मोहन को मार डाला।'

इसके विपरीत अंग्रेजी में क्रिया बीच में आती है तथा कर्म बाद में - Ram killed Mohan.

'वह पुस्तक पढ़ता है।', 'राम पानी पीता है।' इन दोनों वाक्यों में क्रमश: कर्ता + कर्म + क्रिया का प्रयोग है।

इसके प्रतिकूल अंग्रेजी में कर्ता के बाद क्रिया + कर्म है। जैसे - He reads the book, Ram drinks water.

बल : बल देने के लिए पदक्रम प्रधान भाषाओं में भी पदक्रम में परिवर्तन होता है। वाक्य के जिस भाग पर बल देना होता है, उसे सर्वप्रथम प्रयोग करते है। बल का अर्थ है कि वक्ता वाक्य में किस अंश को प्रधानता देना चाहता है। जैसे - स्वाभाविक पदक्रम के अनुसार वाक्य होगा - ''मैंने रोटी खायी है।'' किन्तु यदि 'रोटी' पर बल देना है, तो यह वाक्य - 'रोटी मैंने खायी है।' इस रूप में प्रयुक्त होगा। इसी तरह अंग्रेजी में I must go के go पर बल देने के समय Go I must बोलते है। ऐसे ही -

'सुनिल तुम्हारे साथ घर जा रहा है।' यहाँ यदि 'तुम्हारे साथ' पर बल देना है, तो यह वाक्य - तुम्हारे साथ सुनिल घर जा रहा है। इस रूप में प्रयुक्त होगा।

'क्या करता है वह?', 'घर जा रहा हूँ मैं।', 'चल रहा था वह पीछे-पीछे।' आदि वाक्यों में बल के कारण पदक्रम में परिवर्तन हुआ है।

इस प्रकार बल पदक्रम - प्रधान भाषाओं में भी पदक्रम में प्राय: परिवर्तन ला देते है।

पदक्रम के परिवर्तन का दूसरा आधार है - 'छन्द' छन्द में मात्रा, लय और तुक की मांग पूरी करनी होती है और वह पदों के स्वाभाविक क्रम में सदा संभव नहीं होती, इसीलिए सभी भाषाओं के पद्य में पदक्रम की उपेक्षा पायी जाती है।

पदक्रम के संदर्भ में ध्यान देने योग्य तथ्य इस प्रकार है - 1) विशेषण का प्रयोग प्राय: विशेष्य से पूर्व होता है; जैसे - 'यह अच्छा लड़का है।', 'सुंदर चित्र लाओ।'

2) क्रिया विशेषण का प्रयोग प्राय:कर्ता और क्रिया के मध्य अर्थात क्रिया के पूर्व होता है; जैसे - 'वह धीरे चलता है।', 'तुम तेज दौड़ते हो।'

3) संबोधन प्राय: वाक्य के प्रारंभ में आता है; जैसे - 'मित्र! इधर आवो।' 'ए लड़के! इधर आ।'

4) अधिकरण कारक प्राय: क्रिया के पूर्व वाक्य के मध्य में प्रयुक्त होता है; जैसे - 'कलम मेज पर है।', 'कलम संदूक में है।'

5) निवेदनात्मक 'न' का प्रयोग वाक्य के अंत में होता है; जैसे - 'आप आयेंगे न'

6) निषेधात्मक अव्यय प्राय: क्रिया के पूर्व आते हैं; जैसे - 'मैं नहीं आऊंगा।', 'तुम वहाँ न जाना।'

7) 'मात्र' और 'केवल' शब्दों का प्रयोग वाक्य में पहले और बाद में भी होता है; जैसे - 'मात्र दो रुपए।', 'दो रुपए मात्र।', 'केवल चार रूपए।' 'चार रूपए केवल।'

8) विस्मयबोधक प्राय: वाक्य के प्रारंभ में आते है; जैसे - 'वाह! कितना सुंदर दृश्य है।', 'अरे! वह गिर गया।'

9) प्रश्नवाचक शब्द प्राय: उस पद के पूर्व आता है, जिससे वह संबद्ध हो और ऐसे पद का प्रयोग वाक्य के

आदि, मध्य और अंत में भी संभव होता है; जैसे - 'क्या गाड़ी आ गई?', 'गाड़ी क्या आ गई?', 'गाड़ी आ गई क्या?'

पदक्रम के विषय में यह भी ध्यान देने योग्य है कि पद्यात्मक रचना की अपेक्षा गद्य में पदक्रम अधिक व्यवस्थित होता है। लिखित भाषा से उच्चारित भाषा में पदक्रम अधिक प्रभावशाली और स्पष्ट होता है। पदक्रम की इस स्पष्टता के कारण ही उच्चरित भाषा में अभिव्यक्ति अपेक्षाकृत अधिक सशक्त होती है।

अन्वय : वाक्य के विविध व्याकरणिक रूपों की पारस्परिक एकरूपता को अन्वय कहते है। यह एकरूपता लिंग, वचन, पुरुष तथा मूल और विकृत रूप की होती है। विभिन्न भाषाओं में विशेषण - विशेष्य, कर्ता - क्रिया, कर्म - क्रिया आदि में एकरूपता दिखाई देती है। यहाँ दो बातें ध्यान देने की है -

1) हर भाषा के अन्वय के नियम अलग-अलग होते हैं।

2) अलग - अलग भाषाओं में अलग-अलग बातों का अन्वय होता है। जैसे संस्कृत में कर्ता-क्रिया में लिंग का अन्वय नहीं है, किन्तु हिंदी में है -

राम गच्छाति - राम जाता है।
सीता गच्छाति - सीता जाती है।

ऐसे ही हिंदी में विशेषण में भी वचन तथा लिंग का अन्वय है, किन्तु अंग्रेजी में नहीं -

अच्छा लड़का - good boy
अच्छी लड़की - good girl
अच्छे लड़के - good boys

हिंदी में क्रिया कभी कर्ता के अनुरूप होती है -

मोहन गया, सीता गई

क्रिया कभी कर्म के अनुसार होती है।

राम ने आम खाया। सीता ने आम खाया।
राम ने कई पराठे खाए। राम ने एक पराठा खाया।

क्रिया कभी-कभी नहीं होती -

लड़की ने लड़के को मारा।
लड़के ने लड़की को मारा।

इसी प्रकार मूल - विकृत रूप की भी विशेषण - विशेष्य में अनुरूपता होती है -

वह काला कपड़ा उठाओ।

उस काले कपड़े को उठाओ।

लोप : वाक्य रचना में सभी अपेक्षित शब्दों का प्रयोग हमेशा नहीं किया जाता। कभी कभी कुछ का लोप भी हो जाता है, किन्तु यह लोप कुछ ही का हो सकता है और वे निश्चित होते है। 'राम जा रहा है।' वाक्य का नकारात्मक रूप होगा - 'राम नहीं जा रहा।' - यहाँ 'है' का लोप है। ऐसे ही 'राम घर पर है' को कह सकते है - राम घर है।

बोलचाल में केवल मुख्य सूचक शब्द अथवा शब्दों का ही प्रयोग करते हैं। बाकी का लोप कर देते है। -

शाम – तुम कहाँ गए थे?
हरि – 'घर' ('गया था' का लोप है)
शाम – अब कहाँ जा रहे हो। (तुम का लोप)
हरि – 'ऑफिस' ('जा रहा हूँ' का लोप)

लोप कई प्रकार का हो सकता है। लोप के संबंध में दो बातें स्मरणीय है - 1) हर भाषा में लोप के नियम अलग-अलग होते हैं। 2) एक ही भाषा में कहीं तो लोप होता है, कहीं नहीं होता।

आगम : कभी आवश्यक न होने पर भी कुछ अतिरिक्त 'शब्दों' का आगम कर दिया जाता है : Ram is returning back, कृपया यहाँ बैठिए, ऊपर सूरज की ओर देखिए।, कृपया मेरे घर आने की कृपा करें, वह वापस लौट आया। इस प्रकार के आगम एक प्रकार की पुनरुक्ति होते हैं।

पदबन्ध : जब एक से अधिक पद, एक में बँधकर एक व्याकरणिक इकाई (संज्ञा, विशेषण, क्रिया-विशेषण आदि) का कार्य करें तो उस 'बंधी इकाई' को पदबंध कहते है।

उदा. - वहाँ पेड़ है।

सौरभ के मकान के चारों ओर पेड़ हैं।

यहाँ पहले वाक्य में 'वहाँ' एक क्रियाविशेषण पद (स्थानवाचक) है, दूसरे वाक्य में, 'सौरभ के मकान के चारों ओर' कई पदों की ऐसी इकाई है, जो स्थान वाचक क्रिया-विशेषण का कार्य कर रही है, अत: यह क्रिया विशेषण पद न होकर क्रिया विशेषण पदबंध है। पदबंध आठ प्रकार के हो सकते हैं।

1) संज्ञा पदबंध : इतनी लगन से कला की साधना करनेवाला कलाकार अवश्य सफल होगा।

2) सर्वनाम पदबंध : मौत से जूझकर बच जाने वाला मैं भला मर सकता हूँ।

3) विशेषण पदबंध : शरत पूनों के चाँद सा सुंदर मुख्य किसको नहीं मोह लेता !

4) क्रिया पदबंध : उसकी बात अब तो मान ली जा सकती है।

5) क्रिया विशेषण पदबंध : आगामी वर्ष के मध्य तक मेरा काम पूरा हो जाएगा।

6) संबध बोधक पदबंध : इस मकान से बाहर की ओर कोई बोल रहा है।

7) समुच्चय बोधक पदबंध : उसे मैं नहीं चाहता, क्योंकि वह झूठ बोलता है।

8) विस्मयादि बोधक : हाय रे किस्मत ! यह प्रयास भी नाकाम रहा।

आजकल 'पद' शब्द के स्थानपर भी 'पदबंध' शब्द का प्रयोग विशेष संदर्भो में हो रहा है।

3.2.3 वाक्य परिवर्तन के कारण :

किसी भाषा की वाक्य-रचना हमेशा एक सी नहीं रहती। उसमें परिवर्तन आते रहते हैं। इसी तरह मूल भाषा की तुलना में उससे निकली भाषा की वाक्यरचना में भी परिवर्तन हो जाता है। उदा. के लिए, संस्कृत वाक्य रचना में कर्ता या कर्म के लिंग का क्रिया पर प्रभाव नहीं पड़ता था, किन्तु संस्कृत से ही निकली हिंदी में ऐसा प्रभाव पड़ता है। जैसे-गच्छति, सीता गच्छति; राम जाता है, सीता जाती है।

वाक्य रचना में परिवर्तन के निम्नलिखित मुख्य कारण माने जाते हैं -

1) अन्य भाषा का प्रभाव : विभिन्न संस्कृतियों के पारस्परिक सम्पर्क के कारण विभिन्न भाषाएँ एक-दूसरे के सम्पर्क में आती है। परिणामत: उनके वाक्य गठन भी प्रभावित होते है। भारत में यवनों के साथ अरबी-फारसी आयी और अंग्रेजों के साथ अंग्रेजी। हिंदी वाक्य रचना पर दोनों के प्रभाव स्पष्ट दिखाई पडते हैं। वाक्य गठन में 'कि', 'चूकि' के प्रयोग फारसी के प्रभाव के फल स्वरूप है।

मध्यकाल में मुगल दरबार की भाषा फारसी थी, अत: उसका पठन-पाठन काफी होता था। इसी कारण उसका हिंदी की काव्य रचना पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा। उदा. के लिए संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश में आदर के लिए बहुवचन के प्रयोग की परंपरा विशेष नहीं थी, किन्तु फारसी में यह परंपरा पूरी तरह से थी। उसी के प्रभाव स्वरूप हिंदी में यह परंपरा आयी, जिसका परिणाम है। यथा -

''मेरे पिता आ रहे हैं।''
''मेरे अध्यापक आ रहे हैं।''

फारसी के प्रभाव से 'कि' का प्रयोग भी हिंदी पर हुआ। - ''मैं चाहता हूँ कि वह चला जाए।''

अंग्रेजी का प्रभाव : अंग्रेजी ने भी हिंदी को इसी तरह प्रभावित किया है। उदा. ''वह आदमी जो कल आया था, चोर था।'' इस वाक्य में 'वह' पर अंग्रेजी के the की छाया है - The man who had come yesterday was a thief.

हिंदी का मूल वाक्य था - ''जो आदमी कल आया था, चोर था।

इसी प्रकार कई संज्ञाओं और क्रियाओं के एक साथ आनेपर अंतिम दो के बीच में 'और' का प्रयोग अंग्रेजी का प्रभाव है। यथा - ''राम, श्याम और मोहन आ रहे हैं।'', ''मैं बाल कटवाऊँगा, नहाऊँगा और खाऊँगा।''

भविष्यकाल के लिए अपूर्ण वर्तमान का हिंदी में प्रयोग अंग्रेजी का प्रभाव है, जो आज हिंदी में अधिक प्रचलित है। यथा - ''प्रधानमंत्री अगले महिने अमरिका जा रहे हैं।'' ''पिताजी कल आ रहे हैं।''

अंग्रेजी के प्रभाव के कारण ही हिंदी में भी संक्षेपण के लिए संबंधवाची प्रत्ययों के लिए योजक - चिह्न (हाइफन) और अल्पविराम (कॉमा) के प्रयोग होते है। यथा - लोक-सभा के अध्यक्ष, लोकसभाध्यक्ष, अध्यक्ष।

2) ध्वनि परिवर्तन से विभक्तियों और प्रत्ययों का धिस जाना : विभक्तियों के धिस जाने से अर्थ को समझने में कठिनाई होने लगती है, अत: वाक्य में सहायक शब्द (परसर्ग, सहायक क्रिया) जोडे जाने लगते है, साथ ही वाक्य में पदक्रम निश्चित हो जाता है। यही कारण है कि संस्कृत की तुलना में हिंदी तथा अंग्रेजी में शब्दक्रम निश्चित है।

सीता राधा कहती है।
राधा सीता कहती है।

इन वाक्यों में स्थान के कारण 'सीता' एक स्थान पर कर्ता है, तो दूसरे स्थान पर कर्म। संस्कृत में कर्ता सीता होती तथा कर्म 'सीता' अत: शब्दक्रम के निश्चित होने की आवश्यकता नहीं थी। 'सीता' वाक्य में कहीं भी आती कर्ता होती तथा 'सीता' कहीं भी आती कर्म होती।

3) स्पष्टता तथा बल के लिए अतिरिक्त शब्दों का प्रयोग : हम अपनी बात को स्पष्ट करने के लिए वाक्य में कुछ न कुछ परिवर्तन कर लेते हैं। परिवर्तन की इस प्रक्रिया में कभी एक ही वाक्य में कई उपवाक्य आ जाते हैं, तो कभी वाक्य के किसी पद के साथ कोष्ठक में स्पष्टता सूचक शब्द का प्रयोग करते है; यथा - स्वन (ध्वनि) भाषा की लघुत्तम इकाई है। स्पष्टता या बल के लिए अतिरिक्त शब्दों का प्रयोग होने से वाक्य में ऐसे अतिरिक्त शब्द आ जाते हैं, जो आर्थिक या व्याकरणिक दृष्टि से आवश्यक होते हैं - ''कृपया कल आइएगा।'' 'आइएगा' अपने आप आदरसूचक है, अत: 'कृपया' शब्द की आवश्यकता नहीं थी। इसी प्रकार "He is returning back" में बॅक अनावश्यक है। संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश में विभक्तियों के लुप्त होने पर स्पष्टता के लिए ही परसर्गो का प्रयोग हिंदी में होने लगा।

4) नवीनता : मनुष्य स्वभाव से ही नवीनता प्रेमी है। कभी - कभी नवीनता के आग्रह के कारण कुछ नये शब्द चल पडते हैं, जिनसे वाक्य रचना में अंतर आ जाता है। नये प्रयोग से वाक्य रचना पद्धति में परिवर्तन आते हैं। उदा. के लिए हिंदी में 'मात्र' शब्द का प्रयोग संज्ञा के बाद होता रहा है, अब नवीनता के लिए संज्ञा के पहले इसका प्रयोग होने लगा है। ''मुझे दस रुपये चाहिए : मुझे मात्र दस रुपए चाहिए।''

इसी तरह ऐसे विशेषण पदबंध जो संज्ञा शब्दों में पहले आते रहते है, अब बाद में रखे जाने लगे हैं।

रातभर की बात - बात रात भर की।
तीन दिन की बादशाहत - बादशाहत तीन दिन की।
पिया मन - भावन दुल्हन - दुल्हन पिया मन-भावन।

पुस्तकों, रचनाओं तथा फिल्मों के शीर्षकों में इस प्रकार परिवर्तन खूब प्रचलित हो गया है। वैसे अन्यत्र भी इसके प्रयोग कम नहीं मिलते।

5) बोलनेवालों की मानसिक स्थिति में परिवर्तन : वस्तुत: वाक्य रचना वक्ता की मानसिक स्थिति पर निर्भर करती है। मानसिक स्थिति के कारण वाक्यरचना में परिवर्तन हो जाता है। युद्धकालीन, प्रसन्न व्यक्ति की, दु:खी व्यक्ति की वाक्य रचना एक नहीं होती। यथा -

आप! बैठिए, जा कहाँ रहे है?
दुष्ट! तुम जाता कहां है?

इस प्रकार मन:स्थिति के कारण वाक्य में परिवर्तन होना स्वाभाविक है।

6) संक्षेप : संक्षिप्तता भी वाक्य में परिवर्तन ला देती है। इससे वाक्य छोटे-छोटे हो जाते हैं। यथा - 'नहीं जाता है' - नहीं जाता

7) भावुकता : भावुकता के कारण भी वाक्य में परिवर्तन होता है। जब वक्ता या लेखक विशेष भाव - प्रवाह में बोलता या लिखता है, तो उसके वाक्य में कर्ता, कर्म और क्रिया की सैद्धान्तिक व्यवस्था ने होकर विचित्र - सी भाव प्रधान वाक्यात्मक संरचना होती है; तथा - वाह रे माधुर्य ! वाह रे लज्जा ! आदि

8) अज्ञानता : अज्ञानता के कारण भी वाक्य में परिवर्तन हो जाता है; यथा -

बाजार खुल रहा है - बाजार खुल रही है।
ट्रक जा रहा है - ट्रक जा रही है।

9) परंपरा प्रभाव : हिंदी का उद्भव संस्कृत भाषा से हुआ है। हिंदी में संस्कृत के परंपरागत गुण है। वर्तमान समय के हिंदी प्रयोग में पर्याप्त नवीनता आ रही है, किन्तु हम किसी न किसी रूप में परंपरा से जुड़े हैं। आदर - संदर्भ में एकवचन कर्ता के साथ क्रिया तथा सर्वनाम आदि का बहुवचन रूप प्रयुक्त होता है; यथा - 'आचार्य शुक्ल महान साहित्यकार थे।', 'वे बस्ती में रहते थे', 'गुरुजी आ रहे हैं', 'वे आज किस-विषय पर व्याख्यान देंगे?'

वाक्य परिवर्तन की दिशाएँ :

वाक्य रचना में परिवर्तन मुख्य रूप से निम्नांकित रूपों या दिशाओं में होता है।

1) वचन-संबंधी परिवर्तन : भाषाओं के विकास में वाक्य रचना में वचन संबंधी परिवर्तन प्राय: हो जाते हैं। संस्कृत में द्विवचन भी था, अत: दो के लिए अलग कारकीय रूप होते थे और उसके साथ क्रिया के द्विवचन के रूप प्रयुक्त होते थे। हिंदी में आते-आते द्विवचन का लोप हो गया तो 'दो' की संख्या 'बहुवचन' कारकीय रूप में लगाकर द्विवचन का भाव व्यक्त किया जाने लगा। यथा - संस्कृत - 'तौ' / हिंदी - वे, दो /, संस्कृत - बालकौ/ हिंदी - दो बालक। किन्तु क्रिया रूप द्विवचन के स्थानपर बहुवचन का प्रयोग होने लगा - ''दो बाक आए है।''

पुरानी हिंदी में आदर के लिए भी एकवचन की क्रिया तथा एकवचन के विशेषण का ही प्रयोग होता था, किन्तु अब हिंदी में आदर के लिए बहुवचन का प्रयोग होता है। जैसे - शर्मा (नौकर) अच्छा है। श्रीवास्तव (अध्यापक) अच्छे हैं। अंग्रेजी में You मूलत: बहुवचन है, किन्तु अब एक वचन में आता है। हिंदी में 'तुम' की यही स्थिति है।

2) लिंग संबंधी परिवर्तन : लिंग संबंधी परिवर्तन वाक्यपरिवर्तन की मुख्य दिशा है। संस्कृत में कर्ता या कर्म के लिंग के अनुसार क्रिया परिवर्तित नहीं होती थी, किन्तु हिंदी में परिवर्तित होती है। यथा -

राम: गच्छति, सीता गच्छति।
राम जाता है। सीता जाती है।

पहले हिंदी में स्त्रीलिंग प्रयोग था - ''अब हम जा रही हैं। अब प्राय: लड़कियाँ और महिलाएँ प्रयोग करने लगी है - ''हम जा रहे हैं।''

3) पुरुष संबंधी परिवर्तन : पहले प्रयोग चलता था - ''शामू ने कहा कि मैं स्कूल नहीं जाऊँगा।'' अब अंग्रेजी के प्रभाव के कारण होता है - शामू ने कहा कि वह स्कूल नहीं जाएगा।

4) लोप : पूर्ववर्ती प्रयोगों में कुछ लुप्त हो जाने से वाक्य अपेक्षा कृत छोटे हो जाते हैं। जैसे हिंदी में -

प्राचीन प्रयोग - राम नहीं आता है।
नवीन प्रयोग - राम नहीं आता।
प्राचीन प्रयोग - शाम नहीं आ रहा है।
नवीन प्रयोग - शाम नहीं आ रहा।
प्राचीन प्रयोग - आँखों से देखी घटना।
नवीन प्रयोग - आखों - देखी घटना।
प्राचीन प्रयोग - वह पढ़ेगा लिखेगा नहीं।
नवीन प्रयोग - वह पढ़े-लिखेगा नहीं।

5) आगम : अतिरिक्त शब्दों के आ जाने से वाक्य बड़े हो जाते है। हिंदी में पुराना प्रयोग था - 'राम के कहा मैं जाऊँगा।' फारसी के प्रभाव के कारण 'कि' आ गया - राम ने कहा कि मैं जाऊँगा।

हिंदी का प्रकृत प्रयोग है - 'जो लड़का आया था, चला गया। अब अंग्रेजी प्रभाव के कारण एक अतिरिक्त शब्द - 'वह' प्रयोग में होने लगा - 'वह लड़का जो आया था, चला गया।'

6) पदक्रम में परिवर्तन : वाक्य रचना पदक्रम से भी परिवर्तित हो जाती है। विभक्ति - लोप, नये प्रयोग आदि के कारण पदक्रम परिवर्तित होता रहता है। संस्कृत और हिंदी की तुलना करें तो संस्कृत में पदक्रम बहुत निश्चित नहीं था, किन्तु हिंदी में वह काफी निश्चित हो गया है। यह बड़ा परिवर्तन है। इधर हाल में नवीनता के कारण हिंदी में, पदक्रम संबंधी कई परिवर्तन हुए हैं। हिंदी में विशेषण पदबंध संज्ञा शब्दों के पहले आते रहते हैं, अब बाद में रखे जाते

है। जैसे रात भर की बात-बात रात भर की।

बल देने के लिए भी कभी - कभी पदक्रम में परिवर्तन किए जाते है - आज बंबई जाऊँगा - बंबई आज जाऊँगा। वह पीछे-पीछे चल रहा था - चल रहा था वह पीछे - पीछे।

3.3 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न :

उचित विकल्प चुनकर वाक्य फिर से लिखिए।

1. भाषा का सबसे महत्त्वपूर्ण अंग .... है।
   क) शब्द ख) वाक्य ग) ध्वनि घ) रूप

2. वाक्य को लोग .... शब्दों का समूह मानते हैं।
   क) अपूर्ण ख) पूर्ण ग) संपूर्ण घ) सार्थक

3. वाक्य .... का समूह होता है।
   क) शब्दों ख) ध्वनि ग) पदों घ) वाक्यों

4. भाषा की सहज इकाई .... है।
   क) ध्वनि ख) वाक्य ग) पद घ) रूप

5. वाक्य के अंग .... है।
   क) दो ख) एक ग) तीन घ) चार

3.4 शब्दार्थ, संदर्भ, टिप्पणियाँ :

अन्विताभिधावाद = वाक्यवाद, वाक्य की सत्ता

अभिहितान्वयवाद = पदवाद, पद की सत्ता

अन्विति = व्याकरणिक रूप में एकरूपता

अन्वय = पारस्परिक एकरूपता

3.5 सारांश :

वाक्य भाषा की सबसे स्वाभाविक सहज इकाई है। पारस्परिक विचार विनिमय वाक्यों द्‍वारा ही होता है, अत: वाक्य विज्ञान भाषा विज्ञान का महत्त्वपूर्ण अंग है। इसमें वाक्य की परिभाषा, संरचना, वाक्य के मूल आधार, वाक्यों के प्रकार, वाक्य परिवर्तन के कारण इन सबका सूक्ष्म अध्ययन होता है। भाषा का मुख्य कार्य भावों की अभिव्यक्ति है। भाव की पूर्ण अभिव्यक्ति वाक्य के माध्यम से होती है। वास्तव में भाव मन में अव्यक्त वाक्य के रूप में विद्‍मान होते हैं। ध्वनि-प्रतीकों या लिपि चिह्नों का आधार पाने पर वाक्य का व्यक्त रूप सामने आता है। पूर्ण अर्थ की प्रतीति करानेवाले शब्द समूह को वाक्य कहते है। वाक्य में पदक्रम का महत्त्व होता है। हिंदी में कर्ता + कर्म + क्रिया ऐसा पदक्रम होता है। अन्य भाषा का प्रभाव, स्पष्टता, बलाघात, मानसिक स्थिति, नवीनता, भावुकता, मुखसुख

परंपरा का प्रभाव आदि वाक्य परिवर्तन के कारण है।

3.6 स्वयं अध्ययन प्रश्नों के उत्तर :

1) ख. वाक्य	2) घ. सार्थक	3) क. शब्दों
4) ख. वाक्य	5) क. दो	

3.7 स्वाध्याय :

1) वाक्य विज्ञान के स्वरूप को स्पष्ट कीजिए।
2) वाक्य की परिभाषा देकर पदक्रम का विवेचन कीजिए।
3) वाक्य परिवर्तनों के कारणों की चर्चा कीजिए।
4) वाक्य के भेदों की चर्चा कीजिए।
5) वाक्य की आवश्यकताएँ स्पष्ट कीजिए।
6) वाक्य में पद विन्यास की विशेषताएँ स्पष्ट कीजिए।

3.8 क्षेत्रीय कार्य :

भाषाविज्ञान के अंगों - ध्वनि विज्ञान, पद विज्ञान, अर्थ विज्ञान आदि को प्राप्त करके उसका अध्ययन करें। भाषाविज्ञान के अन्य ज्ञान-विज्ञान के संबंधों का अध्ययन करें।

3.9 संदर्भ ग्रंथ सूची :

1) पाटील हणमंतराव : 'आधुनिक भाषा विज्ञान', प्रेम प्रकाशन मंदिर, दिल्ली.
2) पाण्डेय लक्ष्मीकांत : 'भाषा विज्ञान एवं हिंदी भाषा', आशिष प्रकाशन, कानपूर.
3) चौधरी तेजपाल : 'भाषा और भाषा विज्ञान', विकास प्रकाशन, कानपूर.
4) मौर्य डॉ. राजनारायण : 'भाषा विज्ञान के तत्त्व', साहित्य भवन प्रा. लि. इलाहाबाद संस्करण - सन् 1984 ई.

3.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए :

1) डॉ. तिवारी भोलानाथ : 'भाषाविज्ञान', प्र. किताब महल, 15, थार्नहिल रोड, इलाहाबाद.
2) शर्मा देवेन्द्रनाथ : 'भाषाविज्ञान की भूमिका', राधाकृष्ण प्रकाशन 2, अन्सारी रोड, दरियागंज, दिल्ली - 1972 ई. तृतीय, संशोधित संस्करण.

❑❑❑

इकाई : 4

अर्थ विज्ञान

अनुक्रम-रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 विषय विवरण

- अर्थ विज्ञान

  पाठ्यविषय

  4.2.1 अर्थ विज्ञान : स्वरूप

  4.2.2 अर्थ बोध में बाधा

  4.2.3 अर्थ परिवर्तन के कारण और दिशाएँ

4.3 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न

4.4 शब्दार्थ, संदर्भ, टिप्पणियाँ

4.5 सारांश

4.6 स्वयं अध्ययन के प्रश्नों के उत्तर

4.7 स्वाध्याय

4.8 क्षेत्रिय कार्य

4.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

4.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए

4.0 उद्‌देश्य :

इस इकाई के अध्ययनोपरांत,

- ◆ अर्थ विज्ञान के स्वरूप से परिचित हो जाएँगे।
- ◆ अर्थ विज्ञान की परिभाषाओं से परिचित हो जाएँगे।
- ◆ अर्थ विज्ञान के क्षेत्र से परिचित हो जाएँगे।
- ◆ अर्थ की प्रतीति बता पाएँगे।
- ◆ शब्द और अर्थ का संबंध बता पाएँगे।
- ◆ अर्थबोध की बाधा को बता पाएँगे।
- ◆ अर्थ परिवर्तन से परिचित हो जाएँगे।
- ◆ अर्थ परिवर्तन के कारणों को बता पाएँगे।
- ◆ अर्थ परिवर्तन की दिशाओं से परिचित हो जाएँगे।

4.1 प्रस्तावना :

अब तक हम भाषा के स्वरूप से परिचित हो चुके हैं। हमने पिछली इकाई में 'वाक्य विज्ञान' का अध्ययन किया जिसमें हमने वाक्य का वैज्ञानिक अध्ययन किया तथा वाक्य परिवर्तन के कारणों को भी समझ पाएँ है। अब इस इकाई के अंतर्गत हम 'अर्थ विज्ञान' का अध्ययन करेंगे।

सामान्यत: अवलोकनार्थ ज्ञात होता कि समस्त प्राणी अपने स्तर पर ध्वनि संकेतों में बोलते हैं। मनुष्य के मुख से निकली ध्वनि या ध्वनि-समूह जिसे अर्थ प्राप्त हो, जो सार्थक हो वही भाषा का रूप प्राप्त करती है। मनुष्य के विचार-विनिमय का साधन भाषा है। अलग-अलग अभिव्यक्ति का माध्यम भी भाषा है। इसी भाषा का 'वैज्ञानिक अध्ययन' भाषा विज्ञान के अंतर्गत किया जाता है। भाषा की लघुत्तम इकाई, ध्वनि, शब्द, पद, वाक्य आदि का वैज्ञानिक अध्ययन भाषा विज्ञान के अंतर्गत किया जाता है। 'भाषा विज्ञान' के अंतर्गत 'अर्थ विज्ञान' का भी अध्ययन किया जाता है। ज्ञान की महत्त्वपूर्ण शाखा 'भाषा विज्ञान' के अंतर्गत जैसे ध्वनि की उत्पत्ति, उच्चारण, शब्द व्युत्पत्ति, भाषा परिवर्तन आदि का वैज्ञानिक अध्ययन कर विचार व्यक्त किए जाते है ठीक उसी तरह अर्थ विज्ञान के अंतर्गत भी 'अर्थ' का 'वैज्ञानिक' अध्ययन किया जाता है।

4.2 विषय विवरण :

4.2.1 अर्थ विज्ञान स्वरूप :

दुनिया की समस्त भाषाओं की उपयोगिता तथा उद्‌देश्य 'अर्थ' की प्राप्ति हैं। समाज में 'सार्थक' भाषा को ही महत्त्व दिया जाता है। बिना अर्थ की भाषा को महत्त्व नहीं दिया जाता। अत: हम उसे भाषा ही नहीं कह सकते। अर्थविज्ञान का उद्‌देश्य, प्रयोजन अर्थ से संबंधित नियमों का निर्धारण एवं विवेचन है। विद्‌वानों के मतानुसार, अर्थविज्ञान में विवेचन किया जाता है कि 'अर्थ' क्या है? शब्द और अर्थ का क्या संबंध है? शब्द से अर्थ की प्राप्ति

कैसे होती है? अनेकार्थक शब्दों के अर्थ निर्णय के कौन से साधन हैं? किसी शब्द के अर्थ में परिवर्तन क्यों हो जाता है? आदि। डॉ. भोलानाथ तिवारी के अनुसार ''अर्थविज्ञान वर्णनात्मक (संरचनात्मक), ऐतिहासिक तथा तुलनात्मक इन तीनों प्रकारों का होता है।''

कुछ विद्वान अर्थविज्ञान को भाषाविज्ञान की शाखा मानते ही नहीं। अर्थविज्ञान का संबंध दर्शनशास्त्र से जोडा जाता है। ना कोई शक् की अर्थविज्ञान का सम्बन्ध दर्शनशास्त्र, मनोविज्ञान, तर्कशास्त्र आदि ज्ञान की शाखाओं से है। किंतु अर्थ प्राप्ति के लिए ही भाषा का प्रयोग होता है। भाषा की आत्मा अर्थ है। जिसके बिना भाषा-विज्ञान आगे बढ ही नहीं सकता। अत: कहा जा सकता है कि अर्थ-विज्ञान भाषाविज्ञान का अभिन्न अंग है।

अर्थ विज्ञान की परिभाषाएँ :

अर्थ विज्ञान की परिभाषाओं को जानने से पूर्व हमें अर्थ का कोशीय अर्थ जानना अनिवार्य होगा। 'रामचंद्र वर्मा'जी 'मानक हिंदी कोश' में 'अर्थ' का मतलब निम्न शब्दों में देते हैं - ''वह अभिप्राय, भाव या वस्तु जिसका बोध पाठक या श्रोता को कोई शब्द, पद या वाक्य पढने या सुनने पर अथवा कोई भावभंगी या संकेत देखने पर होता है। माने। (मीनिंग)''

- 'भोलानाथ तिवारी' ने अर्थविज्ञान को स्पष्ट करते हुए लिखा है - ''जैसे कि नाम से ही स्पष्ट हो जाता है- अर्थ विज्ञान 'अर्थ का विज्ञान' है। जिसमें भाषा के अर्थ-पक्ष का वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है।''

- भाषाविद् 'कार्नेप' ने अर्थ विज्ञान की परिभाषा को इसतरह स्पष्ट किया है - ''अर्थ विज्ञान उस सिद्धांत को समाहित करता है जिसे सामान्यतया अभिव्यक्तियों का अर्थ कहते हैं और इस प्रकार (यह) अभिव्यंजक भाषा (Meta Language) में अभिव्यंजित भाषा (Object Language) के कोशात्मक निर्माण की ओर ले जानेवाला अध्ययन है।''

- 'वाल्डविन' के अनुसार - ''अर्थविज्ञान ऐतिहासिक शब्दार्थों एवं शब्दों के अर्थों में परिवर्तन के इतिहास एवं विकास का व्यवस्थित विवेचन करनेवाला विज्ञान है।''

- भाषाशास्त्र - कोश में 'मेरियो पेई' ने अर्थविज्ञान को ''पदार्थ और अभिप्राय के मध्य के सम्बन्धों तथा शब्दों के अर्थों में परिवर्तन एवं इतिहास पर विचार करने वाला विज्ञान बताया है।''

- डॉ. नेमीचन्द्र श्रीमाल अर्थविज्ञान की परिभाषा देते हुए लिखते है - ''ज्ञान की जिस शाखा के अंतर्गत शब्दों के अर्थ, उनके परिवर्तन तथा परिवर्तन के कारण आदि पर सुव्यवस्थित रूप से विचार किया जाता है उसे अर्थ विज्ञान या अर्थ विचार कहते हैं। हिंदी में इसके अर्थातिशय, अर्थबोधन-शास्त्र, शब्दार्थ-विज्ञान आदि नाम भी प्रचलित है।''

अत: कहा जा सकता है कि, 'अर्थ विज्ञान' भाषा विज्ञान का अभिन्न अंग है। अर्थ विज्ञान वह विज्ञान है अभिव्यक्ति, शब्दों के अर्थों में परिवर्तन आदि का सुव्यवस्थित रुप से वैज्ञानिक अध्ययन करनेवाला शास्त्र है।

अर्थ विज्ञान का अंशात्मक इतिहास :

यह सर्वविदित है कि मनुष्य की उन्नति एवं पतन इतिहास पर निर्भर होता है। भाषा, मनुष्य से जुड़ा अभिन्न अंग है। भाषा का अभिन्न अंग अर्थ है। बिना वैज्ञानिक अध्ययन के हम उचित ध्येय प्राप्त नहीं कर सकते। अर्थ विज्ञान का अध्ययन करने के लिए उसका इतिहास जानना हमारे लिए लाभकारी होगा। अर्थविज्ञान के इतिहास पर दृष्टि डालना अध्ययन की दृष्टि से अनिवार्य है। अर्थ ज्ञान की शाखा 'भाषाविज्ञान' के अंतर्गत 'अर्थ विज्ञान' पर भारत तथा भारत के बाहर भी विचार कर रहे हैं, किया जा चुका है। जिसपर हम संक्षिप्त दृष्टि डाल सकते है -

भारत में अर्थ विज्ञान के अध्ययन की परंपरा सुदीर्घ काल से चली आ रही है। महाभारत के शांतिपर्व तथा वनपर्व से लेकर व्याकरण ग्रंथों तक अर्थ विज्ञान के अध्ययन की परंपरा की स्पष्ट आहट सुनाई देती है। 'यास्क' का 'निरूक्त' निर्वचन शास्त्र पर आधारित है किंतु फिर भी उसमें यत्र-तत्र अर्थ-विचार पर प्रकाश डाला गया है। 'निघण्टु' तथा 'निरुक्त' अर्थवैज्ञानिक विकास की पृष्ठभूमि प्रस्तुत करते हैं। भाषावैज्ञानिक विकास की पृष्ठभूमि प्रस्तुत करते हैं। भाषावैज्ञानिकों का मत है कि, ''व्युत्पत्ति और अर्थ विषयक विचार की दृष्टि से 'निरुक्त' विश्व का प्राचीनतम ग्रन्थ है तथा 'यास्क' ग्रीक दार्शनिक प्लेटो और अरस्तु से बहुत आगे है।'' भारतीय 'ब्राह्मण ग्रंथों में अर्थ विषयक अध्ययन की प्रचीति आती है जिसमें शब्द की व्युत्पत्ति तथा अर्थ देने का प्रयास किया गया है। ऋषियों के पाठ तथा प्रतिशाख्यों पर दृष्टि डालने पर ज्ञात होता हैं कि उनकी रूचि अर्थविषयक अध्ययन की ओर होती है। 'यास्क' के बाद 'पतंजलि' ने गद्य का समर्थतम साधन लेकर भाषा का सर्वाङ्गपूर्ण विवेचन किया है। 'महाभाष्य' में अर्थ-विज्ञान संबंधी काफी चर्चा मिलती हैं। प्रश्नोत्तर शैली में अनेक शंकाओं का निराकरण किया गया है, महाभाष्य अधिकतम अर्थ ग्रंथ ही है। पतंजलि के पश्चात 'कैयट' और 'नागेश' ने अर्थ विज्ञान पर अध्ययन किया है। डॉ. रामदेव त्रिपाठी के अनुसार, ''अर्थ विज्ञान के अर्थ विज्ञान की कोटि तक पहुँचाने का श्रेय भर्तृहरि के श्लोक बद्ध 'वाक्यपदीय' को तथा उसके व्याख्याता हेलाराज, पुण्यराज, नागेश कौण्डभट्ट आदि को है। नागेश ने 'लघुमंजूषा' तथा 'कौण्डभट्ट' ने 'वैयाकरण भूषण' स्वतंत्र ग्रंथ लिखकर अर्थ विज्ञान को दर्शन और विज्ञान का रूप दिया है।''

अर्थ विज्ञान, भाषा विज्ञान की नवीनतम शाखा मानी जाती है। बिना अर्थ के भाषा की कोई सार्थकता नहीं है। इसतरह भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन भारत में सदियों से चलता आ रहा है। अर्थ विज्ञान का प्राचीनतम प्रयोग महाभारत के वनपर्व में मिलता है -

> ''शुश्रुषा श्रवणं चैव गृहणं धारणं तथा।
> उहपोहोडर्थविज्ञानं तत्त्वज्ञानं च धीगुणा:॥''

19 वीं शताब्दी का अन्त और 20 वीं शताब्दी का प्रारम्भ इस क्षेत्र में नवीन उत्क्रांति का काल माना जा सकता है। जहाँ आधुनिक 'अर्थ विज्ञान' भाषाविज्ञान की नवीनतम शाखा कही जा रही है। डॉ. श्रीमाल के अनुसार 19 वीं शताब्दी का अन्त और 20 वीं शताब्दी का प्रारम्भ इस क्षेत्र में नवीन उत्क्रान्ति का माना जा सकता है। डॉ. श्रीमाल आगे कहते हैं - 1839 ई. में के. रैजिस ने 'लेटिन भाषा विज्ञान' पुस्तक में व्याकरण के एक पृथक अंग के रूप में अर्थविज्ञान पर भी विचार प्रस्तुत किए। विशेषज्ञ बार्वस्टेर ब्रील, एर्डमेन, जेवर्ग, मीलिट, पाल, वुन्ट आदि विद्वानों

ने इस काल में अर्थविज्ञान पर ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, सामाजिक बिन्दुओं पर विचार किया है। सन 1897 ई. में फ्रेंच विद्वान ब्रील ने 'ऐसे डी सेमेन्टिक्स' पुस्तक प्रकाशित पर अर्थविज्ञान को स्वतंत्र एवं सुव्यवस्थित रूपरेखा प्रदान की। सन् 1913 ई. में के. वीरोप ने अर्थविज्ञान का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया। स्विस विद्वान 'फर्डीनेण्ड दी सौसर' ने इस क्षेत्र में नवीनता का सुगपात किया। सन 1931 ई. में प्रो. स्टर्न की 'मीनिंग एण्ड चेंज ऑफ मीलिंग' का प्रकाशन हुआ जिसमें तर्कशास्त्र और मनोविज्ञान के दृष्टिकोन से अंग्रेजी शब्दों के अर्थ परिवर्तन पर प्रकाश डाला। 1933 ई. में पोलिस गणितज्ञ कोर्जवस्की की 'साईज एव सोनीटी' प्रकाश में आयी; जिसने शुद्ध अर्थ विज्ञान की विवेचना पर बल दिया। सन 1951 ई. में प्रो. स्टीफैन उल्मैन ने 'प्रिन्सिपल ऑफ सेमेन्टिक्स' लिखी जो ब्रील की 'ऐसे डी सेमेन्टिक्स' के पश्चात अर्थविज्ञान के क्षेत्र में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण उपलब्धि रही। इसमें अर्थ विज्ञान पर बहुत ही व्यवस्थित एवं कृमिक विचार हुआ है। इनकी ही 'वडर्स एण्ड देयर यूणण' अर्थविज्ञान पर दूसरी पुस्तक प्रकाशित हुई। अत: आगे अर्थ विज्ञान निरंतर प्रगतिपथ पर रहा है। इसका वैज्ञानिक, दार्शनिक, ऐतिहासिक आदि प्रणालियों से अध्ययन हो रहा है। आज भारत में 'भाषा विज्ञान' किताबों में अधिकांश विद्वानों ने एक अध्याय तक ही 'अर्थविज्ञान' को मर्यादित रक्खा दृष्टिगत होता है। डॉ. हेमंत कुमार ने 'बंगाली अर्थ परिवर्तन' नामक शोध प्रबंध लिखकर एक नया मार्ग ही खोला। हिंदी में डॉ. कपिल देव द्विवेदी ने 'अर्थ विज्ञान और व्यकरण दर्शन' शोध प्रबंध में पर्याप्त विवेचन किया मिलता है। सन् 1959 ई. में डॉ. हरदेव बाहरी ने 'हिंदी सेमेन्टिक्स' शोध प्रबन्ध लिखा जो इस क्षेत्र में वैज्ञानिक दृष्टिकोन को प्रस्तुत करता है। अत: अर्थ विज्ञान के इतिहास पर प्रकाश डालने पर ज्ञात होता है कि अर्थविज्ञान की परंपरा भारत में सु-दीर्घ काल से चली आ रही है। अर्थ विज्ञान पर पाश्चात्य विचारवंतों ने भी विचार प्रकट किए है।

अर्थ विज्ञान का क्षेत्र :

भाषा वैज्ञानिक डॉ. श्रीमाल के अनुसार प्राचीन भारतीय वाङ्मय में अर्थ और शब्द को ब्रह्मत्व निरूपण की दार्शनिक पीठिका से प्रस्थापित किया गया है। वस्तुत: अर्थ का सम्बन्ध ध्वनिविज्ञान या रूप विज्ञान की भाँति शब्द के बाहरी शरीर से नहीं है, अपितु उसकी आत्मा से है। इसका सीधा सम्बन्ध मनोविज्ञान और दर्शनतत्त्व से है; जिसमें तर्कशास्त्र भी सन्निहित है। आधुनिक युग में बहुत से विद्वानों ने इसे दार्शनिक दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया है। डॉ. श्रीमाल के अनुसार आधुनिक अर्थविज्ञान अध्ययन के निम्न रूप दृष्टिगोचर होते हैं -

(1) शुद्ध या सामान्य अर्थ विज्ञान

(2) दार्शनिक अर्थ विज्ञान

(3) वर्णनात्मक अर्थ विज्ञान

(4) विशिष्ट वर्णनात्मक अर्थ विज्ञान

(5) ऐतिहासिक अर्थ विज्ञान

(1) शुद्ध या सामान्य अर्थ विज्ञान : यह रूप नितान्त वैज्ञानिक सिद्धान्तों के निर्माण आदि से सम्बन्धित है। इसका अधिकांश भाग गणितीय सिद्धान्तों पर आधारित होता है।

(2) दार्शनिक अर्थ विज्ञान : अर्थ विज्ञान को दर्शन की परिभाषा से प्रस्तुत करना इस वर्ग का विषय माना जा

सकता है। भारतीय वैयाकरणों दार्शनिक न्यास्क, पतंजलि, भर्तुहरि, जैमिनी, वैशेषिक दर्शन आदि ने अर्थ का विशद दार्शनिक विवेचन किया है। भारतीय वैयाकरणों की तरह पाश्चात्य विद्वानों में लेडी वाल्बी, आग्डेन एवं रिचर्ड्स आदि के कार्य भी इसी क्षेत्र के हैं।

(3) वर्णनात्मक अर्थ विज्ञान : विश्व की सभी भाषाओं को आधार मानकर अर्थ विज्ञान के सिद्धांतो का सामान्य निरीक्षण-परीक्षण इस वर्ग से सम्बन्ध रखता है। आधुनिक काल में अधिकांश भाषा वैज्ञानिकों ने इसी रूप में अध्ययन प्रस्तुत किया है।

(4) विशिष्ट वर्णनात्मक अर्थ विज्ञान : किसी भाषा विशेष के सन्दर्भ में उसकी ध्वनियों, शब्दों, शब्द-रुपों, व्याकरण रुपों, अर्थ परिवर्तन के कारणों, उसकी दिशाओं आदि का अर्थ-विवेचन इस प्रकार के अर्थ विज्ञान का क्षेत्र होता है।

(5) ऐतिहासिक अर्थ विज्ञान : इसके भी दो रूप सामने आते हैं। किसी भाषा विशेष के चुने हुए शब्दों को लेकर उनका ऐतिहासिक क्रम से अर्थ-विवेचन इसका एक रूप है तथा अनेक भाषाओं के कुछ शब्दों का सामान्य या तुलनात्मक दृष्टि से ऐतिहासिक अर्थ-विवेचन इसका दूसरा रूप है।

अत: दृष्टिगत होता है कि आधुनिक भाषाविदों ने अर्थ विज्ञान के कई रूपों पर विचार किया है।

4.2.2 अर्थबोध में बाधा :

'अर्थ' की प्रतीति ही भाषा की उपयोगिता और भाषा का उद्देश्य है। निरर्थक भाषा को कोई महत्त्व नहीं है। अर्थ विज्ञान का विवेच्य विषय अर्थ से सम्बन्धित नियमों का निर्धारण एवं विवेचन है। भारत में भाषा-चिंतन बहुत ही प्राचीन रहा है। 'यास्क' ने कहा कि 'बिना अर्थ समझे शब्द को दुहराना बेकार है।' इस बात को उद्धृत करते हुए कहा है -

''स्थाणुरयंभारहार: किलाभूदधीत्यवे दंनविजानारी योऽर्थम्।
योऽर्थज्ञ इत् सकलं भद्रम्श्नुते नाकमेति ज्ञानविधूतपात्मा॥''
(निरुक्त, 1/10)

अर्थात, ''बिना अर्थ जाने वेदों का अध्ययन करनेवाला महज भार होता है अर्थात समस्त कल्याण का भागी बनता है, तथा ज्ञानज्योति से ब्रह्मत्व प्राप्त करता है।'' अत: अर्थ भाषा का लक्ष्य है, प्रतिपाद्य है। शब्द अर्थ के कारण ही सजीव है। शब्द अमूर्त होता है, अर्थ के द्वारा ही वह मूर्त होता है। अर्थ वास्तव में मानसिक प्रत्यक्ष की वस्तु है। शब्द, अर्थ का साधन है, अर्थ, शब्द का साध्य।

अर्थ की प्रतीति :

शब्द से ही अर्थ की प्राप्ति होती है। अर्थात् प्राप्ति। प्रतीति को अर्थ कहते हैं। शब्द का सार्थक होना अर्थ प्रकाशित करने में ही है। नदी, सिंह, कुत्ता, पहाड, पर्वत, आग, नदी कहने से श्रोता सहज ही समझ लेता है कि कुत्ता

अर्थात चौपाया पशु जो भूँकता है। नदी, सिंह, पहाड, पर्वत आदि की इसी तरह से अर्थ की प्रतीति होती है। अर्थप्राप्ति से तात्पर्य यह कि विचार या भाव पहले से मन में रहते हैं, इस विचार या भाव (अर्थ) को शब्दों द्वारा सिर्फ व्यक्त किया जाता है। यह बात भी महत्त्वपूर्ण है कि शब्द जिसे अर्थ प्राप्त हो, जो सार्थक हो उससे प्रकाशित होने वाले अर्थ का ज्ञान वक्ता-श्रोता दोनों को हो। भर्तृहरि ने अर्थ का लक्षण निरुपण करते हुए लिखा है -

''यास्मिंस्तुच्चरिते शब्देयदायोऽर्थः प्रतीयते।
तमाहुरर्थ तरचेव नान्यदपरच लक्षणम्॥''

(वाक्यपदीय, 2/230)

''शब्दों के उच्चारण से जिस अर्थ की प्रतीति होती है - वही उसका अर्थ है, अर्थ का कोई दूसरा लक्षण नहीं है।'' डॉ. भोलानाथ तिवारी के अनुसार भर्तुहरि की बात अपने स्थान पर ठीक होते हुए भी कुछ आलोचना की अपेक्षा रखती हे। क्या अर्थ केवल 'शब्द' का हो होता है? 'राम मारे शर्म के पानी-पानी हो गया' में 'पानी-पानी हो' शब्द तो नहीं हैं, किंतु यहाँ अर्थ की अपेक्षित प्रतीति केवल 'पानी' शब्द से नहीं हो सकती। वह 'पानी-पानी होना' से ही हो सकती है। अत: भोलानाथ तिवारी के अनुसार 'किसी भी भाषिक इकाई (वाक्य, वाक्यांश, रूप, शब्द, मुहावरा आदि) को किसी भी इन्द्रिय (प्रमुखतः कान, आँख) से ग्रहण करने पर जो मानसिक प्रतीति होती है, वही अर्थ है।'

अर्थ की प्रतीति दो प्रकार से होती है -

(क) आत्म-अनुभव से - अर्थात स्वयं किसी चीज का अनुभव करके। उदा. 'चीनी मीठी होती है' में मीठी के 'अर्थ की प्रतीति स्वयं चीनी रखने से हो जाती है। पानी, गर्मी, धूप, ठंड़, नमकीन, खट्टा आदि के अर्थ की प्रतीति भी इसी प्रकार हो सकती है।

(ख) पर-अनुभव से - अनेक क्षेत्र ऐसे भी हो सकते हैं जहाँ हमारी पहुँच नहीं होती, उस क्षेत्र से सम्बद्ध शब्दादि के अर्थ की प्रतीति के लिए हमें दूसरों के अनुभव या ज्ञानपर निर्भर रहना पडता है। उदाहरण के लिए, हम में से अनेक लोगों ने 'जहर' नहीं देखा होगा, किंतु दूसरों से ऐसा सुन रखा है कि जहर जीव को मार डालने वाला होता है। अत: 'जहर' शब्द के अर्थ की प्रतीति का मूलाधार आत्म-अनुभव न होकर पर-अनुभव है। ऐसे ही अन्य अनेक प्रकार के शब्द हो सकते हैं।

शब्द और अर्थ का सम्बन्ध :

यह सवाल हमेशा रहा है कि 'शब्द और अर्थ' का क्या सम्बन्ध है ? क्यों पानी कहने से 'पानी' का ही बोध होता है। 'मिट्टी' या काठ का नहीं। क्या 'पानी शब्द और पानी द्रव्य का कोई सम्बन्ध है? हम देख चुके हैं कि 'भाषा यादृच्छिक ध्वनि-प्रतिकों की व्यवस्था है।' तात्पर्य यह कि भाषा के शब्द प्रतीत हैं। भोलानाथ तिवारी के मतानुसार कुछ अपवादों को छोड दें तो शब्द और अर्थ का कोई स्वाभाविक एवं सहज संबंध नहीं है। समाज ने यह संबंध मान लिया है, या कहें कि समाज ने विभिन्न शब्दों को विभिन्न अर्थों में प्रतीक रूप में स्वीकार कर लिया है। शब्द विशिष्ट

अर्थों के प्रतीत या संकेतिक हैं, इसीलिए उन शब्दों के प्रयोग से श्रोता उन्हीं अर्थों को ग्रहण करता है। उदाहरण के लिए, समाज ने 'पानी' द्रव्य के लिए संकेत या प्रतीत मान रखा है, इसीलिए पानी कहने से उसी का बोध होता है, किसी और चीज का नहीं। हम जानते हैं कि, 'बाथरुम', 'टॉयलेट', 'क्लोकरूम' के अर्थ इसी प्रकार मान लेने से बदल गए हैं। संकेत-गृह के कारण ही शब्द अर्थ विशिष्ट का बोध कराता है। अर्थबोध में बाधा से परिचित होने से पूर्व हमें अर्थबोध के साधनों पर दृष्टि डालना आवश्यक होगा।

अर्थबोध के साधन :

शब्द और अर्थ का सम्बन्ध अटूट है। शब्द के अर्थ को हम कैसे प्राप्त करते, कैसे जान पाते हैं, कैसे ग्रहण करते हैं आदि बातों को जानना आवश्यक है। शब्द संकेत होते हैं अत: अर्थ संकेतक भी हम कह सकते हैं। भारतीय परम्परा में अर्थबोध के आठ साधन माने गए हैं।

> ''शक्तिग्रहंव्याकरणोपमान - कोशान्तवाक्याद्
> व्यवहारतश्यवाक्यस्य शेषाद् निवृतेर्वदंति
> सिद्धपदस्य बृद्धा:॥''

1) व्याकरण, 2) उपमान, 3) कोश, 4) आप्तवाक्य, 5) व्यवहार, 6) वाक्यशेष-प्रकरण, 7) विवरण, व्याख्या (निवृत्ति), 8) ज्ञात पद का सानिध्य। विशेषज्ञों के अनुसार इनका विवेचन निम्नांकित है। -

1) व्याकरण : व्याकरण से अर्थबोध होता है। शब्द रूपों के अर्थ-ज्ञान के लिए यह अन्यतम है। व्याकरण से रूपों का ज्ञान होता है। कुन्ती पुत्र की जगह इसका रूप हो ''कौन्तेय'' तब कौन्तेय का अर्थ व्याकरण द्वारा ही होता है और एक उदाहरण कि हमें 'मानव' का अर्थ क्या है यह पता हो और यह भी पता हो कि हिंदी में 'ता' प्रत्यय भावबोधक संज्ञा बनाने के लिए आता है तो हम 'मानवता' का अर्थ जान जाएँगे। इसतरह अर्थबोध के साधनों में व्याकरण महत्त्वपूर्ण है।

2) उपमान : उपमान का अर्थ सादृश्य होता है। किसी वस्तु के समान वस्तु का अर्थबोध उस वस्तु को उपमान बनाकर कराया जा सकता है। अत: उपमान का अर्थ सादृश्य होता है। जैसे - गाय के नीलगाय, कुत्ते से भेड़िया आदि।

3) कोश : भाषा पर अधिकार रखने वाले विद्वानों को भी कोश की आश्यकता पडती है। कोश में शब्दों का अर्थ दिया होता है। पढते समय जिन शब्दों का अर्थ हम नहीं जान सकते उन्हें कोश द्वारा प्राप्त कर सकते हैं। कोश अर्थपक्ष को तो प्रकट करता है साथ ही व्याकरण पक्ष को भी। यानी कोश के अनुसार शब्द का अर्थ भी दिया जाता है, एक शब्द के कई अर्थ भी होते हैं। साथ ही वह एकवचनी है या अनेकवचनी, संज्ञा, विशेषण, सर्वनाम, क्रिया, स्त्रीलिंगी, पुल्लिंगी आदि बातों को भी दिया जाता है। इसलिए अर्थबोध के साधनों में कोश एहम् भूमिका निभाता है।

4) आप्तवाक्य : आप्त का अर्थ होता है यथार्थवक्ता। यथार्थवक्ता द्वारा जो कहा गया है वही आप्त वाक्य

है। संसार की अनेक बातें हम पढकर आत्मसाथ कर सकते हैं लेकिन कुछ ऐसी बातें भी हैं जिन्हें जानने का प्रत्यक्ष साधन कुछ भी नहीं है। ऐसी दशा में किसी के कथन पर विश्वास करने के अतिरिक्त कोई साधन नहीं रहता। उदा. 'आत्मा' के अर्थ के लिए दार्शनिकों, आध्यात्मिकों के कथनपर विश्वास करना पडता है।

5) व्यवहार : व्यवहार को हम अर्थज्ञान का प्रथम सोपान मान सकते है क्योंकि भाषा व्यवहार से सीखी जाती है। आरम्भ में माता-पिता से बच्चा अलग-अलग वस्तुओं का परिचय प्राप्त करता है। अत: व्यवहार के द्वारा ही वस्तुओं से परिचय होता है। धीरे-धीरे घर से समाज, पाठशाला आदि के जरिए मनुष्य शब्दकोश बढाते हुए भाषा अर्जित करता जाता है। हम कह सकते है कि व्यवहार अर्थबोध का प्रमुख साधन है। समाज में तरह-तरह के व्यवहारों से वह भाषा के अनेक शब्दों के अर्थ को प्राप्त करता है।

6) वाक्यकोष : वाक्यकोश अर्थात 'प्रकरण' द्वारा हम आसानी से अर्थ-ज्ञान कर लेते है। जिसे 'वाक्य-कोष' भी कहा गया है। अनेकार्थी शब्दों का विशेष प्रयोग में प्रकरण या संदर्भ से अर्थ ज्ञात होता है। 'सैंधव' का अर्थ 'घोड़ा' और 'नमक' दोनों होता है - ''सैंधव ले आओ'' का अर्थ खाने के समय निश्चित रूप से नमक ही होगा।

7) विवरण : इसे 'व्याख्या' और 'विवृत्ति' भी कहा गया है। बहुत से शब्दों का अर्थबोध व्याख्या के द्वारा ही कराया जा सकता है। जैसे - भाषाविज्ञान का 'अघोष', दर्शन का 'विशिष्टाद्वैत'। इसी तरह रीति, वृत्ति, वक्रोक्ति, स्यादवाद, विवर्तवाद आदि शब्द जिनके अर्थज्ञान के लिए व्याख्या की आवश्यकता है।

8) ज्ञात पद का सानिध्य : अर्थबोध के लिए हमेशा ही कोश उलटने की जरुरत नहीं होती। आसपास के शब्दों के सानिध्य से अज्ञात शब्दों का अर्थ कभी-कभी आसानी से प्राप्त हो जाता है। जैसे - बम्बैया, सुकुल, लंगडा, कलकतिया आदि। अर्थबोध का यह भी एक महत्त्वपर्ण साधन है।

अर्थबोध में बाधा :

अर्थबोध के साधनों का संक्षिप्त परिचय लेने के पश्चात, अब बाधक कारणों पर दृष्टि डालते हैं। विशेषज्ञों के अनुसार - अर्थबोध के बाधक कारण -

1) समानाधिकरण्य का अभाव
2) संकेत विस्मरण
3) भ्रांतअर्थज्ञान
4) अनभ्यास
5) अतिदूरता
6) अतिसामीप्य
7) इन्द्रियघात
8) मन की अस्थिरता

9) व्यवधान

10) अभिभव

1) समानाधिकरण्य का अभाव : अर्थग्रहण के लिए वक्ता-श्रोता की कल्पना करें तो वक्ता के वाचिक कथन का श्रोता अर्थ ग्रहण करता है। वक्ता और श्रोता के बीच सामानाधिकरण्य का अभाव होने पर अर्थग्रहण में बाधा आती है। वक्ता श्रोता के बीच भाषिक समानाधिकरण्य, बौद्धिक समानाधिकरण्य, भावात्मक सामानाधिकरण्य आदि के कारण अर्थबोध में बाधा उत्पन्न हो सकती है।

2) संकेत विस्मरण : किसी भाषा में शब्दों की संख्या दो-चार नहीं होती बल्कि हजारों लाखों शब्दों को याद रखना आसान नहीं होता। अत: कभी-कभी ऐसा होता है कि ज्ञान शब्द तथा पढे हुए शब्द विस्मृत हो जाते हैं। जैसे किसी ने 'वज्र' शब्द पढ़ा हो और किसी के पूछने पर अथवा पढ़ते समय 'वज्र' शब्द का अर्थ स्मृति में न हो। तब ऐसी स्थिती में अर्थप्राप्ति में बाधा उत्पन्न होती है।

3) भ्रांतअर्थज्ञान : भ्रांतअर्थज्ञान से तात्पर्य है शब्द का गलत अर्थ जानना। गलत अर्थ या तो प्राप्त होता है या स्वयं होता है। यदि कच्चा गुरू हो और शब्द का अर्थ देते समय गलत अर्थ देता हो तो शिष्य के संस्कार में भ्रांतअर्थज्ञान बैठ जाता है। शिक्षक बहुत जानें - यह जरुरी नहीं है, लेकिन यह जरूरी है कि जो जाने ठीक जाने। सारांशत: शब्द का सम्यक् अर्थ प्राप्त न होने पर अर्थ की प्रतीति नहीं हो सकती।

4) अनभ्यास : ज्ञान तो अभ्यास से ही होता है। अक्षरज्ञान हो या हिसाब करना हो, भाषाविद् बनना हो अभ्यास प्राप्त ज्ञान भी ध्यान से उतर जाता है। शब्द का अर्थज्ञान भी अभ्यास की माँग करती हैं। प्रचलित शब्द का अर्थ याद में रहता है किंतु जो शब्द प्रचलित नहीं है अभ्यास की कमी के कारण मन से उतर जाते हैं। शब्दों का अर्थज्ञान मस्तिष्क में रहने के लिए जरुरी है कि अभ्यास करें नहीं तो अनभ्यास के कारण अर्थबोध में बाधा उत्पन्न हो सकती है।

5) अतिदूरता : यंत्र की बात दूसरी है कि अमरिका में बोलने वाले को हम भारत में सून सकते हैं किंतु बगैर यंत्र के हम किसी बड़ी कक्षा का उदाहरण लेते है तो जान सकते हैं, पिछे बैठे हुए छात्राओं को अतिदूरता के कारण स्पष्ट सुनाई नहीं देता है तो अर्थ प्रतीति में बाधा उत्पन्न होती है। जब सुनाई ही नहीं देगा तब समझेगा कैसे?

6) अतिसामिप्य : कान में मुँह सटाकर कहने पर भी ठीक से सुनाई नहीं पड़ता। अत: अति दूर होने में भी बाधा और अति निकट होने में भी बाधा।

7) इन्द्रियघात : इन्द्रियघात से तात्पर्य है इन्द्रिय में खराबी होना। वक्ता ठीक हो, आवाज भी बडी हो किंतु श्रोता अगर बधिर हो तब भी अर्थ में बाधा होगी। अर्थग्रहण के लिए इन्द्रियों का ठीक होना जरूरी है।

8) मन की अस्थिरता : अस्थिर मन किसी चीज को ग्रहण नहीं करने देता। अगर मन स्थिर नहीं है तो सामने कोई बोलता भी होगा तो सुनाई नहीं देगा। सुनाई भी देगा तो ध्वनि सुनाई देगी - क्या बोल रहा है इसका ग्रहण अस्थिर मन से सम्भव नहीं है।

9) व्यवधान : वैसे तो व्यवधान कई तरह के होते है। इन्द्रियघात, मन की अस्थिरता आदि सब ही व्यवधान है। किंतु यहाँ व्यवधान के तात्पर्य ध्वनिबाधक चीज आदि से है। जैसे दीवार के इस पार बोलने वाला दीवार के उस पार को अपना अभिप्राय नहीं पहुँचा सकता।

10) अभिभव : अभिभव से तात्पर्य है दबा देना अत: दबा देने को अभिभव कहते है। तेज आवाज धीमी आवाज को दबा देती है। नगाडे के कर्कश तीव्र ध्वनि में बाँसुरी के मधुर स्वर दब जाते हैं। जहाँ कोलाहल हो वहाँ भाषा सम्प्रेषित नहीं कर सकते। कोलाहल में भाषण, वार्ता सुनाई नहीं देती। अत: अभिभव के कारण अर्थबोध में बाधा उत्पन्न होती है।

4.2.3 अर्थ परिवर्तन के कारण और दिशाएँ :

परिवर्तनशीलता प्रकृति का नियम है। अनेक युग आते गए, मानव बदलता गया, न जाने कितने चेहरे बदले, भाषा बदली, संस्कृति बदली, सभ्यता और जीवन की ओर देखने का नजरिया भी बदलता गया। इन सब का सामना भाषा को करना पडा। भाषा में शब्द बदले, लहजा बदला और अर्थ भी बदलते गए। भाषाविद् 'ग्रे' के अनुसार ''केवल अभी गढे गए शब्दों को छोडकर बहुत कम शब्द यदि कोई हों तो, अपने मूल अर्थ को बचाकर रख सके हैं और असंख्य उदाहरणों में उनके द्योत्यर्थ इतने बदल गए हैं कि केवल धैर्य और जटिल अनुसंधान ही उनके प्रारम्भिक अर्थों को बता सकते हैं।'' प्रत्येक शब्द के अर्थ प्राप्त होते हैं। शब्द को प्राप्त अर्थ सर्वदा वहीं (एकही) रहें ऐसा नहीं होता। वह सर्वदा एक ही नहीं रहता बल्कि उसमें परिवर्तन होता रहता है। ध्वनि और भाषा की तरह अर्थ भी परिवर्तनशील रहा है। अर्थ समय की तरह स्थिर नहीं रह पाया है। इसमें निरंतर फिर वह लचीला क्यों न हों बदलाव होता रहा है। भाषाविदों ने यह भी कहा है कि ''अर्थ, भाषा का सबसे अधिक परिवर्तनशील तत्त्व है।'' परिवर्तन के क्रम में किसी शब्द को पुरानी खाले हट जाती है और वह नये वस्त्र की भाँति नया अर्थ प्राप्त कर लेता है। उदाहरण के लिए अगर हम संस्कृत शब्द लेते है। 'आकाशवाणी' तो संस्कृत में इसका अर्थ 'देववाणी' है। किंतु आज आकाशवाणी का अर्थ परिवर्तित होकर (हिंदी में) 'रेडिओ' (ऑल इंडिया रेड़ियो) हो गया है। अर्थ परिवर्तन में भौगोलिक, भौतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक अथवा बौद्धिक कारणों की भूमिका सक्रिय रूप से पाई गई है। अर्थ परिवर्तन होता रहा है, हो रहा है और होता रहेगा। अत: कहा जा सकता है कि भाषा के शब्दों में अर्थ-परिवर्तन एक चिरन्तन-प्रक्रिया है। अर्थ परिवर्तन का पता परिवर्तन हो जाने के पश्चात ही लगता है। अत: कुल मिलाकर अर्थ-परिवर्तन के विशेषज्ञों के अनुसार दिए गए कारणों को इस रूप में रेखांकित किया जा सकता है-

अर्थ परिवर्तन के कारण :

1) बल का अपसरण

2) वातावरण में परिवर्तन

(अ) भौगोलिक वातावरण, (ब) सामाजिक वातावरण, (क) प्रथा या प्रचलन-सम्बन्धी वातावरण

3) नम्रता प्रदर्शन

4) आधार सामग्री के आधार पर वस्तु का नाम

5) निर्माण-क्रिया के आधर पर वस्तु का नाम

6) शब्द का एक भाषा के दूसरी भाषा में जाना

7) जानबुझकर नये अर्थ में प्रयोग

8) अशोभन के लिए शोभन का प्रयोग

(क) अशुभ या बुरा, (ख) अश्लील, (घ) अन्धविश्वास, (ड) गंदे या छोटे कार्य

9) अधिक शब्दों के स्थान पर एक शब्द का प्रयोग

10) सादृश्य

11) अज्ञान

12) पुनरावृत्ति

13) एक शब्द के दो रूपों का प्रचलन

14) प्रयोगाधिक्य से अर्थ का घिस जाना

15) किसी राष्ट्र, जाति अथवा सम्प्रदाय के प्रति मनोभाव

16) एक वर्ग के एक शब्द में अर्थ परिवर्तन

17) साहचर्य

18) किसी शब्द, वर्ग या वस्तु में एक विशेषता का प्राधान्य

19) व्यंग्य

20) भावावेश

21) व्यक्तिगत योग्यता

22) शब्दों में अर्थ का अनिश्चय

23) वस्तु का नाम वर्ग को देना

24) आलंकारिक प्रयोग

25) दूसरी भाषा का प्रभाव

26) पीढ़ी परिवर्तन

27) एक भाषा-भाषी लोगों का अलग-अलग विकास

1) बल का अपसरण : शब्द का उच्चारण करते समय यदि केवल एक ध्वनि पर बल देने लगे तो धीरे-धीरे शेष ध्वनियाँ कमजोर पड कर लुप्त हो जाती हैं। ध्वनि की ही भाँति अर्थ में भी यह 'बल' काम करता है। किसी शब्द के अर्थ के प्रधान पक्ष से हटकर, बल यदि दूसरे पक्ष पर आ जाता है, तो धीरे-धीरे वही अर्थ प्रधान हो जाता है और प्रधान अर्थ लुप्त हो जाता है। जैसे - 'गोस्वामी' शब्द का आरम्भ का अर्थ था, 'बहुत-सी गायों का स्वामी।' बहुत सी गायों का स्वामी 'धनी' होगा अत: माननीय भी हुआ। वहीं एक और भावना कार्य करने लगी वह यह कि जो अधिक गायों की सेवा करेगा, वह धर्मपरक भी होगा। इस प्रकार, बल के अपसरण से 'गोस्वामी' शब्द 'गायों के स्वामी' के अर्थ से चलकर 'माननीय धार्मिक व्यक्ति' का वाचक हो गया। इसी अर्थ में यह मध्ययुगीन सन्तों के नाम

(गोसाई तुलसीराम) के साथ प्रयुक्त होता है। यों बाद में 'गोस्वामी' की व्याख्या 'इंद्रियों का स्वामी' के अर्थ में भी की गई, लेकिन वह बाद में व्याख्या मात्र है। मूल अर्थ वह था नहीं। अब तो गोस्वामी या गोसाई नाम की एक जाति भी हो गई है।

2) वातावरण में परिवर्तन : वाताावरण परिवर्तन हो जाने से भी कुछ शब्दों के अर्थ में परिवर्तन हो जाता है। वातावरण कई प्रकार के हैं अत: उन्हें अलग-अलग लेना उचित होगा।

(अ) भौगोलिक वातावरण : प्राकृतिक सम्पदा प्राय: सभी स्थानों पर होती है, किंतु सभी स्थानों पर वह एक-सी नहीं हो सकती। नदी, पर्वत, पेड़-पौधे, पशु-पक्षी आदि में स्थान भेद के अनुरूप भेद होता है। उदाहरण के तौर पर हम मान ले कि हम एक ऐसे स्थान पर रह रहें हैं जहाँ 'क' नाम का पेड़ अधिक है और उससे हमें लाभ है। थोडे दिन के लिए हम वहाँ से हटकर कहीं और चले गए जहाँ वह पेड़ तो नहीं है पर एक दूसरा पेड उसी प्रकार बहुतायत में मिलता है, साथ ही उसी पेड़ की भाँति लाभकर भी है। ऐसी दशा में यह स्वाभाविक है कि हम उसी पुराने नाम से नए पेड़ को भी पुकारने लगे। वेदों की प्राचीनतम् ऋचाओं में 'उष्ट्रा' का प्रयोग एक प्रकार के जंगली बैल के लिए हुआ है, पर बाद में संभवत: जब आर्य मरूभूमि में आ गए थे, इसका प्रयोग ऊँट के लिए होने लगा।

(ब) सामाजिक वातावरण : एक ही भाषा में एक ही समय में समाज के वातावरण के अनुसार शब्दों का अर्थ परिवर्तित होता रहता है। अँग्रेजी के मदर (Mother) और सिस्टर (Sister) शब्द का अर्थ साधारणत: कुछ और है। इसी प्रकार सभा में व्याख्यान देने वाले के 'भाई' और 'बहन' शब्द कुछ दूसरे अर्थ रखते हैं और घर में भाई-बहन का प्रयोग कुछ दूसरा अर्थ रखता है। किसी ऑफिस में कार्य करने वाले को रविवार के दिन देर तक सोते रहने पर जब उसकी पत्नी 'अरे भाई उठिए' कहकर जगाती है तो उसका आशय उन महाशय से साधारण 'भाई' का सम्बन्ध जोडने का कभी नहीं रहता। इस प्रकार वातावरण के अनुसार शब्दों का अर्थ परिवर्तन होता रहता है।

(क) प्रथा या प्रचलन-सम्बन्धी वातावरण : लोक प्रथाए या रीति-रिवाज का प्रचलन भी शब्दों में अर्थपरिवर्तन उपलब्ध करते रहते हैं। लौकिक प्रथाएँ तथा रस्म- रिवाज भी समय के अनुसार परिवर्तित होते रहते है। इस वातावरण के परिवर्तन में ऐसा होता है, कि पुरानी प्रथाओं के कुछ शब्द तो लुप्त हो जाते हैं, किंतु कुछ शब्द नए अर्थ में प्रयुक्त होने लगते हैं। वैदिक शब्द 'यजमान' यज्ञ करनेवाले के लिए प्रयुक्त होता था। यज्ञ की प्रथा समाप्त होने के साथ-साथ उसका वह अर्थ भी समाप्त हो गया। किंतु यजमान यज्ञ कराने वाले को कुछ देता था; अत: आज जो भी ब्राह्मण या नाई-धोबी को नियमित रूप से देता है, 'यजमान' कहलाता है। 'स्वयंवर' की प्रथा लुप्त हो जाने पर भी 'वर' शब्द 'दूल्हा' के अर्थ में प्रयुक्त होता है, जबकि इसके मूल अर्थ में 'चयन' का भाव छिपा हुआ है। ऐसे अर्थपरिवर्तन होनेवाले शब्द अनेकानेक मिलते हैं।

3) नम्रता प्रदर्शन : नम्रतावश ऐसे शब्दों का प्रयोग प्राय: ऐसे अर्थ में कर दिया जाता है, जो उस शब्द का वास्तविक अर्थ होता नहीं। इसीकारण नम्रता प्रदर्शन से शब्दों के अर्थों में भारी परिवर्तन हो जाता है। उदाहरण के लिए किसी आदरणीय व्यक्ति को यह नहीं कहते कि 'आज आप मेरे घर पर आइए' अपितु कहते हैं, 'आप मेरी कुटिया

को पवित्र कीजिए।' वस्तुत: पवित्र करना का अर्थ 'आना' नहीं हैं, किंतु नम्रता तथा 'आना' अथवा 'उपस्थित होना' अर्थ में इसका प्रयोग होने लगा है। अत: 'पवित्र करना' का अर्थ में ऐसे संदर्भों में 'आना' या 'उपस्थित होना' भी हो गया है। इस प्रकार इसका अर्थ परिवर्तित हो गया है। 'आपका दौलतखाना कहाँ है', मेरा गरीबखाना यही है, 'श्रीमान् किन-किन अक्षरों को सुशोभित करते हैं (क्या नाम है?)' आदि अनेकानेक अन्य प्रयोगों में भी अधोरेखित अक्षरों में अंकित अंशो के अर्थ परिवर्तन हुए है।

4) आधार सामग्री के आधार पर वस्तु का नाम : कभी-कभी जब कोई नई वस्तु बनती है, तो किसी अन्य अच्छे नाम के अभाव में उसे सामग्री के नाम से ही पुकारने लगते हैं, इसप्रकार सामग्री के नाम के अर्थ में परिवर्तन हो जाता है। 'शीशा' मूलत: सामग्री का नाम है। पहले धातु के दर्पण बनते थे किंतु वे बहुत अच्छे नहीं होते थे। बाद में दर्पण शीशे के बनने लगे तो दर्पण को भी शीशा कहने लगे। इस प्रकार 'शीशा' शब्द के अर्थ में परिवर्तन आ गया।

5) निर्माण-क्रिया के आधर पर वस्तु का नाम : निर्माण क्रिया के आधार पर वस्तु का नामकरण कर देते हैं, और तब भी उस शब्द के अर्थ में परिवर्तन आ जाता हैं। संस्कृत में ग्रंथ धातु का अर्थ है 'गूँथना', 'एक में सिलना' 'एक में बाँधना' आदि। भारत में भोजपत्र पर लिखकर इन्हें एक में सिलते या ग्रंथित कर देते थे, इसीलिए पुस्तक के लिए 'ग्रंथ' (जो गूँथा गया हो) शब्द का प्रयोग चला।

6) शब्द का एक भाषा के दूसरी भाषा में जाना : कोई शब्द जब एक भाषा से दूसरी भाषा में जाता है तो उसमें प्राय: अर्थ - संकोच हो जाता है। इसका कारण यह है कि स्त्रोत भाषा में उसकी अर्थ-परिधि बडी होती है और वह शब्द दूसरी भाषा में अपनी पूरी अर्थ-परिधि के साथ न आकर केवल सीमित अर्थ के साथ आता है। उदाहरण के लिए अंग्रेजी का 'कोट' शब्द लें अँग्रेजी में इसका अर्थ कोट, आवरण, तह, लेप आदि है किंतु हिंदी में यह शब्द केवल पहले जाने वाले 'कोट' के अर्थ में ही आया है।

7) जानबुझकर नए अर्थ में प्रयोग : कभी-कभार ऐसी आवश्यकता आती है कि पुराने शब्द का किसी नए अर्थ में प्रयोग कर दिया जाता है, तथा शब्द में अर्थपरिवर्तन हो जाता है। उदाहरण के लिए, 'रेड़ियो' के लिए कोई ठीक शब्द न पाकर कविवर सुमित्रानंदन पंत ने 'आकाशवाणी' का प्रयोग किया और यह शब्द हिंदी में चल पड़ा। परिणामत: 'देववाणी' के साथ इसका अर्थ रेडियो भी हो गया।

8) अशोभन के लिए शोभन का प्रयोग : संसार में अच्छी बातों की तरह बूरी बातें भी होती है इन्हीं को हम अशोभन बातें कहते है। मनुष्य उनसे दूर रहना चाहता हैं। किंतु मनुष्य चाहकर भी उनसे दूर नहीं रह पाता, इसलिए वह उन भावनाओं को शोभन शब्दों से ढ़ँक देता हे। इसके कई भेद हैं जिन्हें बाँट विचार किया जा सकता हे -

(क) अशुभ या बुरा : अशुभ प्रतीत होने वाले कार्यों या घटनाओं को शोभन शब्दों द्वारा व्यक्त किया जाता है। मरना सर्वाधिक अशुभ माना जाता है इसलिए किसी के मरने के पश्चात स्वर्गवास, द्वेलोक होना, पंचत्व को प्राप्त होना। गंगालाभ, गोलोकवास आदि शब्दावली प्रयुक्त की जाती है। हम 'हुजूर की तबीयत खराब है' न कहकर 'हुजूर के दुश्मनों की तबीयत नासाज है' कहने की प्रथा है। इसतरह हम अशुभ कार्यों, बातों या घटनाओं को घुमा-

फिरा कर अच्छा बनाकर कहना पसंन्द करते है।

(ख) अश्लील : समाज में अश्लीलता असामाजिकता की निशानी मानी जाती है, इसलिए अश्लील या घृणित समझेजाने वाली अभिव्यक्ति को घूमा-फिराकर व्यक्त किया जाता है। टट्टी जाने को मैदान जाना, शौच जाना, नदी जाना कहते हैं।

(ग) कटुता या भयंकरता : अशुभ और अश्लीलता की तरह कटु और भयंकर भी मनुष्य को अप्रिय हैं। भोजपुरी प्रदेश में साँप को 'कीरा', 'चेवर', या 'रसरी' तथा उसके काटने को 'छूना' या 'सूँघना' कहते हैं। उत्तरी भारत में चेचक निकलने को 'माता, माई या महारानी ने कृपा की है' कहा जाता है।

(घ) अन्धविश्वास : दुनिया में बहुत से लोग ऐसे हैं जो अन्धविश्वासी हैं। कईं लोगों में ऐसा अन्धविश्वास है कि पति, स्त्री, गुरू और बडे लड़के आदि का नाम लेना पाप है। पति के बारे में यह विषय बहुत कठिन है। कारणवश 'पंडितजी', 'ऊलोग', 'बिटिया के बाबू', 'आदमी' आदि शब्दों का अर्थ पति हो गया है। पति लोग भी 'मालकिन' या अपने लड़के-लड़की के नाम के साथ माँ शब्द लगाकर अपनी स्त्री को बुलाते हैं। इस तरह अन्धविश्वास के कारण अर्थ परिवर्तन होता रहा है।

(ड) गंदे या छोटे कार्य : गंदे या छोटे कार्यों के लिए भी हम अच्छे शब्दों का प्रयोग करते हैं। पाखाना साफ करने के लिए 'कमाना' शब्द का प्रयोग करते है। ऑस्ट्रेलिया में नौकर को 'सरवेंट' न कहकर 'होम-एड', 'होम-ऐसोशिस्ट' कहते हैं।

इस तरह अशोभन के लिए शोभन का प्रयोग कर अर्थ परिवर्तन होता रहा है।

9) अधिक शब्दों के स्थान पर एक शब्द का प्रयोग : साधारणत: मनुष्य की प्रवृति यह है कि वह कम से कम परिश्रम में अपना काम निकालना चाहता है। बोलते समय भी वह चाहता है कि कम से कम समय में कम से कम शब्दों में अधिक से अधिक भाव व्यक्त कर सके। इस प्रवास में अधिक प्रयोग में या पुन:पुन: प्रयोग किए जानेवाले शब्दों में कुछ अंश छोड दिया जाता है। ऐसा करने से शेष अंश ही पूरे का अर्थ देने लगता है और इस तरह अर्थपरिवर्तन हो जाता है। जैसे रेल (ट्रेन की पटरी) पर चलने के कारण ट्रेन को रेलगाडी कहा गया। अब 'गाड़ी' शब्द को हटा दिया गया है, और केवल 'रेल' का अर्थ भी रेलगाड़ी है। रेलवे स्टेशन के लिए 'स्टेशन', 'मोटारकार' के लिए 'मोटर' या 'कार'। पहले हाथी को 'हस्तिनमृग' (ऐसा जानवर जिसके हाथ अर्थात सूंड़ हो) कहा जाता था, बाद में 'मृग' छोड़ दिया गया और केवल 'हस्तिन्' ही पूरे का अर्थ देने लगा और आज हम सिर्फ 'हाथी' का ही प्रयेग करते है। इस तरह रोज प्रयोग किए जानेवाले बहुत से शब्द मिलते हैं, जिनका अर्थ परिवर्तन हो गया है।

10) सादृश्य : सादृश्य के कारण ही शब्दों के अर्थों में परिवर्तन होता रहा है। अँग्रेजी से हिंदी में जो शब्द आए हैं, उनमें 'टिकट' और 'टैक्स' भी हैं। इनमें टिकट का रूप तो 'टिकीट' मिलता है और उसी के सादृश्य पर 'टैक्स' का रूप 'टिकस' या 'टिक्कस' हो गया है। 'टिकट' और 'टिकस' के रूप-साम्य के कारण 'टिकस्' का अर्थ में परिवर्तन हो गया है और सब देहात में प्राय: लोग 'टिकिट' के स्थान पर उस अर्थ में 'टिकस' (रेल का, ड़ाक का 'रसीद') का

भी प्रयोग करते हैं। यहाँ ध्यान देने की बात यह है कि सादृश्य के कारण अर्थ - परिवर्तन अज्ञान का सहारा लेकर घटित होता है, 'अभिज्ञ' और 'अविज्ञ' में सादृश्य से 'विज्ञ' के अर्थ में कुछ लोग 'भिज्ञ' का तथा 'अविज्ञ' के अर्थ में 'अभिज्ञ' का प्रयोग करते हैं।

11) अज्ञान : किसी शब्द का गलत अर्थ में प्रयोग करने से भी उस शब्द का अर्थ बदल जाता है। अज्ञान तथा अर्धज्ञान के कारण संस्कृत शब्दों के इस क्षेत्र के कई उदाहरण प्राप्त होते है। जैसे - संस्कृत का 'धन्यवाद' (प्रशंसा) हिंदी में शुक्रिया हो गया। लोक भाषाओं में भी गलती के कारण अर्थ परिवर्तन के अच्छे उदाहरण मिलते है। जैसे अवधी में 'बूढा' के लिए 'बुढ़ापा' भोजपुरी में 'कलंक' के लिए 'अकलंक' 'फ़जूल' के लिए 'बेफ़जूल' आदि उदाहरण प्राप्त होते हैं।

12) पुनरावृत्ति : जिस तरह दीर्घकाय शब्द का अर्थ उसके लघु रूप से प्राप्त किया जाता है, ठीक इसके विपरित कभी-कभी शब्दों का दुहरा प्रयोग चल पड़ता है और इसके कारण भी उनके आधे भाग के अर्थ में परिवर्तन हो जाता हैं। जैसे - अब 'विन्ध्याचल पर्वत' का प्रयोग चल पडा है। ऐसे प्रयोग करने वाले विन्ध्याचल का अर्थ 'विन्ध्य पर्वत न लेकर उसे पर्वत का नाम मात्र समझते हैं। 'मलयगिरी' - द्रविड़भाषा में 'मलय' शब्द ही पहाड का अर्थ रखता है, पर हम, 'मलय' को नाम समझ कर उसके साथ 'गिरि' जोड लेते है। कभीकभार 'मलयगिरी पर्वत' भी कहा जाता हैं। इसी प्रकार लोग 'हिमालय पर्वत' भी कहते हैं। दरअसल में, दरहकीकत में, किंतु फिर भी, पर भी आदि प्रयोग भी ऐसे ही हैं।

13) एक शब्द के दो रूपों का प्रचलन : हिंदी में कुछ शब्दों के दो रूप चल रहे हैं और भाषा यह बोझ स्वीकार नहीं कर सकती, अत: दोनों के अर्थ में भेद हो गया है। इस प्रकार, दो रूप के प्रचलन में भी अर्थ-परिवर्तन अवश्य हो जाता है। इन दो अर्थों में तत्सम तथा तद्भव शब्दों का उदाहरण लेते है, तो प्राय: देखा जाता है कि तत्सम शब्द तो कुछ प्राचीन या उच्च अर्थ रखते हैं। तद्भव शब्द कुछ हीन या नया अर्थ रखते हैं। जैसे - 'स्थान' और 'थान' शब्द हैं। स्थान का प्रयोग देवी-देवताओं के लिए होता है और थान का प्रयोग हाथी या घोड़े के लिए। जैसे - 'यह ब्राह्मणजी का स्थान है।' या 'हाथी का थान यहाँ है।' इस प्रकार के और भी उदाहरण मिलते हैं जैसे : ब्राह्मण (शिक्षित ब्राह्मण), ब्राह्मण (निरक्षर), सौभाग्य, सोहाग तथा वार्ता, बात इत्यादि।

14) प्रयोगाधिक्य से अर्थ का घिस जाना : किसी शब्द के अधिक प्रयोग से वे घिस जाते हैं और उससे परिचय इतना अधिक बढ जाता है कि उनकी शक्ति क्षीण हो जाती है। श्रीयुत, श्रीमान् या श्री का प्रयोग आरम्भ में काफी सार्थक लगता था, किंतु अब वे प्रयोग में इतने घिस गए हैं कि निरर्थक से जान पड़ते हैं, अत: उन शब्दों में मात्र औपचारिकता ही रह गई है। अंग्रेजी शब्द में 'मास्टर' का मूल अर्थ मालिक है, जो कालान्तर में भारत में अध्यापक के अर्थ में प्रयुक्त हुआ और अब तो रिक्शा मास्टर, टेलर मास्टर, कटिंग मास्टर होकर उसका मूल अर्थ घिस गया। इस तरह प्रयोगाधिक्य के कारण ऐसे अनेक शब्द अपने मूल अर्थ की चमक खोकर बहुत निरीह हो गए हैं।

15) किसी राष्ट्र, जाति अथवा सम्प्रदाय के प्रति मनोभाव : किसी राष्ट्र, जाति अथवा सम्प्रदाय के प्रति

जैसी भावना होती है, उसकी छाया उनके शब्द के अर्थोपर भी पडती है। यह भी ज्ञात होता है कि इस भावना के कारण शब्दों का अर्थ पूर्णत: उलटा हो जाता है। परिणाम स्वरूप भाषा भी प्रभावित होती है। 'असुर' शब्द का मूल अर्थ देवता था, किंतु इरानियों से झगडे के कारण आर्यो ने 'असुर' शब्द का अर्थ राक्षस कर लिया; क्योंकि इरानियों का देवता 'अहुरमज्द' था। फारसी में 'हिंदू' शब्द का अर्थ गुलाम, काफिर, नापाक आदि है।

16) एक वर्ग के एक शब्द में अर्थ परिवर्तन : शब्द अधिकतर वर्गों में रहते हैं। यदि वर्ग के किसी एक भी शब्द के अर्थ में परिवर्तन हुआ तो उसका प्रभाव शेष शब्दों के अर्थ पर भी पड़ता है। जैसे दुहिता का अर्थ था 'गाय दुहने वाली।' बाद में जब इसका अर्थ 'लड़की' हो गया तो इससे बनने वाले दौहित्र, दौहित्री, दौहित्रायण आदि शब्दों का अर्थ भी उसी के अनुसार परिवर्तित हुआ मिलता है।

17) साहचर्य : साहचर्य या सानिध्य के शब्द के अर्थ में परिवर्तन की सामान्य प्रक्रिया नजर आती है। ऐसी दशा में अर्थादेश होकर अर्थ-परिवर्तन हो जाता है। 'सिन्धु' शब्द का मूल अर्थ बडी नदी या समुद्र था। आर्यो ने सिन्धु नदी को भारत में आने पर 'सिन्धु' कहा। कुछ दिन में नदी के आसपास की भूमि भी 'सिन्धु' कही जाने लगी। सिन्धु से 'सैंधव' शब्द बना जिसका अर्थ हैं, 'सिन्धु का' या 'सिन्धु देश में होनेवाला।' उस समय 'सिन्धु' देश की प्रधान वस्तु 'घोडा' और 'नमक' होने के कारण, सौंधव का प्रयोग इन दोनों के लिए होने लगा। बाद में सिन्धु के निवासियों को भी सिन्धु कहा जाने लगा जिसका फारसी रूप हिंदु या हिंदू हो गया।

18) किसी शब्द, वर्ग या वस्तु में एक विशेषता का प्रधान्य : एक विशेषता के प्राधान्य के कारण ही वही उस वस्तु या वर्ग का प्रतीक समझा जाने लगता है। जैसे लाल पगडी बहुत-से लोग बाँधते हैं और पुलिस वाले लाल पगडी के अतिरिक्त भी वर्दी धारण करतें हैं और आजकल तो पुलिस में भी लाल पगडी का प्रचलन नहीं रहा। फिर भी 'लाल पगड़ी' से पुलिस का ही अर्थबोध होता है। फूल सुगन्धित, कोमल और सुन्दर होते हैं। बहुत से फूल न सुगन्धित हैं न कोमल और न सुन्दर, किंतु फिर भी 'फूल' शब्द में सुगन्धता, कोमलता, सुन्दरता आदि गुणों का भाव जागृत होता है।

19) व्यंग्य : व्यंग्य में प्राय: ही विपरीतार्थ या भिन्नार्थ का बोध पाया जाता है। हर भाषा में इसके उदाहरण काफी बडी संख्या में मिलते हैं। नीचे के उदाहरणों में प्राय: सभी का शाब्दिक अर्थ बुद्‌धिमान है, किंतु व्यंग्य के कारण प्रचलन में वे मूर्ख के लिए भी प्रयुक्त होते हैं। जैसे - 'तीन हाथ की बुद्‌धि वाले', 'अक्ल के खजाना', 'अक्ल की पुड़िया', 'पूरे पंडित' आदि।

20) भावावेश : भावावेश का प्रयोग अस्थायी होता है, किंतु भावावेश में कुछ बूरे शब्दों का अच्छा अर्थ अभिव्यक्त होता है। प्यार से बच्चे को शैतान, गधा, नालायक आदि शब्दों के भावावेश में भिन्न अर्थ निकलते हैं। प्यार या भावावेश के कारण श्रीकृष्ण के नाम 'नटखट', 'माखनचोर' आदि हो गए। भावावेश के कारण अच्छे शब्द बुरा अर्थ भी देते हैं। जैसे 'राम' शब्द में ईश्वरत्व है, किंतु कराह के साथ 'राम' करुणा उत्पन्न करता है और राम! राम!! विस्मय बोधक घृणा सूचना है।

21) व्यक्तिगत योग्यता : व्यक्तिगत योग्यता के अनुसार भी शब्दों के अर्थ में परिवर्तन होता रहा है। समाज में व्यक्ति-योग्यता के अनेक स्तर हैं। ज्ञानी-अज्ञानी, शिक्षित-अशिक्षित, बुद्धिमान-मूर्ख, सभ्य-असभ्य आदि अनेक स्तरों पर व्यक्ति की योग्यता अलग-अलग होती हैं और शब्द का अर्थ सम्बद्ध मनुष्य की योग्यता के अनुसार बदल जाता है। 'ब्रह्म' शब्द का जो अर्थ एक दार्शनिक के लिए है, वही आम आदमी के लिए नहीं हो सकता 'टकर' ने कहा है कि, ''शब्द तो एक प्रकार का सिक्का है, पर ऐसा सिक्का जिसका मूल्यनिश्चित नहीं। बोलने वाला उसे दो रुपये का समझ सकता है और सुनने वाला अपनी योग्यता नुसार उसे तीन या एक रुपये का समझ सकता है।''

22) शब्दों में अर्थ का अनिश्चय : कुछ शब्द ऐसे होते हैं जिनमें अर्थ का कोई निश्चित सुस्पष्ट रूप नहीं होता है। सत्य, अहिंसा, धर्म, ईश्वर, पाप-पुण्य, करुणा आदि शब्द इसी कोटी में आते है। जैसे 'अहिंसा' शब्द को हम लेते है तो इसका एक ओर तो यह अर्थ है कि किसी को जान से न मारना चाहिए, पर दूसरी ओर जीना भी हिंसा है, क्योंकि साँस के द्वारा या पैरो तले कुचलकर न जाने हम कितने जीव मारते हैं। इन दोनों अर्थों के अतिरिक्त ऐसी बात कहना भी हिंसा है, जिससे किसी का जी दूखे।

इस प्रकार 'अहिसा' शब्द का निश्चित अर्थ नहीं है।

23) वस्तु का नाम वर्ग को देना : वर्ग को किसी एक वस्तु से अधिक परिचित होने पर उसी नाम से हम पूरे वर्ग को पुकारने लगते हैं। इससे उस शब्द में अर्थ-विस्तार हो जाता है। जैसे - 'स्याही' शब्द 'स्याह' से बना है, जिसका अर्थ काला होता है, किंतु आज नीली, लाल, हरी आदि सभी रंगों की स्याही कहलाती है। पहले केवल काली स्याही थी, अत: स्याही कहा गया। बाद में और रंग की भी स्याहियों का प्रचलन हुआ, पर अधिक परिचित होने से वही नाम चलता है। इस तरह 'स्याह' नाम सम्पूर्ण वर्ग को दिया गया।

24) आलंकारिक प्रयोग : वक्ता या लेखक का यही प्रयास रहता है कि, वह कम से कम शब्दों में अपने को अधिक से अधिक स्पष्ट एवं सुंदर रूप से स्पष्ट कर सके। इस तरह बात को प्रभावी बनाने के लिए अलंकारों का प्रयोग बहुत प्राचीन एवं व्यापक है। इस प्रकिया में एक वस्तु अथवा भाव के लिए सादृश्य या अन्य समानता खोजी जाती है, और फिर वह शब्द उसका वाचक हो जाता है। उदाहरण के लिए गधे में और भी बहुतसी विशेषताएँ हैं, किंतु न जाने क्या समझकर उसे 'मूर्ख' का पर्याय बना दिया गया और अब तो किसी को मूर्ख कहने की अपेक्षा 'गधा' कहना ही अधिक प्रभावी होता है। सूक्ष्म भावों तथा विचारों को प्रभावी रूप से प्रकट करने के लिए अलंकार का प्रयोग नितान्त आवश्यक-सा हो जाता है। गहरी व्यथा, उथली बात, विषैली मुस्कान, मधुर हँसी, कड़ुआ अनुभव आदि ऐसे अनेक प्रयोग मिलते हैं। कुछ शब्द नए अर्थों में रूढ हो गए मिलते हैं। जैसे - उल्लू (मूर्ख), गधा (मूर्ख), कौआ (चालाक), काला नाग (जहरीला आदमी), कसाई (क्रूर) आदि शब्द परिवर्तित अर्थ के साथ गाली रूप में प्रयुक्त हुए है।

25) दूसरी भाषा का प्रभाव : ऐसा भी पाया जाता है कि दूसरी भाषा के प्रभाव से शब्दों का अर्थ बदल जाता है। पंजाबी तथा हरियानी के प्रभाव से दिल्ली आदि में हिंदी में भी 'मच्छर लड़ रहे हैं' का अर्थ 'मच्छर काट रहे हैं' होने लगा है। वस्तुत: पंजाबी के प्रभाव से हिंदी 'लड़ना' में 'काटना' का भी भाव आता जा रहा है। इस प्रकार,

हिंदी की बोलियों एवं पंजाबी के प्रभाव से हिंदी 'लड़ना' में 'काटना' का भी भाव आता जा रहा है। इस प्रकार, हिंदी की बोलियों एवं पंजाबी के प्रभाव से अनेक हिंदी शब्दों के अर्थ में विस्तार होता जा रहा है।

26) पीढी परिवर्तन : पीढी परिवर्तन के साथ शब्दों के अर्थों में भी परिवर्तन होने लगता है। पुरानी पीढी से मिली शब्दसम्पदा नयी पीढी सम्भालती है किंतु अपने युग और आवश्यकता के अनुकूल उसमें परिवर्तन भी कर लेती है। वैसे देखा जाए तो अधिकांशत: अर्थ-परिवर्तनों में पीढ़ी परिवर्तन का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रभाव जरुर होता है। जैसे - 'पत्र' शब्द का इतिहास देखा जाए तो, प्रारम्भ में लेखन कार्य प्राय: भोजपत्र आदि पर हुआ करता था। सन्देश आदि भी भोजपत्र पर ही लिखकर भेजे जाते थै। नयी पीढ़ी ने समझा जिस पर लिखा जाता है उसे 'पत्र' कहते है। बाद में लिखने के लिए अन्य चीजें प्रयोग में लाई जाती थी उनके लिए भी 'पत्र' शब्द ही प्रयुक्त होने लगा। धीरे-धीरे पत्र कागज पर लिखे जाने लगे और इसका यही अर्थ रह गया।

27) एक भाषा-भाषी लोगों का अलग-अलग विकास : जब एक भाषा बोलने वाले स्थान छोडकर कहीं अन्यत्र बसने लगते हैं, तब वे अपने साथ अपनी भाषा को भी ले जाते हैं। स्थान परिवर्तन के कारण अलग-अलग वातावरण में शब्दों के अर्थों में भी परिवर्तन हो जाता है। इसतरह एक ही भाषा का एक ही अलग-अलग जगह प्रयुक्त होता है तो भिन्न-भिन्न अर्थ के लिए प्रयोग में लाया जाता है। संस्कृत 'वाटिका' शब्द का अर्थ 'बगीचा' है जो हिंदी में आज भी सुरक्षित है। बंगाली में यह शब्द 'बाड़ी' होकर घर के अर्थ में प्रयुक्त होता है और राजस्थानी में 'बाड़ी' सब्जी बोने के स्थान के अर्थ में। इसतरह एक भाषा-भाषी लोगों का अलग-अलग विकास होने के कारण अर्थ में परिवर्तन होता आ रहा हैं।

अर्थपरिवर्तन के कारणों की विवेचना से सिद्ध होता है कि -

- अर्थ परिवर्तन का कोई एक कारण नहीं बल्कि एक से अधिक कारण है।
- एक अर्थ परिवर्तन के लिए भी एक से अधिक कारण अर्थ परिवर्तन में सक्रिय हो सकते हैं।
- एक से कारणों को एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता बल्कि वे एक दूसरे से गुंफित होते हैं।
- अर्थ परिवर्तन के कारणों की भविष्यवाणी नहीं की जा सकती, अर्थ परिवर्तन हो जाने के पश्चात उन्हें खोजा जरूर जा सकता है।

अर्थपरिवर्तन की दिशाएँ :

भाषा परिवर्तनशील है, 'जिसे भाषा बहता नीर' भी कहा गया है। भाषा के सभी अंगों में परिवर्तन होता है भाषा की जीवन्तता का प्रमाण है कि वह परिवर्तनशील है, तब अर्थ परिवर्तनशील कैसे रह सकता है। अर्थ परिवर्तन के कारणों पर तो दृष्टि डाली गई है किंतु अब 'अर्थपरिवर्तन की दिशाएँ' भी जानना आवश्यक हे। शब्द के अर्थ बदलते रहते हैं, इस अर्थ बदलाव की स्थितियाँ अलग-अलग होती हैं। अर्थ परिवर्तन में यह देखा गया है कि किसी शब्द का अर्थ व्यापक रहता है, कालक्रम में वह संकुचित हो जाता है। किसी शब्द का प्रयोग संकुचित रहता है, कालक्रम में उसका विस्तार हो जाता है। शब्द के अर्थ की उत्कृष्ट से निकृष्ट तो कभी निकृष्ट से उत्कृष्ट बन जाते हैं। 'अर्थपरिवर्तन

किन-किन दिशाओं में होता है' इस विषय पर सबसे पहले फ्रांसीसी भाषा विज्ञान वेत्ता 'ब्रील' ने विचार किया था। उन्होंने तीन दिशाओं की खोज की : अर्थ-विस्तार, अर्थ-संकोच, अर्थादेश। आज इन दिशाओं के स्वीकृति के साथ-साथ दिशाओं को भी खोजा गया है। अत: विशेषज्ञों के अनुसार अर्थपरिवर्तन की दिशाओं को प्रमुखत: इस प्रकार वर्गीकृत किया जा सकता है।

अर्थपरिवर्तन की दिशाएँ

1. प्रवृत्ति की दृष्टि से	**2. प्रकृति की दृष्टि से**
अ) अर्थ विस्तार	अ) अर्थोत्कर्ष
ब) अर्थ संकोच	ब) अर्थापकर्ष
क) अर्थादेश	क) सबलीकरण
	ड) निर्बलीकरण

प्रवृत्ति की दृष्टि से अर्थ-परिवर्तन :

(अ) अर्थविस्तार : अर्थविस्तार को अँग्रेजी में Expansion of Meaning कहते है।

अर्थ विस्तार से तात्पर्य है 'अर्थ का सीमित क्षेत्र से निकल विस्तार पा जाना। कुछ उदाहरण निम्नांकित है -

तेल - यह शब्द मूलत: संस्कृत का 'तैल' है जिसका मूल अर्थ है 'तिल का रस'। यही इसका व्युत्पत्तिमूलक अर्थ था। हिंदी आदि आधुनिक भाषाओं का तेल शब्द इसी तैल से विकसित है, किंतु आज इसका विस्तृत अर्थ पाया जाता है सरसों, मूँगफली, नारियल, लोंग आदि के लिए प्रयुक्त होता है किंतु मछली का तेल भी होता है और मुहावरे में आदमी का भी तेल निकल आता है।

परसों - संस्कृत शब्द परश्व: आने वाले परसों के लिए था, किंतु अब यह भूतकाल एवं भविष्यकाल दोनों परसों (एक दिन छोड़कर) के लिए आता है।

स्याही - 'स्याह' शब्द से होने के कारण इसका सम्बन्ध 'काली' से था, किंतु लाल-नीली-हरी सभी प्रकार की स्याही कहलाती है।

प्रवीण - वीणा बजाने में दक्ष को ही प्रवीण कहते थे, आज तो सभी प्रकार की दक्षता 'प्रवीण' बनाती है।

सब्जी - 'सब्ज' का अर्थ है 'हरा'। पहले पालक चौलाई, भिंडी जैसी हरी तरकारियों को उनके रंग के आधार पर 'सब्जी' कहते थे। अब सब्जी शब्द का अर्थ विस्तार हो गया है और सभी रंगो की सब्जियाँ 'सब्जी' कहलाने लगी। टमाटर (लाल), गाजर (लाल, पीली, काली), प्याज (लाल, सफेद), बैंगन (नीला) आदि।

(ब) अर्थसंकोच : अर्थसंकोच को अँग्रेजी में Contraction of Meaning कहते हैं। यह अर्थ विस्तार के ठीक उलटा है। इसमें अर्थ की परिधि पहले विस्तृत रहती है, फिर संकुचित हो जाती है। अर्थ संकोच के कारण शब्द

का प्रयोग सामान्य या विस्तृत अर्थ से हट कर विशिष्ट या सीमित अर्थ में होने लगता है। उदाहरण के लिए संस्कृत 'मृग' का मूल अर्थ 'पशु' है। 'शिकार' का वाचक 'मृगया' तथा 'पशुओं के राजा' सिंह के लिए 'मृगराज' के प्रयोग में मूल अर्थ आज भी संकुचित है। किंतु अब यह पशुविशेष (हिरन) के लिए प्रयुक्त होता है। विशेषज्ञों के अनुसार एक सिद्धांत यह भी है कि भाषा में मूलत: शब्द सामान्य के लिए थे, अर्थ संकोच द्वारा धीरे-धीरे विशेष के लिए शब्दों का निर्धारण हुआ। इसीलिए अर्थ-संकोच भाषा की अभिव्यंजना-शक्ति की सम्पन्नता का द्योतक है कुछ अन्य उदाहरण -

शब्द	मूल अर्थ	वर्तमान अर्थ
पंकज	पंक में जमने वाली हर चीज	कमल
मुर्गा (फारसीमुर्ग)	पक्षी सामान्य	पक्षीविशेष
मूली (मूल से)	जड़वाली	विशिष्ट जड़ (खाने की मूली)

इस प्रकार के कई शब्द प्राप्त होते हैं जो अपने मूल अर्थ को त्यागकर एक सीमित और विशिष्ट अर्थ देने लग गए हैं।

(क) अर्थादेश : अर्थादेश को अँग्रेजी में Transference of Meaning कहते है।

भाव साहचर्य के कारण शब्द के कारण शब्द के प्रधान अर्थ के साथ कभी-कभी गौण अर्थ भी चलता रहता है। कुछ समय बाद ऐसा होता है कि प्रधान अर्थ धीरे-धीरे लोप हो जाता है और गौण अर्थ में ही शब्द प्रयुक्त होने लगता है। इस प्रकार एक अर्थ के लोप होने तथा नवीन अर्थ के आ जाने को 'अर्थादेश' कहते हैं। 'गँवार' मूलत: ग्रामीण से निकला, जिसका मूल अर्थ 'गाँव में रहनेवाला' था, किंतु सामान्यतया गाँव के लोग अशिक्षित और सभ्यता रहित माने गए, धीरे-धीरे मूल अर्थ समाप्त हो गया और आज 'गँवार' शब्द का प्रयोग असभ्य, अशिष्ट और मूर्ख के अर्थ में किया जाता है। कुछ अन्य उदाहरण -

शब्द	तत्सम रूप	मूल अर्थ	वर्तमान अर्थ
मौन	मुनि से	मुनियों का आचरण	चुप्पी
बावला	वातग्रस्त से	वायु विकार ग्रस्त	पागल
रसिया	-	रसानुरागी	प्रेमी
छैला	छवि+ला	सुन्दर	कामुक, प्रेमी

ऐसे बहुत से उदाहरण प्राप्त होते हैं।

प्रकृति की दृष्टि से अर्थ-परिवर्तन :

भाषाविदों के मतानुसार प्रकृति की दृष्टि से अर्थ-परिवर्तन से तात्पर्य है, अर्थ की मूल प्रवृत्ति में परिवर्तन होना- उन्नत अर्थ नीचे गिर जाए, गिरा हुआ अर्थ ऊपर उठ जाए, अर्थ में नयी चमक आए या 'फिका' पड़ जाए। इसे निम्नांकित रूपों में दर्शाया जाता है -

(अ) अर्थोत्कर्ष : जब शब्द का अर्थ अपने परिवर्तन के क्रम में अपने मूल भाव से प्रकृति की दृष्टि से ऊपर उठ जाता है, तो अर्थोत्कर्ष कहलाता है। 'साहस' संस्कृत में बहुत अच्छा शब्द नहीं था। 'साहस' का मूल अर्थ चोरी, डाका, व्यभिचार, हत्या आदि था। किंतु आज देश की रक्षा करनेवाला भी साहसी कहलाता है। और पर्वत पर चढनेवाला भी साहसी कहलाता है। सामान्यत: अब इसका प्रयोग अच्छे भाव के लिए ही होता है। 'कर्पट' का अर्थ संस्कृत में फटा-पुराना कपड़ा था, किंतु अब 'कर्पट' से ही विकसित 'कपड़ा' का प्रयोग अच्छे वस्त्र के लिए भी होता है। कुछ और उदाहरण दृष्टव्य है -

शब्द	तत्सम रूप	मूल अर्थ	वर्तमान अर्थ
भैंस	भैरव	भयानक	एक देवता
चरणोदक	-	चरणों का जल	भगवान का चढाया
-	-	-	पवित्र जल
माखनचोर	-	मक्खन चुरानेवाला	भगवान श्रीकृष्ण
सिन्दूर	-	एक लेपन पदार्थ	सौभाग्य चिह्न
खसम	अरबी शब्द	शत्रु	

(ब) अर्थापकर्ष : अर्थोत्कर्ष की भाँति ही शब्दार्थ का अपकर्ष भी होता है। अर्थ का उन्नत से अवनत हो जाना अर्थापकर्ष कहलाता है। 'पाखंड' संन्यासियों के एक सम्प्रदाय का नाम था। अब 'पाखंड' ढोंग का वाचक है। 'जुगुप्सा' शब्द 'गुप्' धातु से बना है, जिसका मूल अर्थ पालन करना या छुपाना था। आज इसका प्रयोग 'घृणास्पद' के अर्थ में होता है। कुछ अन्य उदाहरण -

शब्द	तत्सम रूप	मूल अर्थ	वर्तमान अर्थ
ठस्स	ठोस से	ठोस	मंदबुद्धि
कमण्डल	-	साधुओं का पात्र	मूर्ख
पिल्ला	द्रविड शब्द	बच्चा	कुत्ते का बच्चा
छोकरा	शोकहर	पुत्र, लड़का	नौकर
दूती	-	सन्देशवाहिका	चुगली करनेवाली

कुछ व्यक्तिवाचक नामों का भी अर्थापकर्ष पाया जाता है -

कंस	-	मथुरा के एक राजा का नाम	-	निर्दय
जयचन्द	-	कन्नोज के एक राजा का नाम	-	देशद्रोही
नारद	-	एक मुनि का नाम	-	चुगलखोर
विभीषण	-	रावण के भाई का नाम	-	देशद्रोही, बंधुद्रोही

(क) सबलीकरण : सबलीकरण को अँग्रेजी में Litotes कहते है। भाषाविदों के अनुसार, जिस तरह मनुष्य के स्वास्थ्य पर आधारित उसकी सबलता-दुर्बलता उसकी आयु पर निर्भर होती है, ठीक उसी प्रकार शब्दों के अर्थ भी सबल-निर्बल होते रहते हैं। 'अत्याचार' शब्द अति + आचार से बना जिसका सामान्य मूल अर्थ आचरण की अति है, किंतु आज 'अत्याचार' शब्द अपने मूलभाव से कई गुणा अधिक बलवान है। इसी प्रकार 'सत्यानाश' शब्द भी सत्य + नाश का रूप है, किंतु आज विनाश की महालीला का परिचायक है। 'सुहाग' शब्द सौभाग्य से बना हे, किंतु 'स्त्री' के साथ जुडकर इसका अर्थ बहुत बलशाली तथा गहरा हो गया।

(ड) निर्बलिकरण : निर्बलिकरण को अँग्रेजी में Hyperbole कहते है। भाषाविद् शब्द की शक्ति-हीनत्व की दशा को Hyperbole की संज्ञ देते हैं, जिसमें किसी छोटी बात को बडे-बडे शब्दों में कहा जाता है, परिणाम यहा होता है कि उन बडे अर्थवाले शब्दों की शक्ति क्षीण हो जाती है। अत: किसी प्रभावशाली अर्थवाले शब्द का प्रयोगाधिक्य उसकी अर्थशक्ति को क्षीण कर देता हे, जैसे -

श्रीमान, अरदास, बिनती, देवी, भाईसाहब, बाबू, नेता, भ्रष्टाचार आदि अनेक शब्द अपनी मूल अर्थशक्ति से कमजोर पड गये हैं।

डॉ. नेमीचन्द के अनुसार 'अर्थपरिवर्तन की इनके अतिरिक्त भी अनेक दिशाएँ हैं, यथा मूर्तिकरण, अमूर्तिकरण, अर्थविकीकरण, श्रृंखलामूलक अर्थादेश, संकुल या जटिल अर्थ-परिवर्तन आदि जो इस विषय पर विशेष गवेषणा के विषय हैं और अर्थ-परिवर्तन की प्रक्रियात्मक गहनता को स्पष्ट करते हैं।' अर्थ परिवर्तन को प्रसिद्ध भाषाशास्त्री 'ग्रे' अपने शब्दों में कुछ इसप्रकार व्यक्त करते है - ''चाहे सामान्यीकरण हो और चाहे आदेशमूलक, सम्पूर्ण परिवर्तन (वह) मानव-विचार और मानव संस्कृति के विकास के अनुसंधान का प्रभावात्मक उपकरण है।'' स्पष्ट है कि शब्दों के अर्थो का ऐतिहासिक अध्ययन बहुत रोचक एवं रहस्य को खोलनेवाला है। डॉ. श्रीमाल कहते हैं कि, ''शब्द का अर्थ उस तिनके की भाँति है जो वायु के पंखों पर आरूढ रहकर अप्रत्याशित और अननुमेय दिशाओं की ओर बहता रहता है।'' आचार्य किशोरीदास वाजपेयी ने लिखा है, ''अर्थ विकास की कोई सीमा नहीं, उसे शब्द की तरह दो-चार वर्गों में बाँटना सम्भव नहीं।'' अत: भाषाविदों के विचारों का तथा ऊपर दर्शायी गई अर्थपरिवर्तन की दिशाओं का अध्ययन करने के पश्चात यह ज्ञात होता है कि यह अध्ययन कुछ सीमा तक ही है।

4.3 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न :

उचित विकल्प पहचानकर वाक्य फिर से लिखिए।

1. .... भाषा को ही भाषा कह सकते है।
   अ) सार्थक ब) निरर्थक क) ध्वन्यात्मक ड) संकेतात्मक

2. भोलानाथ तिवारी के मतानुसार अर्थविज्ञान के .... प्रकार है।
   अ) पाँच ब) दस क) सात ड) तीन

3. निम्न में से .... शास्त्र का संबंध अर्थ विज्ञान से नहीं है।
   अ) मनोविज्ञान ब) दर्शनशास्त्र क) तर्कशास्त्र ड) इनमें से नहीं

4. ''जैसे कि नाम से ही स्पष्ट हो जाता है - अर्थ विज्ञान 'अर्थ का विज्ञान' है। जिसमें भाषा के अर्थपक्ष का वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है।'' उक्त परिभाषा .... की है।
   अ) कार्नेप ब) भोलनाथ तिवारी क) रामचंद्र वर्मा ड) वाल्डविन

5. व्युत्पत्ति और अर्थ विषयक विचार की दृष्टि से .... विश्व का प्राचीनतम ग्रन्थ है।
   अ) निघंटु ब) महाभाष्य क) महाभारत ड) निरुक्त

6. डॉ. श्रीमाल के अनुसार आधुनिक अर्थ विज्ञान के .... रूप दृष्टिगोचर होते है।
   अ) दो ब) पाँच क) दस ड) चार

7. 'बिना अर्थ को समझे शब्द को दुहराना बेकार है' उद्‌घृत किया गया कथन .... का है।
   अ) पाणिनि ब) पतंजलि क) व्यास ड) यास्क

8. अर्थ वास्तव में .... प्रत्यक्ष की वस्तु है।
   अ) क्लासिक ब) दार्शनिक क) मानसिक ड) शाब्दिक

9. किसी भी भाषिक इकाई (वाक्य, वाक्यांश, रूप, शब्द, मुहावरा आदि) को किसी भी इन्द्रिय (प्रमुखत: कान, आँख) से ग्रहण करने पर जो मानसिक प्रतीति होती है, वही अर्थ है। युक्त कथन .... का है।
   अ) जितेन्द्र वत्स ब) डॉ. नेमीचन्द्र श्रीमाल क) कैलास नाथ ड) डॉ. भोलानाथ तिवारी

10. अर्थ की प्रतीति .... प्रकारों से होती है।
    अ) चार ब) दो क) तीन ड) सात

11. भारतीय परंपरा में अर्थ बोध के .... साधन माने गए हैं।
    अ) सात ब) दस क) आठ ड) नौ

12. निम्न में से अर्थ बोध का बाधक कारण नहीं है ....।

अ) भ्रांत अर्थज्ञान ब) अतिदूरता क) व्यवधान ड) व्याकरण

13. .... के अभाव में प्राप्त ज्ञान भी ध्यान से उतर जाता है।

अ) अभ्यास ब) अविसाभिण्य क) दूरता ड) स्मरण

14. .... भाषा का सबसे अधिक परिवर्तनशील तत्त्व है।

अ) ध्वनि ब) अर्थ क) पद ड) वाक्य

15. .... परिवर्तन हो जाने से कुछ शब्दों के अर्थ में परिवर्तन हो जाता है।

अ) वातावरण ब) जल क) वायु ड) इनमें से नहीं

16. निम्न में से अर्थ परिवर्तन का कारण .... नहीं है।

अ) नम्रता प्रदर्शन ब) वातावरण में परिवर्तन क) बल का अपसरन ड) अनभ्यास

17. अर्थ परिवर्तन किन-किन दिशाओं में होता है इस विषय पर सबसे पहले .... ने विचार किया था।

अ) डॉ. श्रीमाल ब) ब्रील क) काल्डविन ड) वार्नविन

18. ब्रील ने अर्थ परिवर्तन की .... दिशाओं की खोज की।

अ) चार ब) पाँच क) तीन ड) आठ

19. .... अर्थ परिवर्तन की दिशा नहीं है।

अ) अर्थ विस्तार ब) अर्थ संकोच क) अर्थादेश ड) अज्ञान

4.4 शब्दार्थ, संदर्भ, टिप्पणियाँ :

समस्त = सम्पूर्ण

सार्थक = अर्थ के साथ

निरर्थक = बिना अर्थ के, अर्थ के बगैर

दर्शनशास्त्र = तत्त्वज्ञान

सर्वाङ्गपूर्ण = सम्पूर्ण

नवीनतम = नूतन

पृथक = अलग

सु-दीर्घ = पुरानी, दीर्घकाल से चली आई

सन्निहित = समाहित, समाविष्ट

यादृच्छिक = माना हुआ

अभिभव = दबा देना

चिरन्तन = निरंतर

नीर = पानी

4.5 सारांश :

समस्त भाषाओं की उपयोगिता अर्थ की प्राप्ति है। अर्थ संबंधी नियमों का विवेचन, विश्लेषण अर्थ विज्ञान में किया जाता है। अर्थ की प्राप्ती ही भाषा का प्रयोजन है। भाषा में अर्थ पक्ष की वैज्ञानिक अध्ययन की परंपरा सु-दीर्घ दृष्टिगत होती है। अर्थज्ञ समस्त कल्याण का भागी माना गया है। शब्द अर्थ के कारण ही सजीव होते हैं। शब्द से ही अर्थ की प्राप्ति होती है। अर्थ की प्रतीति आत्मानुभव से तथा परानुभव से होती है इसीलिए भाषा को यादृच्छिक ध्वनि प्रतिकों की व्यवस्था कहा गया है। अर्थबोध के बाधक कारण कई हैं। अर्थ परिवर्तन के कई कारण मिलते हैं। अर्थ परिवर्तन की दो प्रमुख दिशाएँ मानी गई है - प्रवृत्ति की दृष्टि से और प्रकृति की दृष्टि से। अर्थ परिवर्तन के कारणों की भविष्यवाणी नहीं की जा सकती। अत: कहा जा सकता है कि 'अर्थ' भाषा का सबसे अधिक परिवर्तनशील तत्त्व है।

4.6 स्वयं अध्ययन प्रश्नों के उत्तर :

1) अ. सार्थक	2) ड. तीन	3) ड. इनमें से नहीं	
4) ब. भोलानाथ तिवारी	5) ड. निरूक्त	6) ब. पाँच	
7) ड. यास्क	8) ब. मानसिक	9) ड. डॉ. भोलानाथ तिवारी	
10) ब. दो	11) क. आठ	12) ड. व्याकरण	
13) अ. अभ्यास	14) ब. अर्थ	15) अ. वातावरण	
16) ड. अनभ्यास	17) ब. ब्रील	18) क. तीन	19) ड. अज्ञान

4.7 स्वाध्याय :

(अ) दीर्घोत्तरी प्रश्न :

1) अर्थ विज्ञान का स्वरूप बताते हुए अर्थ विज्ञान के इतिहास पर दृष्टि डालिए।
2) शब्द और अर्थ का संबंध स्पष्ट करते हुए 'अर्थबोध में बाधा' पर प्रकाश डालिए।
3) अर्थबोध के साधनों का संक्षिप्त परिचय देते हुए अर्थपरिवर्तन के कारणों पर दृष्टि डालिए।
4) अर्थ की प्रतीति का परिचय देते हुए अर्थ परिवर्तन की दिशाओं पर दृष्टि डालिए।
5) अर्थ विज्ञान की परिभाषाओं को देते हुए अर्थ विज्ञान के क्षेत्रीय रूप का परिचय देकर अर्थ की प्रतीति पर प्रकाश डालिए।
6) अर्थ परिवर्तन के कारणों का विस्तृत परिचय सोदाहरण दीजिए।
7) अर्थ परिवर्तन की दिशाएँ सोदाहरण स्पष्ट कीजिए।
8) भारतीय परंपरा के अर्थबोध के साधनों पर दृष्टि डालते हुए अर्थ बोध के बाधक कारणों को स्पष्ट कीजिए।

(आ) टिप्पणियाँ :

1) अर्थ विज्ञान की परिभाषाएँ
2) अर्थ विज्ञान का स्वरूप
3) अर्थ विज्ञान का इतिहास
4) अर्थ विज्ञान का क्षेत्र
5) अर्थ की प्रतीति
6) शब्द और अर्थ का संबंध
7) अर्थबोध के साधन
8) अर्थबोध में बाधा
9) वातावरण परिवर्तन के कारण अर्थ परिवर्तन
10) अर्थ विस्तार
11) अथापकर्ष

4.8 क्षेत्रीय कार्य :

- अभिधा शब्दशक्ति का अध्ययन
- व्यंजना शब्दशक्ति का अध्ययन
- लक्षणा शब्दशक्ति का अध्ययन
- अर्थ परिवर्तन सम्बन्धी बौद्धक नियम

4.9 संदर्भ ग्रंथ सूची :

1) तिवारी भोलानाथ : 'भाषाविज्ञान', किताब महल, इलाहाबाद. संत्तावनवा संस्करण 2013 ई.
2) डॉ. श्रीपाल नेमीचन्द : 'भाषा विज्ञान', श्रुति पब्लिकेशन्स, जयपुर, प्रथम संस्करण 2008 ई.
3) पाण्डेय कैलाश वाघ : 'भाषा-विज्ञान का रसायन', लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 2012 ई.
4) डॉ. वत्स जिनेन्द्र, डॉ. सिंह देवेन्द्र प्रसाद : 'भाषा विज्ञान और हिंदी भाषा', निर्मल पब्लिकेशन्स, दिल्ली, संस्करण 2011 ई.

4.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए :

1) डॉ. तिवारी भोलानाथ : 'हिंदी भाषा की अर्थी संरचना', राष्ट्रीय हिंदी साहित्य परिषद, नई दिल्ली.
2) त्रिपाठी राम छबीला : 'भाषा विज्ञान एवं हिंदी भाषा', किताब महल एजन्सीज, संस्करण 2013 ई.
3) डॉ. मिश्र नरेश : 'भाषा विज्ञान एवं हिंदी', राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली. संस्करण 2016 ई.
4) डॉ. ब्रजमोहन : 'अर्थ विज्ञान', वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2009 ई.

❑❑❑